ज्ञानी और स्वाभिमानी बनाता है। जिसके बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं है। अर्थात् मनुष्य-जीवन की सफलता के लिये धर्म अनिवार्य और नितांत आवश्यक है।

यों तो संसार में अनेक धर्म और मत हैं; पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सच्चा भाव ही सच्चा धर्म है। धर्म की कोई परिमित सीमा नहीं है। न धर्म किसी मत या संप्रदाय-विशेष की बपौती है। सभी धर्मवाले किसी-न-किसी रूप में राम या रहीम, कृष्ण या क्राइस्ट के नाम से आदि-कर्त्ता, जगन्नियंता, जगदीश्वर की उपासना करते हैं। देश, काल और स्थिति के कारण आज भारत में इतने मत और संप्रदाय प्रचलित हो गए हैं। सभी का उद्देश्य एक ही है; पर मार्ग विभिन्न। सभी नदियाँ टेढ़ी-मेढ़ी घूम-फिरकर समुद्र में ही मिलती हैं, वैसे सभी धर्म और मत के अनुयायी देर-सबेर उस परमेश्वर की शरण में पहुँचते ही हैं।

यह मत-विशेषों का दुराग्रह और संकुचित हृदय ही है जो विभिन्न मतवालों में परस्पर विरोध और विग्रह फैलाता है।

स्वार्थांधता और अर्थ-लोलुपता के कारण भारतवर्ष में इस धार्मिक विग्रह की मात्रा यहाँ तक फैली कि भारत में आश्रय पानेवाले और भारत ही के अन्न से पले हुए मुसलमान और हिंदू एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए। यद्यपि दोनों के धर्माचार्यों और धर्म-प्रवर्तकों के भाव ऐसे कदापि न थे, पर अनुयायियों की दुर्बलता ने इसको ऐसा और इतना विस्तृत रूप दे दिया है।

जिस समय गुरु नानकजी का प्रादुर्भाव हुआ था, उस समय भारतवर्ष इस विग्रह का प्रत्यक्ष क्रीड़ा-स्थल हो रहा था। वह इसे देखकर बड़े दुःखित हुए। उनसे यह पीड़ा अधिक न सही गई। उन्होंने इस विग्रह को मिटाना ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। उनके उद्देश्य की पूर्ति भी हुई। वह अपने कार्य में सफल हुए। सफलता का एक कारण था। वह यह कि वह निस्पृह भाव से इस कार्य में संलग्न हुए थे। उनके एक-एक शब्द सत्य-मार्ग के प्रदर्शक और दुराग्रह को

मिटानेवाले थे । क्या हिंदू क्या मुसलमान, सभी उनके क़ायल थे। यही कारण था कि लोगों पर उनके उपदेशामृतों का ख़ासा और ईप्सित असर पड़ता था। उन्होंने राम और रहीम को एक ही माना और एक ही समझा । दूसरे उन्होंने जिस दवा से यह रोग अच्छा किया था, वह रोचक और मीठी थी। अन्य धर्माचार्यों की तरह वह कड़वी-कसैली और बहुमूल्य न थी । इसी से सब रोगी इसे आनंद से पी गए और रोग-मुक्त हो गए। यही इनकी विशेषता थी।

मनुष्य के विचारों को सहसा बदल देना हरएक का काम नहीं है। इसके लिये काफ़ी ज्ञान और अनुभव की आवश्यकता है । फिर इस कलिकाल में जब मनुष्य की आयु दिनोदिन क्षीण होती जाती है; पेट-भर अन्न नहीं मिलता; सदा नोन-तेल लकड़ी की चिंता हृदय में चिता की तरह दहका करती है; न हृदय में शांति है और न बड़े-बड़े कार्य करने को समय और आयु ही। इन सब बातों का विचार करके इन्होंने अपने शिष्यों को केवल ईश्वर के नाम जपने का ही उपदेश दिया । जब समय मिले ईश्वर को याद कर लो। खाते-पीते, सोते-जागते, घूमते-फिरते जहाँ अवकाश मिले ईश्वर का नाम लो। भला इसमें किसी के गाँठ का क्या जाता था? सभों ने इसे मान लिया। दूसरी सत्संग की बात है, जिसपर गुरुजी ने अधिक जोर दिया । चार आदमी बैठकर जहाँ निरर्थक बातें करते हैं, वहाँ ईश्वर की अजीब और आश्चर्यजनक शक्ति तथा उसके कार्य पर विचार करें और सुनें। इससे एक पंथ दो काज होगा । ईश्वर-उपासना और मन बह-लाव। दोनों बातें सबके मन में उतर गईं और गुरुजी का उद्देश्य पूरा हो गया।

इन्हीं बातों को समझाने के लिये गुरुजी ने जो उपदेशामृत की वर्षा की थी वह सब उनके 'ग्रंथ साहब' में संकलित हैं। उसका भी निचोड़ निकालकर यह 'जपजी' नामक ग्रंथ तैयार किया गया है।

इस जपजी में गुरुजी के कुछ चुने हुए उपदेश हैं, जो पौड़ी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पौड़ियों में गुरु नानकजी ने जप की महिमा,

शुद्धता और पवित्रता से लाभ, परमेश्वर की शक्ति और उसकी महिमा, ईश्वर ही संसार का कर्त्ता-धर्त्ता है, ईश्वर अनादि और अनंत है, सत्संग सब दुःखों की रामबाण औषधि है, परमेश्वर की प्रसन्नता के उपाय, भक्तों की सहूलियतें, जप और सत्संग मुक्ति के द्वार हैं, सृष्टि की विचित्रता, सृष्टि की अनंतता, भक्त सर्वत्र पूजनीय है और पूजा जाता है, परमेश्वर न्याय ही करता है, भक्ति की महिमा, योग के सच्चे लक्षण, नीच-ऊँच कोरी कल्पित भावना है, आदि सभी ज्ञातव्य और शंका-समाधान करनेवाले विषयों को अपनी स्वाभाविक और सरल भाषा में कहा है।

प्रत्येक पौड़ी को कितनी बार और कितने दिन तथा किस समय जपने से क्या-क्या विशेष लाभ होते हैं और कैसे-कैसे कष्ट और रोग दूर होते हैं, यह भी दिया है।

परमहंस परमानंददासजी ने इन पौड़ियों की खूब विस्तृत व्याख्या की है। वेद, पुराण, शास्त्र, स्मृति, भारत आदि के उद्धरण दे-देकर और अपने अनुभव के दृष्टांत और सिद्धांतों से अपनी व्याख्या को खूब खुलासा और प्रामाणिक सिद्ध कर दिया है। यह आवश्यक भी था; क्योंकि रत्नों का मोल जौहरी ही जानता है। जब तक वह रत्न की विशेषताएँ बताए और समझाए नहीं, काहे को रत्न का उचित दाम लगेगा। गुरु नानकजी की पौड़ियाँ तो रत्न हैं। देखने में ये छोटी हैं; पर नाविक की तीर की तरह घाव गंभीर करती हैं।

पुस्तकारंभ में परमहंस परमानंददासजी ने गुरु नानकजी को नाम अवतार सिद्ध किया है और इन्हें विष्णु का अवतार माना है।

हमें आशा ही नहीं पूरा विश्वास भी है कि हमारे सिक्ख-संप्रदाय के ही भाई नहीं वरन् और भी ज्ञान पिपासु तथा मुमुक्षु भाई गुरु नानकजी की पौड़ियाँ और परमहंस परमानंददासजी की विद्वत्तापूर्ण और सुबोध व्याख्या पढ़ और मनन करके गुरुजी और परमहंसजी दोनों के उद्देश्यों की पूर्ति करेंगे और लाभ उठाएँगे।

छन्नूलाल द्विवेदी

गुरु नानकजी

——:o:——

भक्ति और शक्ति अन्योन्य आश्रित हैं। भक्ति बिना शक्ति का संचार नहीं हो सकता और शक्ति बिना भक्ति निर्जीव है। भक्ति बहुव्यापक शब्द है। इससे केवल ईश्वर-भक्ति ही नहीं समझनी चाहिए; इससे देश-भक्ति, मातृ-भक्ति, गुरुजन-भक्ति, राज-भक्ति, धर्म-भक्ति आदि सभी प्रकार की भक्तियों का बोध होता है। सभी स्थानों में, जहाँ-जहाँ भक्ति या शक्ति, एक की भी आवश्यकता पड़ती है, तो दूसरी की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कहीं के इतिहास को लेकर देखिए, सर्वत्र भक्ति और शक्ति का चोली-दामन का-सा, आग-धूएँ का-सा साथ है। हाँ, अंतर केवल इतना ही है कि कहीं भक्ति का रूप धार्मिक है, तो कहीं राष्ट्रीय।

यही नहीं, भक्ति-भाव बिना शक्ति का संचार असंभव-नहीं, तो महा कठिन अवश्य है। धार्मिक आंदोलन या राष्ट्र-विप्लव अथवा

राष्ट्र-संस्थापन में जब तक जनता की भक्ति एककेंद्रीय नहीं होती, प्रजा में उद्देश्य-पूर्ति के लिये कार्य-शक्ति अर्थात् कार्य करने की क्षमता का भाव जाग्रत नहीं होता।

अँग्रेज़, मराठा या और किसी के राज्य-संस्थापन की सफलता का मुख्य कारण यह भक्ति ही है। भक्ति को यदि लक्ष्य-विशेष की सफलता के लिये समग्र शक्तियों का एक केंद्री-भूत कहें, तो अनुचित न होगा।

यही हाल सिक्खों के राज्य-संस्थापन के संबंध में भी घटता है। सिक्ख भारतवर्ष की एक शूर-वीर और लड़ाकू जाति है। अपनी शारीरिक शक्ति और रण-कुशलता के लिये यह खूब प्रख्यात हो चुकी है। अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करने के पूर्व यह एक बड़ी भक्त जाति थी। गुरु तेग़बहादुर के पुत्र सुप्रसिद्ध गुरु गोविंदसिंह के ज़माने में धर्म-रक्षा के लिये इस जाति ने अपना ध्यान भक्ति की ओर से शक्ति की तरफ मोड़ा और फिर यह शक्ति के ऐसे भक्त हुए कि रण-क्षेत्र में इन्होंने अपना दूसरा सानी नहीं छोड़ा। इनकी इस गौरव-शाली शक्ति का श्रेय इनकी एकाग्र भक्ति को ही है। सच तो यह है कि यह श्रेय, इनमें भक्ति-भाव संचरित करनेवाले, इनके आदि गुरु नानकजी को है, जिन्होंने इनमें भक्ति के बीज बोए थे, जो आगे चलकर इस रूप में विकसित हुए।

बीज अच्छे होते हैं, तो उनके फल-फूल भी अच्छे होते हैं। चिर-काल तक उनका अस्तित्व भी बना रहता है। नीव ही पर इमारत की मजबूती निर्भर है। सिक्खों की धार्मिक भावना की नीव सुदृढ और मजबूत थी। कारण, नीव डालनेवाला कोई साधारण व्यक्ति न था। अपने फन का वह पहुँचा हुआ था। फिर क्यों नीव कची रह जाती और उससे इच्छित फल की प्राप्ति न होती।

गुरु नानक को भी एक अवतार ही कहना चाहिए; क्योंकि इन्होंने भी और अवतारों की तरह ऐसे समय में जन्म लिया था, जब इन्हें धर्म के लिये काफी कष्ट उठाना पड़ा था और पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा था।

यह आजकल के धर्म-प्रचारकों की तरह न थे। इनमें लड़कपन ही से ईश्वर की लगन थी। इनके जीवन की घटनाएँ पढ़-सुनकर आप चकित रह जायँगे।

गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात्—जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तभी धर्म की रक्षा और अधर्म को नष्ट करने के लिये किसी महात्मा का प्रादुर्भाव होता है।

जिस समय गुरु नानकजी ने लाहौर जिला के अंतर्गत तिलवंडी गाँव में कार्तिक सुदी पूर्णिमा संवत् १५२६ तदनुसार सन् १४६६ई० में जन्म लिया था। उस समय भारतवर्ष की अवस्था बड़ी चिंताजनक थी। मुसलमानों ने चारों ओर खूब उपद्रव मचा रक्खा था। काफी अत्याचार फैला हुआ था। हिंदू भी इनके अत्याचारों से काफी तंग आगए थे। अपना सब धर्म-कर्म भूल बैठे थे। भूल क्या बैठे थे, उन्हें अपनी मान-मर्यादा और जीवन के लाले पड़ रहे थे। धर्म की ओर ध्यान देने का अवसर और अवकाश ही न था। मुसलमान तो हिंदू-धर्म को नेस्त-नाबूद करने ही पर तुले थे। कहना चाहिए उस समय हिंदू-धर्म कंठ-गत-प्राण हो रहा था। गीता-वाक्य के अनुसार ऐसे धर्म-संकट के समय हिंदू-धर्म की रक्षा और उसे पुनर्जीवित करने के लिये किसी-न-किसी अवतारी पुरुष का प्रादुर्भाव संभवित था। आखिर हुआ भी वैसा ही। गुरु नानकजी ने कल्याणचंद के घर में जन्म लिया ही तो।

कल्याणचंद जाति के क्षत्रिय और मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र के वंशज थे। इनका खास नाम कालूचंद था। यह तिलवंडी नगर के हाकिम बुलार के मोदी थे। कल्याणचंद को जब पुत्रोत्पत्ति की खबर मिली, तो उन्होंने बहुत दान-पुण्य किया। अपने पुरोहित पंडित हर-

दयाल ज्योतिषी को बुलाकर नव-जात शिशु की जन्म-कुंडली बनवाई और पूछा कि बालक कैसे मुहूर्त में हुआ है ? पंडितजी ने लग्न-मुहूर्त देख-भालकर और हिसाब लगाके कहा कि लड़का बड़े शुभ मुहूर्त और उत्तम लग्न में हुआ है। इसके सब ग्रह बहुत अच्छे पड़े हैं। ग्रह-फलों से यह जान पड़ता है कि यह बड़ा ज्ञानी और महात्मा होगा। देश का बड़ा उपकार करेगा। लोगों को भक्ति-मार्ग का उपदेश देगा और उन्हें सच्चे मार्ग पर चलाएगा। यही नहीं, भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों की बातें बताएगा। इसका नाम संसार में चिर-काल तक स्थायी रहेगा। अपने पुत्र को ऐसा तेजस्वी, प्रतापी और होनहार जानकर कल्याणचंद बड़े प्रसन्न हुए और ज्योतिषी को खूब धन-दौलत देके बिदा किया। फिर लड़के का जातकर्मादि बड़ी धूम-धाम से किया।

जब यह सात वर्ष के हुए, तो पिता ने बड़े समारोह और उत्साह से उनका उपनयन संस्कार किया और पढ़ना-लिखना सिखाने के लिये उन्हें गोपाल पंडित के सिपुर्द किया।

गुरु नानकजी जन्म से ही सिद्ध थे। बालकपन से ही यह ज्ञान और भक्ति की बातें करते थे। गोपाल पंडित जब इन्हें हिसाब पढ़ाते, तो यह उनसे कहते कि गुरुजी, संसार में फँसानेवाले हिसाब को मैं नहीं पढ़ूँगा। यदि आप जन्म-मरण से छुड़ानेवाले हिसाब को जानते हों, तो वह मुझे पढ़ाइए। मैं तो कर्मों के हिसाब चुकानेवाली विद्या पढ़ना चाहता हूँ। अगर आप वह विद्या नहीं जानते, तो वैसा जवाब दीजिए। गुरुजी ने कहा कि वह विद्या तो मैं नहीं पढ़ा हूँ। पढ़ा होता, तो मैं आपको भी उसे पढ़ा देता। मैं तो बही-खाते का हिसाब जानता हूँ। इस पर गुरु नानकजी उनसे बिदा होकर अपने घर चले आए।

पिता ने जब देखा कि गोपाल पंडित इन्हें कुछ न पढ़ा सके, तब उसने इन्हें ब्रजनाथ पंडित के पास संस्कृत पढ़ने बैठाया। पंडितजी जब इन्हें संस्कृत पढ़ाने लगे, तब यह पंडितजी से बोले —

ॐ नमः अक्षर का सुनहु विचार ;
ॐ नमः अक्षर त्रिभुवन सार ।
सुन पाँड़े क्या लिखो जंजाल ;
लिख रामनाम गुरुमुख गोपाल ।

गुरु नानकजी ने पंडितजी से कहा कि मैं ॐकाररूपी अक्षर को नमस्कार करता हूँ । उसी का विचार करना और उसी को सुनना ही मेरा काम है; क्योंकि वह तीनों भुवनों का सार है । जिसको आप लिखाते और लिखते हैं, वह जंजाल है । आप रामनाम लिखें । गुरुमुख पुरुषों की पृथ्वी का पालन और रक्षा राम ही करता है ।

पाठशाला के दूसरे लड़कों को भी यह रामनाम जपने की शिक्षा देने लगे । अब पंडितजी बड़े घबड़ाए और इनके पिता से आकर बोले कि आपका लड़का मेरे मान का नहीं । यह तो पाठशाला के दूसरे लड़कों को भी बहकाते हैं और उन्हें रामनाम जपने का उपदेश करते हैं ।

पंडितजी की बातें सुनकर कल्याणचंद ने उन्हें वहाँ से उठा लिया और कुतुबुद्दीन मोलवी के पास पढ़ने भेजा । मोलवी साहब जब इनसे कहा कि अलिफ कहो, बे कहो, तब इन्होंने मोलवी से कहा—

अलिफ़ अल्ला तू याद कर, ग़फ़लत मनो विसार ।
श्वासा पलटे नाम बिन, धिग जीवन संसार ॥

अर्थात् एक अल्लाह ही को याद करो । उसकी तरफ से ग़ाफ़िल मत हो । उस आदमी को धिक्कार है, जिसके साँस परमेश्वर का नाम लिये बिना ही निकलते जाते हैं । गुरु नानकजी की इन बातों को सुनकर मोलवी ने कल्याणचंद से आकर कहा कि तुम्हारा लड़का तो कोई औलिया है । यह तो मुझी को ज्ञान का मार्ग बताता है । मोलवी को इस तरह पढ़ाके गुरु नानकजी घर आए और लोगों को नाम जपने का उपदेश देने लगे और अपना सारा समय भी नाम जपने ही में बिताने लगे ।

जब इनकी अवस्था पंद्रह वर्ष की हुई, तो कल्याणचंद ने सोचा कि लड़का कुछ पढ़ता-लिखता नहीं है। इसे किसी व्यापार ही में लगाना चाहिए, जिससे यह व्यापार का काम सीख जाय। अच्छा हो, कुछ रुपए देकर इसे कोई सौदा खरीदने भेजा जाय। इस तरह धीरे-धीरे व्यापार सीख जाने पर एक अच्छी रकम लगाके इन्हें कोई व्यापार करा दिया जायगा। यह सोचकर उन्होंने गुरु नानक को कुछ रुपए देके कहा कि यह रुपए लो और जाके कोई खरा सौदा खरीद लाओ। भाई बालेजाट को भी इनके साथ करके इन्हें लाहौर भेजा।

गुरुजी रुपए लेकर बालेजाट के साथ रवाना हुए। रास्ते में एक बाग़ मिला। दो घड़ी आराम करने के विचार से दोनों उस बाग़ में गए। अंदर जाके क्या देखते हैं कि कुछ महात्मा लोग वृक्षों के नीचे आसन लगाए हुए हैं और आध्यात्मिक विचार कर रहे हैं। गुरुजी भी उनके पास जाके बैठ गए और सत्संग की बातचीत करने लगे। सत्संग समाप्त होने पर गुरुजी ने उनसे पूछा कि महाराज, अभी आप लोगों का भोजन-पानी हुआ कि नहीं? महात्माओं ने उत्तर दिया कि दो दिन से वर्षा हो रही है, कोई अन्न देनेवाला भक्त इधर नहीं निकला है। जब संयोग होगा, तभी भोग लगेगा।

यह सुनकर गुरुजी ने भाई बाले से कहा कि पिताजी ने कोई खरा सौदा करने की आज्ञा दी है। ये महात्मा लोग दो दिन से भूखे हैं। इनकी आत्मा को अन्न-वस्त्र से संतुष्ट करने से बढ़कर भला और कौन खरा सौदा हो सकता है। महात्माओं की सेवा से बढ़कर संसार में कोई भी खरा सौदा नहीं है। यह कहकर वह सब रुपयों के अन्न और वस्त्र लाके महात्माओं के आगे धर दिया और अपने घर लौट आए।

घर आने पर पिता ने पूछा कि बेटा, क्या सौदा खरीद लाए? गुरुजी ने कहा, पिताजी, ऐसा सौदा खरीद लाया हूँ, जिसका कभी नाश नहीं हो सकता। वह सौदा धर्म का है। वह इस लोक और पर-लोक दोनों में तुम्हारा सहायक होगा। भाई बाले ने भी सब हाल

विस्तारपूर्वक कह दिया। कल्याणचंद यह सुनकर चुप हो गए।

कल्याणचंद ने अपने लड़के के ये रंग-रवैए देखकर सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन यह किसी फकीर के साथ निकल जाय। इससे इसको किसी ऐसे काम में लगाना चाहिए कि इसका ध्यान बराबर उसी ओर लगा रहे। सो उन्होंने नवाब से कहकर नवाब का मोदी-खाना गुरु नानक के सिपुर्द करा दिया। अब क्या था? अब तो इन्हें मनमानी करने का अच्छा अवसर मिला। ग़रीबों और महात्माओं को खूब धन देने लगे। कोई भी अतिथि आकर जो कुछ माँगता, वही उसे दे देते। गुरुजी की उदारता देखकर, लोगों ने नवाब से कहा, गुरु नानकजी मोदीख़ाने को खूब लुटा रहे हैं। अगर थोड़े दिन और यह कहीं इसी काम पर रह गए, तो मोदीख़ाना बिलकुल खाली कर देंगे।

नवाब ने यह सुनकर गुरु नानकजी से मोदीख़ाने का हिसाब माँगा। गुरुजी ने पूरा-पूरा हिसाब दे दिया। एक पैसा भी कम नहीं निकला, न किसी तरह का फर्क ही निकला।

कल्याणचंद ने देखा कि गुरु नानकजी किसी तरह उनके हत्थे नहीं चढ़ते। अपने मन का ही करते हैं। अगर इनका विवाह कर दिया जाय और इन्हें बंधन में डाल दिया जाय, तो इनकी सब अकल ठिकाने आ जायँगी। दूसरे इससे एक पंथ दो काज होगा। यह भी किसी रस्ते लग जायँगे और वंश भी चलेगा। नहीं, तो वंश का नाश होना कैसे रोका जायगा?

यह सोचकर संवत् १५४४ में मूलचंद क्षत्रिय की सुलक्षणी नाम की कन्या से गुरु नानक का विवाह हुआ। बड़ी धूमधाम हुई। कल्याण-चंद ने दिल खोलकर इस विवाह में द्रव्य खर्च किया और बिरादरी-वालों को खूब खिलाया-पिलाया।

अब गुरु नानकजी गृहस्थ बन गए, पर उनका मन विषयों में आसक्त नहीं हुआ था। उनकी उदारता की मात्रा अब पहले से भी अधिक बढ़ गई। संतों से सत्संग करना, उनकी सेवा करनी और लोगों को

धर्म का उपदेश देना, ये ही उनके मुख्य काम थे। ईश्वर का सदा स्मरण और ध्यान किया करते थे।

संवत् १५५१ में उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम श्रीचंद्रजी था। संवत् १५५३ में दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम लक्ष्मी-चंद्रजी था। गुरुजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीचंद्रजी जन्म से ही सिद्ध हुए हैं। पाँच वर्ष की अवस्था से ही इन्होंने उदासीन-वृत्ति धारण कर लिया। संसार से विरक्त होकर रहने लगे। यथासमय इनका यज्ञोपवीत हुआ। तभी से इन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर लिया और उसके सब धर्मों को पालन करने लगे। पंद्रह-सोलह वर्ष की अवस्था होने पर वन में जाके रहने लगे। जन्म भर यह ब्रह्मचारी ही रहे। इन्हें स्त्रियों के श्रवण-दर्शन अथवा कीर्तन आदि की कभी स्वप्न में भी स्फूर्ति नहीं हुई। यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। क़रीब सौ वर्ष तक जीते रहे। सब दैवी गुणों से संपन्न थे। बाबा गुरुदत्तजी ने इनसे उपदेश लिया था। उदासीन मत श्रीचंद्र से ही चला है। इस मत में अनेक ज्योतिस्स्वरूप और आत्म-स्वरूप जैसे विद्वान् हुए हैं। इस समय भी इस मत में सैकड़ों बड़े-बड़े विद्वान् और पूर्ण विरक्त मिलते हैं। भारतवर्ष में चारों ओर कोने-कोने में इस उदासीन मत के अखाड़े हैं। इस मत के लोग अद्वैतवादी हैं।

छोटे पुत्र लक्ष्मीचंद्रजी से वेदी वंश चला। वह बाबे साहबजादे कहलाते हैं। पंजाब में सब सिक्ख और सेवक उनकी पूजा करते हैं।

गुरु नानकजी ने देखा कि अब उनके पिता का मनोरथ पूर्ण हो गया। उनको अपने वंश न चलने की चिंता थी, सो अब दूर हुई। अब हम गृहस्थाश्रम का त्याग कर सकते हैं। बिना त्याग के लोगों को परमार्थ की ओर लगाने का उपदेश नहीं दे सकता। संसार में उपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। लोगों पर दया-दृष्टि करना ही जीवन की सफलता है। बस, उन्होंने घर-द्वार सब छोड़के बाहर जंगल में जा आसन लगाया।

नवाब को जब पता लगा कि गुरु नानकजी ने संसार को त्याग दिया है और जंगल में जा बैठे हैं, तो उन्होंने इन्हें बुलाने को आदमी

भेजे। इन्होंने कहला दिया कि मुझे नौकरी करना मंजूर नहीं। इस बार नवाब ने अपने दीवान और क़ाज़ी को बुलाने भेजा। इनसे भी गुरुजी ने कह दिया कि अब मुझे मनुष्य की नौकरी नहीं करना है, अब मैं ख़ुदा की नौकरी करूँगा। नवाब इस जवाब को सुनकर चुप रह गए।

इस पर मौलवी ने नवाब से कहा कि अगर नानकजी ख़ुदा की नौकरी करना चाहते हैं, तो हमारे साथ मसजिद में चलकर निमाज़ पढ़ें। नवाब मौलवियों को साथ लेकर गुरु नानकजी के पास गए और मौलवियों की बात उनसे कही। इस पर वह मसजिद में निमाज़ पढ़ने को राजी हो गए। मसजिद में गए भी। नवाब और सब मौलवियों ने निमाज़ पढ़ना शुरू किया, पर यह चुपचाप खड़े रहे। इन्होंने निमाज़ नहीं पढ़ी। लोगों ने पूछा, आपने निमाज़ क्यों नहीं पढ़ा ? गुरुजी ने जवाब दिया कि मैं किसके साथ निमाज पढ़ूँ। नवाब साहब से उन्होंने कहा कि आप निमाज पढ़ने को खड़े तो थे, पर मन आपका काबुल में घोड़े खरीदने में लगा था, मौलवी साहब को अपनी घोड़ी के बच्चे की फ़िकर लगी थी कि कहीं कुएँ में न गिर जाय; क्योंकि बच्चा अभी दो ही दिन का था। आप लोगों के दिल की तो यह हालत थी। मैं निमाज किसके साथ पढ़ता ? नवाब और मौलवी ने इनकी बातें मान लीं। अब नवाब ने हाथ जोड़कर अपना कसूर माफ़ कराया और हुक्म दिया कि कोई भी मुसलमान इनके पास न आए।

वहाँ से चलकर गुरु नानकजी इमनाबाद में आए। नगर के बाहर ठहरे। वहाँ लालू नामक ईश्वर का एक बड़ा भक्त रहता था। वह इनके पास आके इनकी सेवा करने लगा। यहाँ गुरुजी सच्चे धर्म का उपदेश करने लगे। थोड़े दिन यहाँ रहकर वह लाहौर चले गए।

लाहौर में दुनीचंद नामक एक बड़ा कंजूस धनी रहता था। गुरुजी के वहाँ आने की खबर सुनकर लोग उनके उपदेश सुनने आने लगे। दुनीचंद कंजूस को भी लोग गुरुजी के पास ले गए और उसका

सब हाल गुरुजी से कहके कहा कि उसे भी उपदेश दीजिए । गुरुजी ने दुनीचंद को एक सुई दी और कहा कि हमारी यह अमानत अपने पास रक्खो । मैं तुमसे इसे परलोक में लूँगा । दुनीचंद ने कहा, महाराज, मैं इसे परलोक में कैसे ले जाऊँगा ? मेरा तो यह शरीर भी यहीं रह जायगा । गुरुजी ने कहा, जब तुम यह समझते हो कि परलोक में तुम्हारे साथ एक सुई भी नहीं जा सकती, तो फिर तू इतनी दौलत क्यों जमा करता है ? अपने साथ तो उसे ले ही न जा सकेगा, और न तू कभी किसी दीन-दुखियों को ही खिलाता है। फिर यह द्रव्य किस काम आएगा ? गुरुजी की यह बात सुनकर वह बड़ा शर्मिंदा हुआ । गुरुजी से उसने माफी माँगी । गुरुजी ने भी उसे उपदेश दिया और कहा कि इस संचित धन का सदुपयोग इसी में है कि यह परोपकार में लगाया जाय। इसी से तेरा लोक-परलोक दोनों सुधरेगा। गुरुजी का उपदेश उसके मन में बैठ गया । अब वह नित्य उसका सदुपयोग करने लगा । परमेश्वर के अर्थ उसे खरचने लगा । गरीब-गुरबों की मुराद पूरी करने लगा। फल यह हुआ कि अब उसकी आत्मा को खूब शांति मिलने लगी और वह सदा प्रसन्न रहने लगा । व्यापार में भी दिन दुगुना और रात चौगुना फायदा होता रहा ।

लाहौर से गुरु नानकजी सियालकोट गए । वहाँ मीर हमजा गौस सय्यद एक मकबरे में रहता था । नगर के लोगों से वह नाराज हो गया था । नगर को नष्ट करने के लिये वह अनुष्ठान कर रहा था । गुरुजी उसके पास गए; पर उसने गुरुजी से भेंट भी न की । गुरुजी लौट आए । इधर इनका आना था कि उधर वह मकबरा, जिसमें वह रहता था, फट गया। अब वह दौड़ा हुआ गुरुजी के पास आया । गुरुजी ने पूछा, तू किस काम के लिये अनुष्ठान करता है ? उसने कहा, इस नगर के एक आदमी ने मुझे अपना लड़का देने को कहा था पर उसने अपना वादा पूरा नहीं किया । इस नगर के लोग बड़े झूठे मालूम होते हैं । इनको दंड देने के लिये मैं अनुष्ठान करता हूँ ।

भाई मरदाना और भाई बाला सदा गुरुजी के साथ रहते थे । गुरुजी

ने भाई मरदाने को दो पैसे देकर कहा कि बाजार से एक पैसे का सच और एक पैसे का झूठ खरीद लाओ। वह पैसे लेकर बाजार में दर-दर घूमा। जहाँ वह जाता, सब उसकी बात पर हँसते। आखिर वह खाली हाथ लौट आया। गुरुजी ने कहा, फिर जा। कहीं-न-कहीं वह मिल ही जायगा। घूमते-घूमते वह भाई मूला के लड़के के पास पहुँचा। उसने दोनों पैसे ले लिये और एक कागज के टुकड़े पर लिख दिया कि मरना सच है और दूसरे टुकड़े पर लिखा कि जीना झूठ है। दोनों टुकड़े मरदाने को दे दिए। उसने उन्हें लाकर गुरुजी के आगे धर दिया। गुरुजी ने उन दोनों टुकड़ों को मीर हमजा को दिखाकर कहा, देखो, इस नगर में ऐसे-ऐसे लोग भी रहते हैं। फिर आप नगर के सब आदमियों को कैसे झूठे बताते हैं? फकीर को दोस्त और दुश्मन को एक निगाह से देखना चाहिए। फिर गुरुजी ने भाई मूला को बुला भेजा और उसे अपने साथ लेकर वहाँ से चल दिया।

रास्ते में मालवा आदि देशों में लोगों को उपदेश करते हुए गुरुजी हरद्वार पहुँचे। वहाँ देखा कि लोग गंगाजी में पूरब की तरफ मुँह करके खड़े होकर तर्पण कर रहे हैं। गुरु नानकजी पश्चिम की तरफ मुँह करके चुल्लू-चुल्लू जल बाहर फेंकने लगे। किसी ने पूछा, आप क्या कर रहे हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि पंजाब में हमारा खेत है, उसको सींचते हैं। लोगों ने पूछा, वहाँ यह जल कैसे पहुँचेगा? गुरुजी ने कहा, जैसे तुम्हारा जल पितरों को पहुँचेगा, वैसे यह जल भी हमारे खेत में पहुँचेगा। इस पर लोग वादाविवाद करने लगे। तब गुरुजी ने कहा कि पुत्र का मुख्य कर्त्तव्य यह है कि वह जीते माता-पिता की सेवा करे, उनको स्नान कराए, भोजन कराए, उनके हाथ-पैर दाबे, उनके बिछौने को झाड़े, उनकी तन, मन और धन से सेवा करे, उनको ईश्वर की तरह, देवता की तरह, गुरु की तरह माने। सो इन बातों को तो तुम लोग करते नहीं और उनके मर जाने पर उनके पीछे जल फेंकने लगते हो। इससे क्या होता है? माता-पिता पुत्र को इसलिये उत्पन्न करते हैं कि वह उनकी सेवा करें,

और वृद्धावस्था में उनको कोई कष्ट न पहुँचने पाए, न कि इसलिये कि जीते-जी तो उन्हें कोई पूछे नहीं और उनके मरने पर उनके पीछे जल फेंके। मनुष्य-जन्म का यह कर्तव्य है कि अपने जीते हुए माता पिता की सेवा करे, साधु और ब्राह्मणों की सेवा करे, सत्संग करे, ईश्वर की भक्ति करे, किसी जीव को दुःख न दे, सत्य भाषण करे। गुरुजी के इस उपदेश को सुनकर हरद्वार के सब यात्री इनके सेवक बन गए।

हरद्वार से गुरुजी अलीगढ़, मथुरा, आगरा आदि स्थानों में अपने उपदेशरूपी अमृत की वर्षा करते हुए बनारस पहुँचे। वहाँ शहर के बाहर एक बाग़ में ठहरे। वह गुरुजी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। अब तक वह गुरु का ही बाग़ बोला जाता है। गुरुजी ने वहाँ कुछ दिनों तक निवास भी किया था।

एक दिन भाई मरदाना ने उनसे पूछा, महाराज, सब लोग परमेश्वर के हुक्म को क्यों नहीं मानते हैं? मनमाना कर्म सब क्यों करते हैं? वेद और शास्त्र में कहे धर्म को ही सबको मानना चाहिए। गुरुजी ने उत्तर में एक लाल निकालकर भाई मरदाना को दी, और कहा कि जाओ, इसे बाज़ार में बेच आओ। भाई मरदाना उस लाल को लेकर पहले एक कुँजड़े के पास गया। वह उसको उसके बदले में थोड़ी-सी तरकारी देने लगा। फिर वह बनिए के पास गया, वह उसके बदले में सेर भर आटा देने लगा। हलवाई थोड़ी मिठाई देने लगा। तब वह उसे एक सराफ़ के पास ले गया। उसने उसके बदले में एक सौ रुपए भेंट किए और कहा कि इसका ठीक-ठीक दाम मैं नहीं आँक सकता हूँ। तब मरदाना लाल लेकर गुरुजी के पास लौट आया और सब हाल कह सुनाया। गुरुजी ने कहा, भाई मरदाना, जैसे लाल की क़दर जौहरी ही कर सकता है, कुँजड़ा, बनिया और हलवाई नहीं, वैसे ही परमेश्वर के हुक्मरूपी लाल की क़दर, याने नाम का स्मरण करना, परमेश्वर का चिंतन और ध्यान करना, उसका स्मरण करना, पूर्ण भक्तों के यहाँ ही हो सकती है। जो निष्काम संत और महात्मा हैं, वे ही नाम-स्मरणरूपी लाल की क़दर जानते हैं। जो

भक्तों का ढोंग करते हैं, वे सकामी हैं, वे उस लाल को काँच के बराबर समझते हैं और उसे काँच से बदल डालते हैं; क्योंकि स्त्री-पुत्रादि काँच-रूपी विषयों की प्राप्ति के लिये वह नाम-रूपी लाल को जपते हैं। याने उसे काँच से बदलते हैं। इसी से वे सदा दुःख भोगा करते हैं, बारबार जन्म लेते और मरते हैं। निवृत्ति-मार्ग को कभी नहीं प्राप्त होते।

बनारस में गुरुजी के उपदेश सुनने बहुत लोग आते और उनके उपदेश से लाभ उठाते।

बनारस से गुरुजी पटने गए। वहाँ भी अपने उपदेशों से लोगों को कृतार्थ किया। वहाँ से गया, भागलपुर, मुँगेर, राजमहल, मुर्शिदाबाद आदि स्थानों में होते हुए कामरू देश में पहुँचे।

कामरू में बड़ा भ्रष्टाचार फैला था। लोग सब मांसाहारी थे। उन्हें मांस छोड़ने का उपदेश दिया। फिर कामत्ता गए। वहाँ देखा कि वाम-मार्ग का बड़ा प्रचार है, जो वेद-शास्त्र से वर्जित है। वहाँ गुरुजी ने समझाया कि जीवों की हिंसा करना अधर्म है। तुम-को यदि कोई मारे और काटे, तो तुम्हें कितना कष्ट और दुःख होगा, तुम्हारे सामने अगर तुम्हारी संतति को कोई काटे, तो तुम्हें जैसे अत्यंत कष्ट होगा, वैसेही जिनको तुम मारते हो, ये भी तो किसी की संतति हैं, उनको भी कष्ट होता होगा। कपड़े में जरा-सा खून लगने से तुम समझते हो कि तुम्हारा कपड़ा अपवित्र और मलिन हो गया है, वैसे ही मांस खाने से तुम्हारे हृदय मलिन और अपवित्र हो गए हैं। मनुष्य-जन्म जीव हिंसा के लिये नहीं है, जीव-रक्षा करने के लिये है। मांस-भक्षण तो सिंह और सियार के लिये है, न कि मनुष्यों के लिये। गुरुजी के उपदेशामृत का असर वहाँ बहुतों के हृदय पर पड़ा और उन्होंने वाम-मार्ग को छोड़ दक्षिण मार्ग को ग्रहण किया।

वहाँ का पानी भी खारा था। मरदाना ने कहा, गुरुजी, यहाँ का खारा पानी पिया नहीं जाता। गुरुजी ने चट अपनी बरछी जमीन में

दे मारी। मीठे पानी की धार निकल पड़ी। मीठे पानी का वह चश्मा अभी तक वहाँ गुरु नानकजी के नाम से मशहूर है।

वहाँ से आसाम आदि देशों में भ्रमण करते और अपने उपदेश की वर्षा करते हुए गुरुजी श्रीजगन्नाथपुरी में पहुँचे। वहाँ पर समुद्र के किनारे गुरुजी ने आसन जमाया। वहाँ भी पानी खारा था। बरछा मार कर मीठा पानी निकाला। फिर वहाँ बावली भी बनवा दी। अब भी बाबानानक के नाम से वह बावली प्रसिद्ध है। जगन्नाथपुरी में भी गुरुजी ने लोगों को उपदेश दिया।

वहाँ से जल-मार्ग से तैलंग देश को गए। वहाँ से करनाटक, मालाबार और दक्षिण के देशों में घूमते हुए महाराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़ होते हुए द्वारकापुरी पहुँचे। वहाँ थोड़े दिन रहे। वहाँ से सिंहलद्वीप, सिंधदेश होते हुए मुसलमानों के तीर्थ-स्थान मक्का पहुँचे।

मक्का में गुरुजी मसजिद की तरफ टाँगें फैलाके सो रहे। इस पर वहाँ के मुल्ला बड़े बिगड़े और इनसे कहने लगे कि पैर दूसरी ओर करके सो। इन्होंने कहा, भई, मैं मुसाफिर हूँ। बहुत थका हूँ। आप ही पाँव उठाके घुमा दीजिए। वह पाँव उठाके जिधर फेरता उसी तरफ मसजिद का द्वार हो जाता। मुल्ला इनकी सिद्धि को देखकर इनके पैरों पड़े और समझ गए कि यह कोई औलिया फकीर है। गुरुजी ने उनको भी सच्चे मार्ग का उपदेश दिया। वहाँ से गुरुजी मदीना, ईरान, फारस और रूस में होते हुए बुग़दाद पहुँचे। वहाँ के खलीफा ने इनका बड़ा स्वागत और सत्कार किया और इनके उपदेश पर मोहित हो गया। कुछ काल तक बड़े आदर-सत्कार से गुरुजी को अपने यहाँ रक्खा। उसने गुरुजी को एक लंबा कुरता दिया, जिस पर सूत से कुरान की आयतें निकाली हुई थीं। बहुत-सा द्रव्य भी उसने भेंट किया, पर गुरुजी ने उसे नहीं लिया।

फिर रूस, ईरान होते हुए बुखारा में आए। यहाँ मरदाना की

मृत्यु हो गई। मरदाना जन्म का मिरासी, गानेवाला था। गुरुजी जिन भजनों को बनाते थे, मरदाना उन्हें रागों में गाके सुनाता था। छोटी उम्र ही से यह गुरुजी के साथ रहा करता था। गुरुजी पर इसकी बड़ी श्रद्धा थी। यद्यपि यह जाति का मुसलमान था, पर मुसलमानी मत को वह मानता न था। अपने को वह हिंदू ही कहता था।

बुखारा से चलकर काबुल, कंधहार होते हुए फिर पंजाब में करतारपुर में आ गए। अब वह यहीं रहने लगे। वहाँ उन्होंने एक अतिथिशाला स्थापित की। जो कोई अतिथि वहाँ आता, उसकी अन्न जल आदि से खूब सेवा होती।

गुरु नानकजी सबको भक्ति का ही उपदेश करते थे। यह उनके उपदेश का ही प्रताप और प्रभाव था कि उन्होंने बड़े-बड़े विकट देशों में जाके अपने उपदेशामृत से महान् जंगली जाति के लोगों को भी सच्चे मार्ग पर ले आए। मुसलमानों के चित्त से हिंदुओं के तरफ की घृणा को दूर किया। उनके उपदेश से प्रभावित होकर मुसलमानों ने हिंदुओं पर ज़ुल्म करने भी छोड़ दिए थे। क्या यह देश की कम सेवा है? ऐसे विरले ही पुरुष देश में उत्पन्न होते हैं, जो देश-सुधार के लिये, उनमें सच्ची भक्ति उत्पन्न करने के लिये, उन्हें सच्चे मार्ग पर लाने के लिये, अपना घर-द्वार छोड़कर देश-सेवा में लीन और लय हो जाते हैं।

गुरुनानक ने पंजाब देश को सुधार दिया। गाँव-गाँव में धर्मशालाएँ बन गईं। उनमें अतिथियों का सत्कार होने लगा। स्थान-स्थान पर सत्संग और कथाएँ होने लगीं। गुरुनानकजी की चलाई हुई चाल अब तक वहाँ चली आती है।

संवत् १५६० में गुरुजी की माता का स्वर्गवास हुआ। बीस दिन पीछे उनके पिता की भी मृत्यु हुई। संवत् १५९६ में ६९ वर्ष १० महीने की अवस्था में गुरुनानकजी भी अंगदजी को गुरुआई देकर इस अनित्य संसार का त्याग कर परब्रह्म में लीन हो गए।

कहते हैं जब गुरुजी इस नश्वर संसार को छोड़कर चले गए, तब इनके हिंदू और मुसलमान शिष्य आपस में झगड़ने लगे। हिंदू शिष्य कहें, हम इनके शव का अग्नि-संस्कार करेंगे और मुसलमान कहें, हम इसे दफ़नाएँगे। गुरुनानकजी दोनों के गुरु थे। दोनों का बराबर हक था। ऐसे अवसर पर कोई क्यों पीछे हटने लगे। यह तो श्रद्धा और भक्ति का मरन था। अब यह झगड़ा निपटे कैसे? आखिर यह तय हुआ कि न इस शव का अग्नि-संस्कार ही किया जाय और न यह दफनाया ही जाय। इसे जल में डुबो दिया जाय, जिसमें हिंदू और मुसलमान दोनों धर्म के शिष्यों में से किसी को किसी प्रकार की आपत्ति न रहे। जब दोनों धर्मवाले इस पर राज़ी हुए और शव के पास उसे जल-प्रवाह करने को गए, तो देखते क्या हैं कि वहाँ शव ही नहीं है। खाली कफ़न पड़ा है। सभों को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उस कफन को ही फाड़कर आधा हिंदू शिष्यों ने लिया और आधा मुसलमान शिष्यों ने। हिंदू ने अपने धर्मानुसार उस कफ़न का अग्नि-संस्कार आदि क्रिया की और मुसलमानों ने अपने मजहब के मुताबिक़ उसे दफन किया। अंत में हिंदुओं ने उनकी स्मृति में एक समाधि बनाई और मुसलमानों ने एक अलग क़ब्र, किंतु दोनों इमारतें रावी की बाढ़ में आकर बह गईं।

गुरु नानकजी को कोई कबीर का शिष्य बताता है और कोई कहते हैं कि इन्होंने सय्यद हुसेन नाम के एक मुसलमान फकीर से दीक्षा ली थी। चाहे किसी से इन्होंने दीक्षा ली हो या न ली हो; पर इसमें तो किसी को शंका नहीं कि यह ईश्वर के सच्चे भक्त और उस परमेश्वर की भक्ति के एक सच्चे और पक्के प्रचारक थे, जिस कार्य में यह सफल भी हुए। इस प्रकार इन्होंने देश की अमूल्य सेवा की। इनका मुख्य उद्देश्य हिंदू-मुसलमान के परस्पर के धार्मिक, सामाजिक विरोध को मिटाना था। यह काम इन्होंने बड़ी निस्पृहता से किया और सफल भी हुए। कितने छोटे-बड़े मुसलमान इनके शिष्य हो गए और इनके उपदेशामृत से सुधर गए। अगर यह ऐसे अवसर पर न हुए

होते, तो कौन कह सकता है कि हिंदू-मुसलमान का विरोध किस अवस्था तक पहुँचा होता और उसका परिणाम हम लोगों को किस रूप में भोगना पड़ता ?

गुरुनानकजी एकेश्वरवादी थे। यह एक ब्रह्म के उपासक थे। और सब ढोंग-ढकोसले यह नहीं मानते थे। जाति-पाँति को यह बिलकुल नहीं मानते थे। इनका सिद्धांत था कि--

जाति-पाँति पूछे नहीं कोई ;
हर को भजे सो हर का होई।

नीच-ऊँच, छोटा-बड़ा चाहे वह किसी जाति का हो, सबको वह ईश्वर-भक्ति का अधिकारी समझते थे। और मतों की तरह इनके सिद्धांत संकुचित और आचार-विचारों से जकड़े हुए नहीं थे। ईश्वर-भक्ति के सच्चे मार्ग पर चलनेवाले प्राणिमात्र के लिये इनके धर्म के दरवाजे सदा खुले रहते थे। हिंदू-मुसलमान के मत-मतांतरों को यह नहीं मानते थे। तभी तो यह हिंदू और मुसलमान दोनों के तीर्थों में गए थे और दोनों मतों के महंत और मुखिया इनके उपदेश के कायल थे। कभी यह हिंदू-साधु के वेश में और कभी मुसलमान-फकीर के वेष में घूमते हुए देखे गए हैं।

चालीस वर्ष की अवस्था में इन्हें सिक्ख-गुरु की पदवी मिली। सिक्ख का मतलब शिष्य से है। सिक्ख शिष्य का अपभ्रंश है। यही सिक्ख-धर्म के आदि प्रवर्तक थे। इनके उपदेशों का संग्रह ग्रंथ-साहब नाम से प्रसिद्ध है। वह सिक्खों का धर्म-ग्रंथ है। सिक्ख समुदाय के लोग नित्य ग्रंथ-साहब का पूजन और पाठ करते हैं। ग्रंथ-साहब में और मतों का खंडन-मंडन नहीं है। उसमें सब जीवों के लिये साधारण और सच्चा उपदेश है, इनके सब उपदेश वेद से सम्मत हैं। वेद के विरुद्ध इनका कोई उपदेश नहीं है।

गुरुपन के घमंड में यह सदा अपनी ही नहीं हाँकते थे। जो कुछ उपदेश देते वह देश, काल और स्थिति के अनुरूप होते। यह भली

भाँति समझते थे कि संसारी जीव ईश्वर-भक्ति में कितना समय लगा सकता है और कहाँ तक वह धर्म-कार्य में तत्पर रह सकता है। यही सब समझकर उन्होंने मुक्ति की कोई कठिन युक्ति नहीं बताई है। सबसे अधिक जोर उन्होंने नाम के जपने और सत्संग करने ही पर दिया है; क्योंकि वह समझते थे कि न मनुष्य की आयु ही इतनी बड़ी है और न उसमें इतनी श्रद्धा-भक्ति है और न धैर्य और सहनशीलता कि वह बड़े-बड़े अनुष्ठान और कर्म आदि कर सके। दूसरे इस काल में कर्म, उपासना और ज्ञान के अधिकारी बहुत कम हैं। इसी से उन्होंने नाम जपने और सत्संग करने का उपदेश दिया है। इनमें न अधिक काल की आवश्यकता है और न किसी विधि की जरूरत है। दोनों कल्याण के सुगम उपाय हैं और इनमें सब वर्णों तथा आश्रमों का अधिकार भी है। इसी से गुरुजी ने इन्हीं दोनों का उपदेश अधिकतर किया है; जिसमें अधिक परिश्रम बिना जीवों का कल्याण हो।

छन्नूलाल द्विवेदी

गुरु नानकजी

श्रीभगवान श्रीचन्द्रजी साहब

सिक्ख सम्प्रदाय के दसों गुरुओं के चित्र

श्रीमहंत बाबा श्रीविचारदासजी साहब, लखनऊ
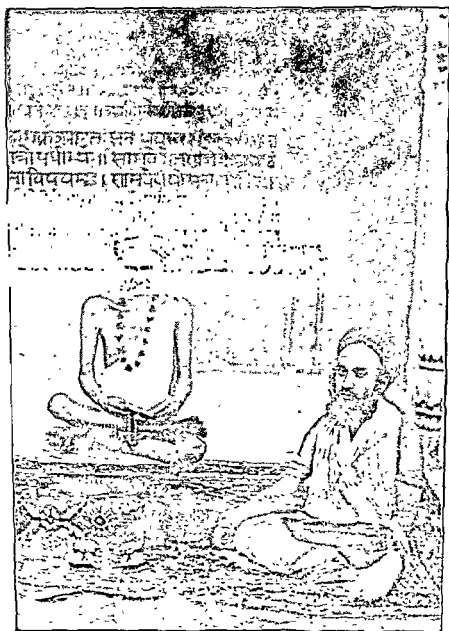
श्रीमहंत बाबा श्रीनारायणरामजी साहब, रानीपाली

स्वामी श्रीपरमानंदजी साहब परमहंस उदासी

जप्यजी

दोहा

श्रीगुरुनानक को सकल करैं वन्दना लोक।
नाम लेत अघ टरत हैं ध्यान धरत हो मोक्ष॥ १॥
भेद अनक का अर्थ है ने निषेध तू जान।
भेद रहित जो नित्य है सो नानक पहिचान॥ २॥
निराकार निर्वयव जो पूर रह्यो सब थाहि।
लोकिन हित उपकार को प्रगटभयो जगमाहि॥ ३॥
वन्दों परमानन्द को जो अनन्त निजरूप।
ध्यानधरत जेहि अघ मिटैं स्मृत है ब्रह्मरूप॥ ४॥
वर्णाश्रम जामें नहीं नहीं जाति अरु रूप।
जो जानै निजरूपकर लयपद परम अनूप॥ ५॥
ऊँच नीच जामें नहीं नाहीं जामें भेद।
पूरण सबमें एक जो रहित त्रिविध परिछेद॥ ६॥
हंसदास गुरु को प्रथम प्रणवौं वारम्बार।
नामलेतजेहि तम मिटै अघ होवत सब छार॥ ७॥

चौपाई

परमानंद ममनाम पछानो। उदासीन मम पंथ को जानो।
रामदास ममगुरुके गुरुहैं। आत्मवित्त जो मुनिवर मुनिहैं॥ १॥

दोहा

परशुराम मम नगर है सिन्धु नदी उसपार।
भारतमण्डल के विषे जानै सब संसार ॥ १ ॥
गुणग्राहि मिलिहै नहीं काको करूँ बखान।
जो जानै मम मरमको सो विरलो जगजान ॥ २ ॥
तदपि दया उरधारिकर गुणको करूँ बखान।
जो जानै अस तत्त्व को पावे पद निर्वान ॥ ३ ॥
जप नामक यह ग्रन्थहै जो सुनि पावे कान।
रहै सदा आनन्द में पावे पद निर्वान ॥ ४ ॥
उपज्यो मनहि हुलास अब टीका करूँ बखान।
परमानन्दी नाम अस सुनो हो सन्त सुजान ॥ ५ ॥
सन्तसभा के अग्र में विनय करूँ करजोर।
यदपि असंगत है कछू दीजे दोष न मोर ॥ ६ ॥
ज्यों अब्धी जलजाय के वारिद माधुर होय।
त्यों सन्तन मुखजाय के दूषण भूषण होय ॥ ७ ॥
वाहगुरू के नाम को प्रणवौं बारम्बार।
जो जपिहै असनामको अघहोवत तस छार ॥ ८ ॥

श्रीवाहगुरु इस मन्त्रको मंगलरूप जान-
कर इस ग्रन्थ के आदि में इसी मन्त्र
के अर्थ को हम दिखाते हैं ॥

मोक्षलक्ष्मी वहति स्वभक्तान् प्रापयति।
ते श्रीवहोविष्णुः श्रीवहश्वासौगुरुश्चेतिश्रीवाहगुरू ॥

श्री का अर्थ मोक्षरूपी लक्ष्मी है जो इस मोक्षरूपी लक्ष्मी को अपने भक्तों के लिये प्राप्तकरे अर्थात् जो अपने भक्तों को मोक्षरूपी लक्ष्मी देवे उसी का नाम है "श्रीवाह" याने मोक्ष देनेवाला। ऐसा कौन है ? विष्णु। वही विष्णु ही जो गुरुरूप होकर संसार में लोगों के उद्धार के लिये प्रकट होते हैं, उसीका नाम श्रीवाहगुरु है। ऐसे गुरु कौन हुये हैं ? नानकजी। उन्हीं का नाम वाहगुरु है। श्रीवाहगुरु इस मन्त्र के अर्थ से ही सिद्ध होता है कि आपही विष्णु ने गुरुरूप होकर संसार में जीवों के कल्याण के लिये अवतार लिया है। नानक शब्द के अर्थ से भी गुरु नानकजी ईश्वर का अवतार साबित होते हैं; क्योंकि न १ अन २ क ३ इन तीनों में नकार का अर्थ निषेध है, अनका अर्थ प्राण है, याने शरीर जो इन्द्रियादिक उपाधियों का धारण करनेवाला है और ककार का अर्थ सुख है। तीनों पदों का मिल करके यह अर्थ हुआ 'नानश्चासौकश्चेतिनानक' जो शरीरादि उपाधियों से रहित हो और सुखरूपहो, उसीका नाम नानक है। ऐसा व्यापक ब्रह्म चेतन ही है। श्रुतियाँ भी इसी अर्थ को कहती हैं। अप्राणोह्यमनाः शुभ्रः। वह ब्रह्म प्राणों से और मनसे रहित है और शुद्ध भी है। कंब्रह्मखंब्रह्म। वह ब्रह्म सुखरूप है और व्यापक है। वही सुखरूप और व्यापक नानक पद का अर्थ है। इसवास्ते नानक ही ब्रह्मरूप हैं। अब नानकपद के दूसरे अर्थ को दिखाते हैं।

'न अनं चलमित्यचलम् कं सुखं यस्मादितिनानक' इस व्युत्पत्ति में भी नानक शब्द में तीनही शब्द सिद्ध होते हैं। न १ अन २ क ३ नकार का अर्थ निषेध, अनका अर्थ क्रिया और ककार का अर्थ सुख है। तीनों पदों का मिलकर ऐसा अर्थ हुआ, जो क्रिया से रहित है अर्थात् जो अचल है और सुखरूप है, उसीका नाम है नानक। ऐसा व्यापक चेतन ब्रह्म ही है। चेतन ब्रह्म का नाम ही नानक है। अब व्युत्पत्ति सिद्ध तीसरे अर्थ को दिखाते हैं। नानक शब्द के दो पद बनालेने। एक न और दूसरा अनक। न विद्यतेअकंदुःखं यस्मिन् सोऽनक। अक नाम दुःख है अर्थात् नहीं है विद्यमान दुःख जिसमें

सो अनक हुआ और आदिवाले नकार का अर्थ पुरुष है। न पुरुषश्चासौअनकश्चेति नानक। जो पुरुषहो और दुःखादिकों से रहितहो उसीका नाम नानक है। अथवा अनक पद का अर्थ द्वैत है और नकार का अर्थ निषेध है। नहीं है विद्यमान तीनोंकालों में द्वैत जिसमें उसीका नाम नानक है। ऐसा कौन है ? निर्गुण ब्रह्म। नानकजी ही निर्गुण ब्रह्मरूप हैं। पूर्व्वोक्त नानक शब्द के अर्थ से ही गुरुनानकजी ब्रह्मरूप साबित होते हैं। ब्रह्मरूप साबित होने से ही वह अवतार भी साबित होते हैं।

प्रश्न—संसार में तो बहुत लोग, इतर मतवाले, गुरुनानकजी को ईश्वर का भक्त बतलाते हैं, ईश्वर का अवतार नहीं, तब फिर आप उनको अवतार कैसे बतलाते हैं ?

उत्तर—जो अज्ञानी मूढ़ पक्षपात से भरे हैं, वह गुरुजी को अवतार नहीं मानते हैं; क्योंकि उनके चित्त अज्ञान से आच्छादित होरहे हैं। विचार करने से तो वह अवतारही साबित होते हैं। यदि वह भक्त होते तो भक्तमाल में उनकी भी कथा होती, सो तो नहीं है, क्योंकि वह भक्त नहीं हुये हैं। किन्तु भक्तों द्वारा पूजने योग्य हुए हैं। इसवास्ते भक्तों की कथाओं में उनकी कथा नहींहै। दूसरेपुराणों में अवतारों की कथायें हैं, उनके अवतार की भी कथा पुराणों में हैं। श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में ही गुरु नानक का कलियुग में अवतार होना लिखा है।

अथासौयुगसन्ध्यायां दस्युप्रायुराजसु।
जनिताविष्णुयसोनाम्नाकल्किर्जगत्पतिः ॥ १ ॥

अर्थ—बुद्धअवतार के अनन्तर युग की सन्धिकाल में राजालोग जब कि वर्णाश्रमों की मर्य्यादा से रहित हो जायँगे, तब जगत्पति, जो विष्णु हैं, नानकरूप अवतार को लेकर, विष्णु के यश अर्थात् विष्णु सम्बन्धी नाम के माहात्म्य को, कलि के दोषों को दूर करने के लिये उपदेश करेंगे। यदि कोई ऐसी शङ्का करे कि मूल में नानकपद

है नहीं, तव फिर नानक अवतार इसवाक्य से कैसे सावित होसक्ता है। यह वाक्य तो कल्कि अवतार के होने को कहता है। महान् पुरुषोंका साक्षात् नाम नहीं लेना चाहिए; क्योंकि महान् पुरुष परोक्ष प्रिय होते हैं, इसवास्ते अक्षरों में ही गोप्यरूप करके नानक नाम को मूलकार ने रक्खा है सो दिखाते हैं। नाम्ना कल्किवाले मकार को जव नाम्ना से निकालकर जुदा करदिया तव नान्मा हुआ, फिर कल्किवाले ककार को नान के आगे जोड़कर वीच में आकार का आगम करदिया तव नानक माकलि हुआ तव ऐसा अर्थ होगा कलि के दोषों को दूर करनेवाला नानक अवतार युग की सन्धि में होगा। युग के आदिकाल का नाम सन्धिकाल है और युगके अन्तकाल का नाम सन्ध्यांशकाल है। इसवाक्य में सन्ध्यांशकाल नहीं है किन्तु सन्धिकाल है। इसवास्ते यह वाक्य कल्किअवतार पर नहीं है, किन्तु गुरु नानकजी के अवतार पर है। कल्किअवतार पर का यह दूसरा वाक्य है।

कलेः सन्ध्यांशकाले कल्क्यवतारइतिस्थितिः ।
कलेरंते म्लेच्छगणनाशकः स भविष्यति ॥ १ ॥

कलि के सन्ध्यांशकाल में कल्कि अवतार होगा और कलिके अन्त में म्लेच्छों के गणोंका वह नाश करेगा। यह वाक्य कल्कि अवतार को कलि के अन्त में वताता है। इसी से सिद्ध होता है कि पूर्ववाला वाक्य गुरुनानकजी के अवतार को ही कहता है। भविष्यत् पुराण में भी गुरुनानकजी के अवतार होने की कथा है।

ब्रह्माणंजनकःप्राह सन्देहोमेमहानभूत् ।
कलौलोका भविष्यन्ति दुराचाराःसुपापिनः ॥ २ ॥
निष्कृतिश्च कथं तेषां नरकान्मेवद प्रभो ॥ ३ ॥

एक समय जनकजी ने ब्रह्माजी से कहा कि हमको एक वड़ा सन्देह हुआ है, वह यह कि कलियुग में लोग वड़े दुराचारी होंगे, उनका नरक से छुटकारा कैसे होगा, सो कहिये।

जनकस्य वचःश्रुत्वा ब्रह्मा प्रोवाच सादरं ।
शृणुराजन्कथांदिव्यां कलिपापप्रणाशिनीम् ॥ ४ ॥

जनकजी के वाक्य को सुनकर, ब्रह्माजी बड़े आदर से बोले हे राजन्! कलिके पापों को नाश करनेवाली जो दिव्य कथा है, उसको तुम सुनो।

पूर्वं द्रष्टुं विष्णुलोकं वैकुण्ठाख्यं गतं मया।
विष्णुःसकाशादाश्चर्यं राजन्नेतन्मया श्रुतम् ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी कहते हैं, हे राजन्! एक समय में विष्णु के दर्शन के लिये वैकुण्ठ गया था, वहाँ विष्णु से जो आश्चर्य मैंने सुना है, उसको तुम सुनो।

विष्णोर्लोकेमहाप्राज्ञो राज्ञातत्रस्थितेमयि।
स्तुत्वाम्बरीषःपप्रच्छ विष्णुसान्निध्यगःप्रभुम् ॥ ६ ॥

विष्णुलोक में मैं विष्णु के पास बैठाही था कि इतने में महान् बुद्धिमान् अम्बरीष राजा वहाँ आया और स्तुति करके विष्णु से पूछने लगा।

विष्णुर्महाख्यानंश्रुतं भूलोकवासिनामया।
तत्रावताराबहुशोमायिनस्त्वेवधारिताः ॥ ७ ॥

राजा अम्बरीष ने विष्णु से कहा कि भूलोक वासियों के कथन से मुझे मालूम हुआ है कि आपने भूलोक में बहुत से अवतार धारण किये हैं।

नामावतारश्चश्रुतः कदायास्यतितद्वद।
इतिपृष्टोमहा विष्णुर्विहस्याहाम्बरीषकम् ॥ ८ ॥

उनमें से नामावतार भी एक है। उसे आप कब धारण करेंगे? जब कि ऐसा अम्बरीष राजा ने पूछा तब विष्णु ने हँस करके अम्बरीष से कहा।

राजर्षेस्त्वंप्रियतमो ममभक्तिपरायणः ।
अतःशृणुकथांदिव्यां कथयामितवप्रियाम् ॥ ९ ॥

हे राजऋषि ! तुम हमारे भक्ति परायण प्यारे भक्त हो इस वास्ते हम तुमसे दिव्य कथा को कहते हैं, सुनो ।

गतेचतुःसहस्राब्दे राजन्यंचशतेतथा ।
कलौसन्तापिकेचापि दुराचारः प्रवर्तते ॥ १० ॥

हे राजन् ! जब कि चार हजार और पाँच सौ वर्ष कलि का व्यतीत होगा और लोक दुराचार से अति संतप्तहोंगे ।

तदानामावतारोमे पांचालेयास्यतिध्रुवं ।
कलिदोपहतज्ञानलोकस्योद्धारहेतवे ॥ ११ ॥

तब पांचालदेश में मेरा नामावतार होगा जो कलिके दोषों के कारण जिनका ज्ञान नष्ट होगया है, ऐसे प्राणियों के उद्धार के लिये, उनसे नाम जपावेगा ।

क्षत्रियस्यकुलेभूत्वा नानकेतिनामतः ।
लोकसंरक्षणार्थायवक्ष्येसिद्धपथंनृणाम् ॥ १२ ॥

सूर्यवंशी क्षत्रिय के गृह में नानक नाम का पुरुष अवतार लेकर पुरुषों को सिद्धमार्ग बताएगा ।

शिष्याःप्रापयन्तिपदवीं ममध्यानपरायणाः ।
इमंनामावतारंमे विद्धिविष्णुपरायणम् ॥ १३ ॥

जो शिष्य मेरे ध्यान परायण होंगे, वह मोक्षरूपी पदवी को प्राप्त होंगे । इसको तुम मेरा नामावतार जानो ।

मामेवमनसाध्यात्वा मागमिष्यन्तिचाव्ययं ।
तस्यमार्गंप्रवक्ष्यन्ति सोमपानः सदैवते ॥ १४ ॥

मेराही ध्यान करके मेरे अव्यय स्वरूप को प्राप्त होंगे, मेरेही मार्ग को कहेंगे और सदैव नामरूपी अमृत का पान करेंगे ।

मर्त्यलोकेवदिष्यन्तिते भक्ताश्चमयासह ।
इतिनामावतारस्य कथितातेकथाशुभा ॥ १५ ॥

विष्णु कहते हैं, मर्त्यलोक में मेरे भक्त नाम के माहात्म्य को कहेंगे। हे राजन! यह नामावतार की शुभ कथा मैंने तुमसे कही है।

भविष्यत्पुराण के वाक्यों से भी गुरुनानकजी के अवतार की सिद्धि होती है। गुरुनानकजी के अवतार होने में कोई भी सन्देह नहीं है।

प्रश्न—भागवतमें जो दश अवतार लिखे हैं उनमें तो गुरुनानकका अवतार नहीं लिखा है फिर यह किस प्रमाण से अवतार होसक्ते हैं?

उत्तर—परमेश्वर के अवतारों का अन्त नहीं है। गीतामें ही भगवान् ने कहा है।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवागच्छत्त्वं ममतेजोंशसम्भवम् ॥ १ ॥

जो प्राणि विभूतिवाला, ऐश्वर्यवाला, शोभावाला और बलवाला संसार में उत्पन्न होता है, उसे मेरे ही तेज के अंश से उत्पन्न हुआ तू जान ॥ १ ॥

यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ॥ २ ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगेयुगे ॥ ३ ॥

हे भारत अर्जुन! जब जब धर्म्म की ग्लानि याने हानि होती है और अधर्म्म की अधिकता होती है, तभी मैं साधुओं की रक्षाके लिये, दुष्टों के नाशके लिये और धर्म्म की मर्य्यादा के स्थापन करने के लिये युग २ में अवतार लेता हूँ। इन्हीं गीता वाक्यों से साबित होता है कि परमेश्वर के अवतार अनन्त हुये हैं और अनन्त होवेंगे। भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग चलाने के लिये और दुष्टों को मारने के लिये जो जो अवतार

हुये हैं सो क्षत्रियवंश में ही हुए हैं। जैसे श्रीरामचंद्रजी और श्रीकृष्णचंद्रजी क्षत्रियवंश में भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग को चलानेवाले हुये हैं वैसेही सूर्य्यवंशी कल्याणचन्द क्षत्रिय के गृहमें गुरुनानकजी भी अवतार हुये हैं। और जैसे श्रीरामचंद्र और श्रीकृष्णजी में अवतार के लक्षण घटते हैं, वैसे गुरुनानकजी में भी घटते हैं।

अवति स्वभक्तान् दुष्टेभ्यो रक्षति।
संसारसागरात् तारयतीतिअवतारः ॥ १ ॥

अवति याने जो अपने भक्तोंकी दुष्टोंसे रक्षा करता है और जो अपने भक्तोंको संसार समुद्रसे तारदेता है, उसीका नाम अवतार है। जैसे राम कृष्णादिकों ने अपने भक्तोंकी दुष्टों से रक्षा की है और अपने भक्तों को भक्ति और ज्ञान मार्गका उपदेश देकर संसारसे ताराहै, वैसेही गुरुनानकजी ने भी अपने भक्तोंको भक्ति और ज्ञान मार्गका उपदेश करके दुष्टोंसे उनकी रक्षा की और संसार-सागर से उनको तारदिया है। इसी से सिद्ध होता है कि गुरुनानकजी अवतार हुये हैं, इसमें सन्देह नहीं है। सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकारके अवतार होते हैं और हुये हैं। श्रीरामचंद्रजी सात्विक स्वभाववाले और मर्यादापुरुषोत्तम अवतार हुये हैं। श्रीकृष्णजी राजसिक अवतार हुये हैं, क्योंकि इन्होंने रजोगुणी रासमंडलादिक क्रीड़ा की है और सोलह हजार एकसौआठ स्त्रियों से विवाह भी किया है। इसी से यह राजसी हुये हैं। श्रीरामचंद्रजी ने एकही सीता से विवाह किया है, इसीसे वह सात्विकी हुयेहैं। परशुराम तामसी अवतार हुये हैं; क्योंकि उन्होंने इक्कीस वार पृथ्वीपर निर्दोष क्षत्रियों के वंशों का नाश किया है। इसीतरह दशों अवतारों को जान लेना अर्थात् कोई सात्विक कोई राजसिक और कोई तामसिक हुये हैं। जैसे पूर्व्वयुगों में विष्णुके दश अवतार हुये हैं, वैसेही कलियुग में भी विष्णु के दस अवतार हुये हैं, जैसे श्रीरामचंद्रजी का सात्विक और मर्य्यादापुरुषोत्तम अवतार हुआ है। वैसेही गुरुनानकजी का भी सात्विक और मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार हुआ है। जैसे श्रीरामजी ने एकही धर्म्मपत्नी से

विवाह करके, लव और कुश, दो पुत्रोंको उत्पन्न कियाहै, वैसे गुरुनानकजी ने भी एकही धर्म्मपत्नी से विवाह करके, लक्ष्मीचंद और श्रीचंदजी को उत्पन्न किया है। लक्ष्मीचंदजी ने वंश को चलाया है और श्रीचंदजी ने योग-मार्ग को प्रकट किया है। बस इन्हीं बातों से साबित होता है कि गुरु नानकजी विष्णुका अवतार हैं। जैसे विष्णु ने आपही दश अवतारों को लेकर पूर्वयुगों में लोकों की रक्षा की है, वैसेही कलियुग में गुरुनानकजी ने भी अपनी दश मूर्त्तियों को धारण करके दश गुरुरूप होकर, लोकों की रक्षाके लिये अवतार लिये हैं, इसमें संशय नहीं है। भागवत में लिखा है, कलिके अंत में कलंकी अवतार होगा, जो म्लेच्छों का नाश करेगा, सो तो जब होगा, तब होगा; परंतु गुरुगोविन्द-सिंहजी की दशवीं पादशाही हुई है, अर्थात् उनका दशवाँ अवतार हुआ है। उन्होंने धर्म्म की रक्षा के लिये हजारों म्लेच्छों का नाश करके, धर्म्म की मर्य्यादाको स्थापित किया था। उनके प्रताप से इस भारतखंड में हिंदू दिखाई पड़ते हैं और उनके भय से म्लेच्छों को रात्रि में नींद नहीं आतीथी। उनके अवतार होने में कोई संदेह नहीं है। जो संदेह करते हैं, वे मूढ़ और अज्ञानी हैं। धर्म्म के विषय में दशों गुरुओं ने जितने उपदेश किये हैं उतने और किसी भी आचार्य ने नहीं किये हैं। इसवास्ते जो और आचार्य कलिमें हुये हैं, वे ज्ञानी हुये हैं या भक्त हुये हैं, ईश्वरका अवतार वे साबित नहीं होसक्ते हैं।

किसी आचार्य्य में तो जातीय अभ्यास अधिक रहा है। उसने, जहाँ तहाँ, अपनी जाति का ही पक्षपात अधिक किया है। कल्याणका सच्चा उपदेश सम्पूर्ण जीवोंके प्रति नहीं कियाहै। जैसे कि शङ्कराचार्य्य ने ब्राह्मण कोही संन्यासका अधिकारी कहाहै और संन्यासी कोही ज्ञानका अधिकारी कहाहै और ज्ञानमार्गकोही प्रधान रक्खाहै। ये सब पक्षपातहैं; क्योंकि ज्ञानके अधिकारी चारोंवर्ण और चारों आश्रमहैं। संन्यासमें भी चारोंवर्ण और चारों आश्रमों का अधिकार है। कलिमें भक्तिमार्ग कोही प्रधान याने सम्पूर्ण जीवोंका कल्याणकारक कहा है। फिर वह संन्यासी थे। राग, द्वेष से इतर मतवालों का वद्ध कराना भी अद्वैतवादी संन्यासी का धर्म

नहीं है । यह वार्त्ताभी शास्त्र मर्यादा से विरुद्ध है । अवतारों की क्रिया शास्त्र-विरुद्ध नहीं होती है । तब कैसे वह अवतार होसक्ते हैं ? रामानुजादिक, जो वैष्णव तथा आचारियों के आचार्य्य हुये हैं, ये भी अवतार सावित नहीं होसक्ते हैं; क्योंकि इनका उपदेश और इनका आचार भी वेद-विरुद्ध हुआ है । प्रथम तो इन्होंने व्यापक ईश्वरको परिच्छिन्न मूर्तिमान् माना है, फिर क्रियाकोही इन्होंने प्रधान माना है और शरीर को दुखाने में ही इन्होंने कल्याण माना है । अनित्य शरीर के धोनेधाने में ही इन्होंने कल्याण माना है । इस वास्ते इनका आचार और मत सब वेद-विरुद्ध है । तब फिर यह अवतार कैसे सावित होसक्ते हैं ? कदापि नहीं । राम कृष्णादिक जिनके कि बड़े-बड़े अवतार हुये हैं, वह सब क्षत्रिय-वंश में ही हुये हैं, ब्राह्मण-वंश में नहीं । पूर्व्वले आचार्य्य ब्राह्मण-वंश में हुये हैं, इस वास्ते भी ये अवतार नहीं होसक्ते हैं । अवतारों ने यथायोग्य उपदेश किया है और शुद्ध भक्ति को ही प्रधान रक्खा है । सो०गुरुनानकजी भी क्षत्रियवंश में हुये हैं और अधिकारियों के प्रति यथायोग्य उपदेश भी किया है और भक्ति को ही मुख्य रक्खा है । इस वास्ते, यह ईश्वर का अवतार है; इसमें संशय नहीं है ।

प्रश्न--दूसरे मतवाले और सब ब्राह्मण लोग गुरुनानकजी को अवतार क्यों नहीं मानते हैं ?

उत्तर--जिस काल में श्रीरामचन्द्रजी का अवतार हुआ था, उस काल में रावणादिक भी उनको अवतार नहीं मानते थे । इसकाल में भी बहुत से मतों के लोग उनको अवतार नहीं मानते हैं ।

द्वापर में जब कि श्रीकृष्णजी का अवतार हुआ था, उस काल में भी कंस जरासंधादिक उनको अवतार नहीं मानते थे । अब भी कितने उनको अवतार नहीं मानते हैं । तब उन अवतारों की उनके न मानने से कुछ हानि होती है ? उनकी कुछ भी हानि नहीं है, उलटे न माननेवाले ही दोष के भागी होते हैं । इसी तरह जो गुरुनानकजी को अवतार नहीं मानते हैं वेही दोष के भागी होते हैं ।

जिस काल में कलिका प्रवेश होने लगा था, उस काल में कलि ने राजा परीक्षित के पास जाकर कहा था कि मुझे मेरा निवास स्थान बताओ। तब राजा परीक्षित ने चार स्थान बताये हैं। चारों में से एक स्वर्ण बताया है। स्वर्ण का अर्थ यह है कि उत्तम वर्ण हो जिसका, उसका नाम स्वर्ण है। सब वर्णों में ब्राह्मण वर्ण कोही उत्तम कहा है, जिन ब्राह्मणों के उदरमें कलि का निवास है, वे गुरुनानकजी को अवतार नहीं मानते हैं, बाकी के मानते हैं। देवीभागवत और स्कंद-पुराण तथा कूर्मपुराण में एक कथा भी आती है।

एक काल में बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा, तब बहुत से ब्राह्मण अन्न से दुःखी होकर गौतमजी के आश्रम में चले गये; क्योंकि वहाँ पर दुर्भिक्ष नहीं था। गौतमजी के यहाँ अन्न बहुत था। गौतमजी ने सबका बड़ा सत्कार किया और अन्नादिकों से सेवा करने लगे। फिर जब वर्षा हुई और सब देशों में अन्न बहुतसा उपजा, तब ब्राह्मणों ने गौतम से कहा, "अब हम अपने देशों को जायँगे।" गौतमजीने कहा, "अभी मत जाओ।" वे रुक गये। फिर थोड़े काल पीछे उन्होंने गौतमसे जानेको कहा, अब भी गौतम ने नहीं माना। तब ब्राह्मणोंने मिलकर परस्पर सलाह की कि गौतम हमको नहीं जाने देते हैं और अब जाना आवश्यक है, सो कोई उपाय करना चाहिये। ब्राह्मणों ने मिलकर एक मायाकी गैया रची और उसको गौतम के आश्रम पर खड़ी कर दी। गौतम जब बाहर से आये, तब उन्होंने देखा कि एक दुर्बल गैया खड़ी है। उसकी पीठ पर वह हाथ फेरने लगे। गौतम का हाथ लगते ही वह गैया गिरकर मर गई। तब ब्राह्मणों ने कहा, "अहो गौतम से हत्या होगई है, अब इसका अन्न खाना धर्म नहीं है।" यह कहकर सब ब्राह्मण अपने २ देश को चले गये। जब गौतम ने ध्यान करके देखा, तब उनको विदित हुआ कि यह ब्राह्मणों का किया हुआ छल है। तब गौतम ने शाप दिया कि तुम कलियुग में वेद-विरुद्ध होकर अनेक प्रकार के पाखंडों को चलाओगे। कूर्मपुराण में लिखा है—

पञ्चरात्रं प्रशंसन्ति केचिद्भागवतम्मुने।
केचित्कापालमिच्छन्ति केचित्पाशुपतम्मुने॥ १॥
केचिद्बौद्धं प्रशंसन्ति केचिद्दैगम्बरंमुने।
केचिल्लोकायतं ब्रह्मन् केचित्सौम्यं महामुने॥ २॥
नाकुलं केचिदिच्छन्ति तथा वै केतुभैरवम्।
केचिद्वामप्रशंसन्ति केचिच्छाक्तं तथैवच॥ ३॥
शाम्भवं केचिदिच्छन्ति यामलम्भुवि केचन।
अन्यानि यानि शास्त्राणि विरुद्धानि महामुने॥ ४॥
स्वतःप्रमाणभूतेन वेदेन मुनिसत्तम।
आचरन्ति महापापान् युगान्ते समुपस्थिते॥ ५॥

कलियुग में कोई तो पंचरात्र-मतकी प्रशंसा करेंगे और कोई भागवत-मत की। कोई चक्रांकितादि की तो कोई कपालि मत की प्रशंसा को करेंगे और कोई पशुपति के मत की श्लाघा करेंगे॥ १॥ हे ब्रह्मन्! कोई बौद्धमत की और कोई दिगंबरमत की, कोई लोकायतमत की और कोई सौम्यमत की प्रशंसा करेंगे॥ २॥ कोई नाकुलमत की, कोई केतुभैरव-मत की, कोई वाममत की और कोई शक्ति के मत की प्रशंसा करेंगे॥ ३॥ हे महामुने! कोई शाम्भवमत की, कोई यामलमत की प्रशंसा करेंगे और जितने शास्त्र-विरुद्धमत हैं उनकी प्रशंसा करेंगे॥ ४॥ कलियुग के प्राप्त होने पर स्वतः प्रमाणभूत वेद से उलटाही आचरण करेंगे॥ ५॥

इत्यादि वाक्य गौतम ने शाप के कहे हैं। तात्पर्य यह है कि जो ब्राह्मण गौतम के शाप करके शापित होरहे हैं, वही गुरुनानकजी को अवतार नहीं मानते हैं; क्योंकि उनकी बुद्धि शाप के कारण हत होगई है। और वे ही वेदांत शास्त्र की निंदा भी करते हैं और पुजाने के लिये अनेक प्रकार के पाखंडों को भी वही करते हैं। सो उनके न मानने से क्या हानि है; किन्तु उलटी उन्हीं की हानि है; क्योंकि

उनके जो गुरु हैं, उनके दश-पाँचही शिष्य हैं और उनको कोई जानता-बूझता भी नहीं है। उनके ऊपर तो वह ईश्वर भावना करते हैं। जिनके लाखों-करोड़ों शिष्य हैं और जिनके नाम को उदय अस्त तक लोग जानते और जपते हैं, उनके ऊपर वे ईश्वर-बुद्धि नहीं करते हैं, इससे बढ़कर उनकी और क्या मूर्खता होगी । उन पाखंडियों का पाखंड-रूपही उनको फल दे रहा है।

गुरुनानकजी के अवतार होने में कोई भी संदेह नहीं है; क्योंकि गीता में कहा है " संशयात्मा विनश्यति " जो संशयात्मा है वह नाश को प्राप्त होता है। जो गुरुजी के अवतार में संदेह करेगा वह भी नाश को प्राप्त होगा, इसमें संदेह नहीं है। गुरुनानकजी ईश्वर का अवतार हैं इसी कारण वह जगद्गुरु भी हैं, जैसे राम कृष्णादिक अवतार भी हैं और जगद्गुरु भी कहाते हैं। गुरुनानकजी अवतार भी हैं और जगद्गुरु भी हैं, परंतु फरक इतना ही है कि जिस काल में कोई पुरुष राम कृष्णादिकों के नाम को लेता है। उस काल में उनके नामके साथ गुरुपद को जोड़कर नहीं लेता है और जब कि गुरुनानकजी के नाम का कोई उच्चारण करता है वह शैव हो या वैष्णव हो या शाक्त हो या और किसी देवतांतर की उपासना करनेवाला हो या ईसाई या मुसलमानी मज़हबवाला हो, बिना गुरु पद के जोड़े, केवल उनके नाम का उच्चारण नहीं करता है। इसी से साबित होता है कि और अवतारों के जगद्गुरु होने में संदेह है; परंतु गुरुनानकजी के जगद्गुरु होने में संदेह कदापि नहीं होसक्ता है । जगद्गुरु पद गुरु नानकजी में ही घटता है और जितने आचार्य और ऋषि, मुनि तथा भक्त हुये हैं, उनमें से कोई भी जगद्गुरु नहीं होसक्ता है, क्योंकि उनका नाम बिना ही गुरुपद के उच्चारण किया जाता है।

जैसे कि शंकराचार्य्य, सुरेश्वराचार्य्य, माधवाचार्य्य इन सबके नाम के साथ आचार्य्य पद जोड़ा जाता है, गुरु पद नहीं। इसलिये ये सब जगद्गुरु नहीं होसक्ते हैं। दूसरे इनके ग्रंथों में सब खंडन मंडन किया है;

बल्कि परस्पर एक दूसरे की निंदा भी लिखी है और इनके ग्रंथों में सबका अधिकार भी नहीं है और न सर्वसाधारण के कल्याण का मार्ग ही कहा है, इस वास्ते ये सब जगत्गुरु नहीं होसक्के हैं। गुरुनानकजी के ग्रंथसाहब में किसी का खंडन-मंडन नहीं है और सर्व्व जीव के लिये साधारण और सच्चा उपदेश है। इसलिये वही जगत्गुरु होसक्के हैं। पराशरऋषि, अत्रिऋषि, अंगिराऋषि आदि जितने ऋषी हुये हैं, इनके नाम के साथ भी गुरुपद नहीं जोड़ा जाता है। जो मुनि हुये हैं जैसे कि कपिलमुनि, वशिष्ठमुनि इन सबके भी नामके साथ गुरुपद नहीं दियाजाता है; किंतु मुनिपद दियाजाता है। जो भक्त हुये हैं जैसे, रैदास भक्त, सदन्नाभक्त, नाभाभक्त इनके भी नामों के साथ गुरुपद नहीं दिया जाता है, इसलिये ये सब भी जगत्गुरु नहीं कहाते हैं और न होसक्के हैं। जितने कि इंद्रादि देवता हुये हैं, ये भी जगत्गुरु नहीं होसक्के हैं। एक तो देवतों के होनेमें और न होनेमें वादाविवाद भी है दूसरा इनके भी नामके साथ गुरुपद नहीं जोड़ाजाता है। जो दत्तात्रेय आदि संन्यासी हुये हैं, इनके भी नामके साथ गुरुपद नहीं जोड़ाजाता है। जड़भरत आदि जो अवधूत हुये हैं, इनके भी नामके साथ गुरुपद नहीं जोड़ाजाता है; किन्तु अवधूत पदही जोड़ाजाता है। जितने कि ज्ञानी हुये, कबीरजी आदि उनके नामके साथ भी गुरुपद नहीं जोड़ाजाता है। जितने महान्पंडित तथा परमहंस वृत्तिवाले हुये हैं, उनके भी नामके साथ गुरुपद नहीं जोड़ाजाता है। इसलिये ये सब जगत्गुरु नहीं होसक्के हैं, किंतु जगत्गुरु गुरुनानकजी ही हुये हैं और जगत्गुरु पद का जो अर्थ है वह भी गुरुनानकजीमें ही घटता है। क्योंकि—

> कृमिकीटभस्मविष्ठादुर्गन्धिमलमूत्रकम्।
> श्लेष्मरक्तत्वचामांसैर्नद्धं चैतद्वरानने ॥ १ ॥
> संसारवृक्षमारूढाः पतन्ति नरकार्णवे।
> यस्तानुद्धरते सर्वांस्तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥ २ ॥

हे वरानने! कृमियों और अनेकप्रकार के कीटों से तथा भस्म, विष्ठा,

दुर्गंधि, मलमूत्र, कफ, रक्त, त्वचा, माँस से बना हुआ जो यह शरीर है यही संसाररूपी वृक्ष है। इस संसाररूपी वृक्ष में आरूढ हुये जो जीव हैं, उनको कल्याण का उपदेश करके जो उन जीवों का उद्धार कर दे, वही जगत्गुरु है। उसी जगत्गुरु के प्रति हमारा नमस्कार है। सो यह लक्षण गुरुनानकजी में ही घटता है, इसलिये जगत्गुरु गुरुनानकजी हैं और जगत्गुरु होने से वह परमेश्वररूप भी हैं; क्योंकि जैसे परमेश्वर का किसी से रागद्वेष नहीं है, तैसे उनका भी किसी से रागद्वेष नहीं हुआ है, इसी वास्ते इतर मजहबवालों की किताबों में भी उनकी स्तुति लिखी है। जब वह मक्के में गये हैं, तब उन लोगोंने भी उनको गुरु करके माना है। जब सुमेरु पर्वत पर सिद्धों से उनकी गोष्ठीहुई है, तब सिद्धों ने भी उनको गुरुकरके माना है। इसलिये गुरुनानकजी जगत्गुरु हुए हैं। वेद के अर्थ के साथ गुरुजी की वाणी का विरोध भी नहीं है; किंतु जो वेदका सिद्धांत है, वही गुरुजीका भी सिद्धांत है; जैसे वेदमें कर्म्म, उपासना, ज्ञानादिक अधिकारियों के भेदसे विधान किये हैं, वैसे गुरुजीने भी अपने ग्रंथसाहबमें अधिकारियों के भेदसे कर्म्मउपासना, ज्ञानादिक भी विधान किये हैं; परंतु कलियुग में कर्म्मउपासना और ज्ञानके अधिकारी बहुत कमहैं। पुरुषों की आयुभी इतनी बड़ी नहीं है; इनके करने में अधिक कालकी भी जरूरत है, सो काल का मिलना भी कठिन है। परमेश्वरकी भक्तिरुप जो परमेश्वरके नामोंका जपना और सत्संग करना है उनके करनेके लिये न अधिक कालकी जरूरत है और न किसी विधी की जरूरत है, ये दोनों कल्याणके सुगम उपाय हैं और इनमें सब वर्णों तथा आश्रमों का अधिकारभी है। इसवास्ते गुरुजी ने इनही दोनोंका उपदेश अधिकतर किया है। जिससे अधिक परिश्रम विना जीवों का कल्याण हो।

तिलंग ॥ म । ६ ॥

चेतन है तो चेतले निशि दिन में प्रानी।

छिन छिन अवध विहात है फूटे घट जिउ पानी ॥ १ ॥

रहाउ

हरिगुण काहि न गावई मूरख अज्ञाना।
झूठे लालचि लगिके नहिं मरण पछाना॥
अजहूँ कछु बिगरियो नहिं जो प्रभु गुणगावै।
कहु नानक तिह भजनते निर्भय पद पावै॥ १॥

राग सारंग॥ म । ६॥

कहा नर अपनो जन्म गँवावै।
माया मद विषया रस रचिउ रामशरण नहिं पावै॥ १॥

रहाउ

यह संसार सगल है स्वप्नो देख कहा लोभावै।
जो उपजै सो सगल बिनाशै रहन न कोऊ पावै॥
मिथ्या तन सांचोकरि मान्यो या विधि आप बँधावै।
जन नानक सोऊ जग मुक्ता राम भजन चितलावै॥ १॥
इसी तरहके अनेक शब्दों में गुरुजीने नाम जपने का उपदेश किया है।

राग सारंग॥ म । ६॥

कहा मन विषया सों लपटाही।
या जग में कोउ रहन न पावै इक आवै इक जाही॥१॥

रहाउ

काको तन धन संपति काकी कासों नेह लगाही।
जो दीसै सो सगल विनाशै ज्यों बादर की छाही॥
तजि अभिमान शरण संतनगहु मुक्तिहोयक्षणमाही।
जन नानक भगवंत भजन बिन सुखसपनेहु भी नाही॥
इसी तरह के अनेक शब्दों में सत्संग का माहात्म्य भी कहा है।
शास्त्रों में भी कलियुग में नाम के जपने का ही माहात्म्य कहा है।

भागवत में भी कहा है-

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ॥ १ ॥

सत्ययुग में पुरुषों को विष्णु के ध्यान करने से जो फल होता था, और त्रेतायुग में यज्ञों के करने से जो फल होता था और द्वापर में पूजा आदिकों से जो फल होता था, कलियुग में वह सब फल केवल हरि के नामों का कीर्त्तन करने से होता है ॥ १ ॥

कलेर्दोषनिधेराजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
विष्णोः सङ्कीर्तनादेव मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥ २ ॥

हे राजन्! दोषों की खानि जो कलियुग है, उसमें केवल एकही बड़ाभारी गुण है। वह यह कि विष्णु के नामों का कीर्त्तन करने से पुरुष बन्धन से मुक्त होजाता है ॥ २ ॥

नाम के माहात्म्य की गाथा भी है। द्वापर के अन्त में एक काल में नारदजी ब्रह्माजी के पास गये और ब्रह्माजी से नारदजी ने पूछा, "कलियुग में लोग पापों से कैसे तरेंगे?" ब्रह्माजी ने नारद से कहा, "तुमने साधु प्रश्न किया है। तुम सदैव ही लोगों के हित के लिये भूमि पर पर्यटन करते रहते हो। कलियुग में विष्णु के नामों के जपने और कीर्त्तन करने से लोग संसार से तरेंगे।" फिर नारदजी ने कहा, "वह कौन नाम हैं जिनका कीर्त्तन करने से लोग पापों से छूट जायँगे?"

उत्तर--हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥ १ ॥

इन नामों के कीर्त्तन करनेसे कलिके पापी जीव भी तर जायँगे ॥ १ ॥

प्रश्न--जैसे कर्मादिकों के करने में स्नानादि विधि की जरूरत है, वैसे नाम के जपने में भी क्या किसी विधि की जरूरत है?

उत्तर--चक्रायुधस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्त्तयेत्।
नाशौचं कीर्त्तने तस्य स पवित्रकरो यतः ॥ १ ॥

चक्रायुध जो विष्णु तिसके नामों का कीर्त्तन सदैव अर्थात् चलते, फिरते, उठते, बैठते करे। विष्णु के नामों के कीर्त्तन करने से अशौच याने

अपवित्रता नहीं रहतीहै; क्योंकि यह नामका जपनाही पवित्र करताहै ॥१॥
इसी वार्त्ता को गुरुजी ने कहा ।

रहाउ

अन्तर मैल लोभ बहु झूठे बाहरि नावहु काही जीउ ।
निरमलनाम जपहु सद्गुरु मुखअन्तरकी गति ताहीजीउ॥१॥

इस तरह के अनेक शब्द नाम के जपने में विधि का निषेध लिखा है । शास्रों में भी नाम जपने का फल लिखा है ॥ १ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजादयः ।
यत्र तत्रानुवर्त्तन्ते विष्णोर्नामानुकीर्त्तनम् ॥ १ ॥
सर्व्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमां गतिम् ।
चाण्डाला अपि श्रेष्ठाः स्युर्विष्णुभक्तिपरायणाः॥ २ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा स्त्री चाण्डालादिक जो हैं, ये सब जहाँ-तहाँ विष्णु के नामों का कीर्त्तन करते हुये विचरें ॥ १ ॥ वे सब विष्णु की भक्ति को आश्रयण करके संपूर्ण पापों से रहित होकर परमगति को प्राप्त होते हैं और चाण्डाल भी उत्तम होजाते हैं ॥ २ ॥

वह्निलेशाद्यथा दग्धं सञ्चितं बहुधेन्धनम् ।
तथा दुःखानि नश्यन्ति हरेर्नाम्ना समंततः ॥ १ ॥

जैसे जरा सी अग्नि से लकड़ियों का कोट जल जाता है, वैसेही हरि का नाम लेने से संपूर्ण दुःख नष्ट होजाते हैं ॥ १ ॥
इसी अर्थ को गुरुजीने भी कहा है ।

कौनको कलंकरयो रामनाम लेतहीं ।
पतित पवित्र भये रामनाम कहतहीं ॥ १ ॥
आवन आये सृष्टिमें बिनबूझे पस ढोर ।
नानक गुरुमुख सो बुझे जाके भागम थोर ॥ २ ॥

इसी तरहके गुरुजी ने भी नाम के माहात्म्य के अनेक वाक्य कहे हैं । तात्पर्य्य यह कि गुरुजी का कथन सब वेदों से मिला हुआ है । वेद-विरुद्ध नहीं है ।

प्रश्न—गुरुजीने संस्कृत में अपनी वाणी का उच्चारण क्यों नहीं किया?

उत्तर—गुरुजी ने संस्कृत वाणी को अति कठिन जानकर उसमें अपनी वाणी का उच्चारण नहीं किया है। जैसे मारवाड़ देशके कूपका पानी निकालकर पीना अतिकठिन है। हर एक आदमी न निकाल सक्ता है और न पी सक्ता है। जिसके पास बहुतसी सामग्री होती है, याने बैल, चरसा, रस्सा, वगैरह वही उस कूपका पानी निकालकर पी सक्ता है। दूसरा नहीं। तैसेही, जो पुरुष प्रथम व्याकरणादि सामग्री को दश बारह वर्ष तक संपादन करलेता है, वही संस्कृत शास्त्रोंका शुद्ध २ तात्पर्य्य समझता है। फिर भी वह दूसरों को ठीक २ नहीं बताता। हर एक आदमी की इतनी बुद्धि भी नहीं है, जो व्याकरणादिकों को प्रथम पढ़े। गुरुजी का अवतार सबके कल्याण के हेतु हुआ है। जैसे नदीका जल बिना लोटा डोरी ही के सब पी सक्ते हैं, और स्नानादि क्रिया भी उसमें करसक्ते हैं; तैसे जो अपनी मादरी भाषा है, इसके पढ़ने में कोई व्याकरणादिकों के पढ़ने की भी जरूरत नहीं। शूद्रादिकों का भी इसके पढ़ने में अधिकार है और परिश्रम भी कुछ नहीं पड़ता है, और सबकी बुद्धि में इसका तात्पर्य्य भी आजाता है। इसी वास्ते गुरुजीने भाषा में ही अपनी वाणीका उच्चारण किया है।

प्रश्न—गुरु नानकजीने अपना गुरु किसको बनाया है?

उत्तर—गुरु नानकजी आप ही सबके गुरु हुये हैं। उनको गुरु बनाने की क्या जरूरत थी? इसवास्ते उन्होंने किसी को भी गुरु नहीं बनाया। आप अवतार हैं, वह दूसरे मनुष्य को क्यों गुरु बनावेंगे? जिसको अज्ञान होता है वह अपने अज्ञान को दूर करने के लिये दूसरे को गुरु बनाता है। जिसको अपने स्वरूप का अज्ञान नहीं है, वह नहीं बनाता।

प्रश्न—रामचन्द्रजीने वशिष्ठ को क्यों गुरु बनाया था?

उत्तर—रामचन्द्रजी को सनकादिकों का शाप था कि तुमको कुछ काल अपने स्वरूपका ज्ञान भूल जायगा, सो उनको भूलगया था, इसवास्ते उनको शापकी निवृत्तिके लिये गुरु बनाना पड़ा था। श्रीकृष्णजी

को नहीं भूला था, उन्होंने किसी को भी गुरु नहीं बनाया । और ऐसा नियम भी नहीं है, जो सभी अवतार गुरु बनावें । जो जीव जन्म सेही सिद्ध हुये हैं, उन्होंने भी किसी मनुष्य को गुरु धारण नहीं किया है; जैसे कि कपिल भगवान्, वामदेव, जड़भरतादि, जो जन्म से सिद्ध हुये हैं । इनमें से किसीने भी गुरु नहीं किया है । इसवास्ते ऐसा नियम नहीं है जो सब कोई गुरु को धारण करें । जब कि इतर जन्मांतर के स्मारकों ने किसी को भी गुरु नहीं बनाया है, तब फिर जो साक्षात् ईश्वर का अवतार सर्व्वशक्तिमान जगत् के गुरु गुरुनानकजी थे, उनको गुरु करनेकी क्या जरुरत थी ? भेदवादी शास्त्र-संस्कारों से जो हीन हैं, उनको ऐसी शंका फुरती है । विचारवान् विवेकी को नहीं फुरती । गुरु नानकजी ने सब प्राणियों के कल्याण का कारक, ईश्वर का भजन रूप जप नामक मंत्र को उच्चारण किया है; जैसे ब्रह्माजी के पास एक कालमें इंद्र, विरोचन और प्रतर्दन तीनों इकट्ठे उपदेशके लिये गये थे । तीनों में, इंद्र तो देवतोंका राजा था, विरोचन दैत्योंका, और प्रतर्दन मनुष्योंका राजा था । तीनों को ब्रह्माजीने दः दः दः ऐसा साधारण उपदेश दिया । देवतोंने तो दः का अर्थ इंद्रियों का दमन करना जानलिया; क्योंकि वे अतिभोगी होते हैं । उनका दमन में ही अधिकार है । दैत्योंने उसका अर्थ दया समझलिया; क्योंकि वह क्रूर स्वभाव वाले होते हैं । उनका दयामें अधिकार है; और मनुष्योंने दः का अर्थ दान समझा; क्योंकि उनका दानमें ही अधिकार है । एकही ब्रह्माका साधारण उपदेश तीनों के कल्याण का हेतु होगया । वैसे गुरुजी का उच्चारण किया हुआ एकही जप्य नामक मंत्र भक्त और मुमुक्षुओं के कल्याण का कारण है; क्योंकि इसकी हरएक पौड़ी के दो-दो अर्थ हैं । भक्तिपक्ष में और ज्ञान पक्ष में भी हैं । जो भक्ति का अधिकारी है, वह भक्ति पक्ष में लगा लेवै, जो मुमुक्षु ज्ञान का अधिकारी है, वह ज्ञान पक्ष में विचार कर ले । दोनोंका कल्याण होगा । प्रथम भक्ति-पक्षवाले अर्थ को दिखलावेंगे फिर ज्ञानपक्षवाले अर्थ को ।

जप्यजी

अब जप्यजी का प्रारम्भ कहते हैं। एक ॐकार सत्यनाम कर्त्तापुरुष निर्भय निर्वैर अकालमूर्त्ति अजूनि सैभं गुरुप्रसादि ज़प्य आदि सच्च जुगादि सच्च है भी सच्च नानकहोसी भी सच्च ॥ १ ॥

प्रश्न–जप्यजी के आदि में गुरुजी ने प्रथम "एक" ऐसा क्यों उच्चारण किया ?

उत्तर–इसका उत्तर हम आपको दृष्टांत देकर कहते हैं। एक जाट एक बादशाह की कचहरी में जाकर कहने लगा, "मैं काजी के दिल की बात को बता सकता हूँ।" बादशाह ने काजी से कहा, "जाट ऐसे कहता है, तुमको मंजूर है ?" काजी ने कहा, "हमको मंजूर है।" बादशाह ने जाट से कहा, "बता।" तब जाट ने कहा, "कुछ शर्त लग जाय। यदि मैं बतादूँगा, तो शर्त लेलूँगा। यदि मैं नहीं बता सकूँगा, तो उतनी शर्त दे दूँगा।" काजी ने मंजूर किया। तब बादशाह ने जाट से पूछा, "इस वक्त काजी के दिल में क्या है ?" जाट ने कहा, "इस वक्त काजी के दिल में यह बात है कि खुदा एक है, लाशरीक है, और पाक है।" बादशाह ने काजी से पूछा, "जाट ठीक कहता है ?" कैसे काजी कहे कि खुदा एक नहीं, लाशरीक नहीं और पाक नहीं। यदि कहे, तो माराजाय। काजी ने कहा, "ठीक है।" काजी शर्त हार गया। जाट ने शर्त जीत ली। फिर काजी ने जाट से कहा, "अबकी बार तू हमारे दिल की बता।" जाट ने कहा, "फिर उतनी ही शर्त रही।" काजी ने मंजूर की। बादशाह ने जाट से पूछा, "इस वक्त काजी साहब के दिल में क्या है ?" जाट ने कहा, "इस वक्त काजी साहब के दिल में यह बात है कि खुदा बादशाह को बेटा दे और वह जिंदा

रहे ।" बादशाह ने काजी से पूछा, "क्या जाट ठीक कहता है ?" अब जो कहे, नहीं ठीक कहता, तो काजी माराही जाय। वह शर्त भी काजी हार गया। फिर काजी ने जाट से कहा, "अबकी मैं तुम्हारे दिल की बात को बताऊँगा। बादशाहने जाट से कहा तुमको मंजूर है।" जाट ने कहा, "यदि काजी साहब मेरे दिल की वार्त्ता को बतादे, तो जितना कि मैंने जीता है, वह भी दे दूँगा और उतना और भी दूँगा। यदि नहीं बतावेंगे, तो दूना और भी लूँगा।" काजी ने मंजूर करलिया। तब बादशाह ने काजी से कहा, "बताओ जाटके दिलमें इस वक्त क्या बात है।" काजी ने कहा, "जाट के दिल में इस वक्त यह वार्त्ता है कि रामही खुदा है और वह एक है।" बादशाह ने जाट से पूछा, "काजी साहब ठीक कहते हैं।" जाटने कहा, "कौन साला रामको खुदा मानता है ? मैं तो अपने बाबा नानकजी को खुदा मानता हूँ।" बादशाहने कहा, "जाट ठीक कहताहै। क्या हिंदुओं का एक खुदा थोड़ा है ? हर-एक हिंदूका अपना जुदाही खुदा है।" वह शर्त भी जाटने जीतली। यह तो दृष्टांत है। इस भारतखंड में लोगोंने अपने २ अनेक ईश्वर मान रक्खे हैं। किसी ने विष्णुको, किसीने महादेवको, किसीने देवीको, किसीने गणेशको, किसीने रामको, किसीने कृष्णको, किसी ने हनुमान्‌को, और अनेक ईश्वरों को मान कर परस्पर विरोध खड़ा कर दिया है। उस विरोधके हटाने के लिये गुरुजी ने जपजी के आदि में एक कहा है अर्थात् वह परमेश्वर सारे जगत् का स्वामी एकही है। इसी अर्थ को वेद भी कहता है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः।

वह परमेश्वर एकही है और संपूर्ण भूतों में गूढ़है, याने छिपा हुआ है।

अब ॐकार पदके अर्थको कहते हैं।

एक जो परमेश्वर है, सो ॐकार का वाच्य है, और ॐकार उसका वाचक है, अर्थात् उस परमेश्वर के अनंत नामों में से ॐकारही उसका उत्तम नाम है, इसी वास्ते वेद में ॐकारकी उपासना भी लिखी है।

और जितने मंत्र हैं, सबके आदि में ॐकार जोड़ा जाता है; क्योंकि यदि ॐकार उनके आदि में न जोड़ा जाय, तो वे केवल जपने से फलको शीघ्र नहीं देते हैं। ॐकार केवल जपने से भी अनंत फलको देता है। ॐकार मंगल का वाचक भी है। जितने यज्ञादिक कर्म हैं, उनके आरंभ कालमें यदि ॐ शब्दका उच्चारण करके वे किये जायँ तो वे किञ्चित् अंगसे हीन होकर भी फलको देते हैं। इसीवास्ते ॐकार परमेश्वरके सब नामों में से उत्तम नाम है। श्रुति भी इसी अर्थको कहती है।

ॐमित्येतदक्षरम्।

ॐ यह जो अक्षर है सो परमात्माका वाचक है और वह परमात्मा ॐकार का वाच्यहै। जिस शब्द करके, जो पदार्थ जाना जाय, वह शब्द उसका वाचक होता है, याने उसका नाम होता है। और जो उससे जाना जाय, वह उसका वाच्य होता है। सो ॐकार से परमेश्वर जाना जाता है, इसवास्ते ॐकार का वह वाच्य है। ॐकार कोही संपूर्ण वेदों का सारभी कहा है। ब्रह्माजीने ॐकार काही प्रथम उच्चारण करके, वेदोंको और सृष्टिको रचा है। ॐकारके उच्चारण करने से ही संपूर्ण शुभ कर्मों की सिद्धि होती है। इसी वास्ते गुरुजीने भी जपजी के आदि में ॐकार काही उच्चारण किया है। वह परमेश्वर एक है और ॐकार नामवाला है। अर्थात् ॐकार करके उसके स्वरूप का बोध होताहै।

प्रश्न—वह परमेश्वर कैसा है ?

उत्तर—सत्य सद्रूपहै। जिसका तीनों कालों में नाश न हो; किंतु भूत भविष्यत् और वर्त्तमान, इन तीनोंकालों में ज्योंका त्यों एकरस रहे, उसीका नाम सत्यहै। तीनों कालमें एकरस ज्यों का त्यों रहनेवाला वह परमेश्वरही है और कोई भी पदार्थ नहीं है; क्योंकि और सब उत्पत्ति और नाशवाले हैं, वे सब कदापि सत्य नहीं होसक्ते हैं।

नाम कर्त्ता।

नामके आगे रूपपदको भी जोड़ देना; क्योंकि जितने उत्पत्तिवाले पदार्थ हैं, वे सब नाम और रूपवाले हैं। संसार में ऐसा उत्पत्तिवाला

पदार्थ कोई भी नहीं है, जिसका नाम और रूप न हो। नाम और रूप का नित्य संबंध है। नाम किसी रूप के बिना नहीं हो सक्ता है और रूप किसी नामके बिना नहीं हो सक्ता है; इस वास्ते मूल में जो नाम पद है, सो रूप का भी द्योतक है। नामनामीका नित्य संबंध है। नाम-रूपवाला जितना जगत् है उस जगत्का कर्त्ता वह एक परमेश्वर ही है।

पुरुष।

पुर नाम शरीर का है, जो प्रतिशरीर में असंगरूप होकर, साक्षीरूप होकर, प्रकाशमान होकर रहे, उसीका नाम पुरुष है। सो एकही परमेश्वर सब प्राणियों के शरीरों में साक्षीरूप होकर, असंगरूप होकर और सबके कर्मोंका साक्षीरूप होकर रहता है। इसवास्ते उसका नाम पुरुष भी है ॥ १ ॥ श्रुति भी यही कहती है।

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यःपिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥

दो पक्षी हैं। दोनों इकट्ठे रहते हैं। आपसमें सखाभी हैं। और एकही शरीररूपी वृक्षको दोनों सेते हैं। उन दोनों में से, जो जीवरूपी पक्षी है, वह तो कर्मों के फलको भोक्ता है और जो दूसरा ईश्वर है, वह कर्मों के फल को न भोक्ता हुआ, केवल प्रकाशमात्र ही करता है ॥ १ ॥ सो सब शरीरों में प्रकाशमान होनेसे उस परमेश्वर का नाम पुरुष भी है। अथवा "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" सृष्टि के आदिकाल में परमेश्वर ने जब कि लिंगशरीरों को रचा, तब उनमें चेष्टा होती थी। फिर आप ही जीवरूप होकर, उनमें, जब उसने प्रवेश किया, तब उनमें चेष्टा होने लगी इस वास्ते भी उसका नाम पुरुष है। फिर वह परमेश्वर कैसा है ?

निर्भव। भयसे भी वह रहित है। फिर वह कैसा है ?

निर्वैर। वैर से याने द्वेष से भी वह रहित है जिसका कोई दूसरा शत्रु होता है, उससे उसको भय भी होता है और उसके साथ उसका वैर याने द्वेष भी होता है। परमेश्वर का न कोई शत्रु है और न कोई शरीक। इस वास्ते, उसको किसीका भय भी नहीं है।

प्रश्न—काल का भय तो उसको भी होगा ?

उत्तर—अकाल मूर्त्ति। वह परमेश्वर अकाल मूर्त्ति है अर्थात् काल

परिच्छेद से वह रहित है। इस वास्ते उसको काल का भी भय नहीं है। अकाल मूर्त्ति में तीन पद हैं—अ १, काल २ और मूर्त्ति ३, अकार का अर्थ निषेध है, काल का अर्थ समय है और मूर्त्ति नाम परिच्छिन्न परिमाणवाली वस्तु का है, जो किसी काल में हो और किसी काल में न हो। जैसे, घटादिक पदार्थ हैं। वह सब कालमूर्त्ति हैं, जो परिच्छेद से रहित हो अर्थात् देश, काल और वस्तु परिच्छेद से रहित हो तीनों कालों में ज्यों का त्यों एकरस रहे, उस का नाम अकाल मूर्त्ति है। कालनाम यमराज का है, उसके वश में होनेवाले जीवों का नाम कालमूर्त्ति है। उसके वश में न होनेवालों का नाम अकाल मूर्त्ति है। घड़ी, पल, दिन, मास, वर्षादि संख्या का नाम काल है। वह संख्या सूर्य के आश्रित है। वह सूर्य एक मूर्त्तिमान् है। वह मूर्त्तिमान् सूर्य भी जिसके वश में है उसका नाम अकालमूर्त्ति है और इसी अर्थ को श्रुति भी कहती है।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

जिस परमेश्वर के भय से अग्नि तपती है, जिसके भय से सूर्य्य भी तपता है, उसी के भय से इंद्र और वायु तथा पंचम, जो मृत्यु है, ये सब रात्रि दिन दौड़ते फिरते हैं॥ १॥ इन श्रुतिवाक्यों से भी सिद्ध होता है वह परमेश्वर अकाल मूर्त्ति है।

प्रश्न—फिर वह परमेश्वर कैसा है?

उत्तर—अयोनिसंभम् है, जो योनि के संबंध से अर्थात् जो योनि द्वारा उत्पन्न हो, उसी का नाम योनिसं है। वह ऐसा जीव है; क्योंकि जीव ही योनिद्वारा उत्पन्न होता है और जो योनि के संबंध से उत्पन्न न होकर नित्य ही ज्यों का त्यों एकरस रहे, उसका नाम अयोनिसह है और 'भं' नाम प्रकाश का है। परमात्मा योनि के संबंध से रहित भी है और स्वयं प्रकाश भी है। इसी वास्ते उसका नाम अयोनिसहभं है।

प्रश्न—स्वेदज, उद्भिजादि जीव भी योनिद्वारा नहीं उत्पन्न होते हैं, उनका नाम भी अयोनिसं होना चाहिये?

उत्तर—योनि नाम कारण का है, जो किसी भी कारण से उत्पन्न हो, उसका नाम योनिसे है और जो किसी भी कारण से उत्पन्न न हो उसका नाम अयोनिसह है। जितने जीव हैं, सब कारण से उत्पन्न होते हैं। विना कारण कोई भी जीव उत्पन्न नहीं होता; बल्कि जितने उत्पत्तिवाले पदार्थ हैं, सब अपने २ कारण से ही उत्पन्न होते हैं। विना कारण कोई भी नहीं होता। इस वास्ते सभी पदार्थ योनि से हैं। ईश्वर का कारण कोई भी नहीं है; क्योंकि वही सबका कारण है। इस वास्ते वह अयोनिसे है। इसी अर्थ को श्रुति भी कहती है।

न तस्य कार्य्यं करणञ्च विद्यते।
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते॥

परमात्मा का न कोई कार्य्य है और न कोई कारण है। असाधारण कारण का नाम ही करण है, सो परमात्मा का कोई असाधारण कारण भी नहीं है और न कोई उसके तुल्य है और न कोई उससे अधिक है। स्मृति भी इसी अर्थ को कहती है—

अयं स भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः।
तस्माद्धि जायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते॥

यह भगवान् ईश्वर स्वयं प्रकाश है और सनातन है। उसी से जगत् उत्पन्न होकर फिर उसी में लीन हो जाता है। अनेक स्मृतियाँ भी उस ईश्वर को अयोनिसे और स्वयं प्रकाश कहती हैं। इस वास्ते गुरुजी का जो कथन है, सो ठीक है; क्योंकि श्रुति स्मृति के अनुकूल है और युक्ति के अनुकूल भी है। जो उत्पत्तिवाला पदार्थ होता है, सो अनित्य याने नाशवाला भी होता है। जो उत्पत्तिवाला नहीं है, उसका नाश भी नहीं है। ऐसा ईश्वर ही है; क्योंकि वह कारण से रहित है इसी वास्ते वह नित्य भी है।

प्रश्न—भागवत के दशमस्कंध में लिखा है कि देवकी के उदर से कृष्णरूप होकर परमेश्वर ने जन्म लिया और रामायण में लिखा है कि कौशल्या के उदर से परमेश्वर ने रामचंद्ररूप होकर जन्म लिया। जिसने उदर में आकर जन्म लिया, वह अयोनिसंबंधवाला कैसे हो सक्ता है? कदापि नहीं हो सक्ता है।

उत्तर—जिन जीवों के पाञ्चभौतिक शरीर हैं, वे ही योनि के संबंध से उत्पन्न होते हैं। राम कृष्णादिकों के पाञ्चभौतिक शरीर नहीं हैं; किन्तु मायिक शरीर है। इस वास्ते वे योनि से नहीं उत्पन्न होते हैं। भक्तों की कामना पूर्ण करने के लिये ईश्वर अपनी माया-शक्ति से अपने मायिक शरीरों को बाहर से ही उत्पन्न कर देता है। देवकी, कौशल्या आदि को भ्रम हो गया था कि हमारे उदर से ये जन्मे हैं। यदि परमेश्वर उनको ऐसा भ्रम-ज्ञान उत्पन्न न करता, तो उनको मोह भी कदाचित् न होता और मोह विना संतति में प्रेम भी नहीं होता। इस वास्ते उस काल में मोहने आच्छादित कर लिया था। वास्तव में वह परमेश्वर अयोनी है। योनि का संबंध उसको नहीं है। भं का अर्थ भय करना है। जो योनि के संबंध से उत्पन्न होता है, उसीको यमका या अपने मरनेका भय भी होता है। जो योनिके संबंधसे उत्पन्न नहीं होता है, उसको यमका और मरने का भयभी नहीं होता है। जीवही योनि के संबंधसे उत्पन्न होता है और उसीको मरने का भय भी होता है। ईश्वर को नहीं होता; क्योंकि वह योनि के संबंध से उत्पन्न नहीं होता। इसीसे गुरुजीने ईश्वर को अयोनिसैभं कहा है। यदि जीवभी योनि के संबंध से छूटने के लिये यत्न करे, तो जीवभी अयोनिसैभं होसक्ता है। कहा भी है।

यमाद्‌बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मने॥

एक पुरुष गरुड़पुराण को सुनकर यमराज से अति भय करने लगा। उसे भयभीत देखकर, एक महात्मा उसको कहते हैं, हे मूढ़! यमराज से तू क्यों भय करता है? क्या भय करने से यमराज तुमको छोड़ देगा? कदापि नहीं छोड़ेगा। जो पुरुष उत्पन्न नहीं होता है, उसको यम-राज भी ग्रहण नहीं कर सक्ता है। इस वास्ते तू भी अजन्म के लिये यत्न कर अर्थात् सर्वशक्तिमान् अयोनिसैभं की शरण को प्राप्त हो, तब वह ईश्वर तुझे भी अयोनिसैभं कर देवेगा।

प्रश्न—तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। वह ईश्वर प्रथम लिंगशरीरों

को रचकर आप ही उनमें प्रवेश करता है। श्रुति ऐसा कहती है। पर यह ठीक नहीं जँचता; क्योंकि जो परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त है, वह छोटे से शरीर में कैसे प्रवेश कर सक्ता है ? फिर निरावयव व्यापक में क्रिया नहीं होती, क्रिया के बिना प्रवेश भी नहीं हो सक्ता, तब फिर श्रुति कैसे उसके प्रवेश को कहती है ?

उत्तर—परमेश्वर लिंगशरीरों को रचकर उनमें अपने प्रतिबिंब को फेंकता है, यही उसका प्रवेश है। इसी अर्थ में श्रुति का तात्पर्य है।

प्रश्न—निराकार, रूप रहित का प्रतिबिंब कैसे बनता है ?

उत्तर—रूपरहित आकाश का प्रतिबिंब जैसे जल में पड़ता है और रूपरहित रूप का जैसे प्रतिबिंब पड़ता है, वैसे ही रूपरहित चेतन का भी प्रतिबिंब पड़ता है। वही प्रतिबिंब अंतःकरणरूपी उपाधि के सहित जीव कहा जाता है। इसीसे वह व्यापक चेतन अयोनि ही साबित होता है। इसमें संदेह नहीं है। अयोनिसैभं इसके दो पद बना लो। अयोनि और सैभं। अयोनि का अर्थ कारण से रहित और सैभं का अर्थ स्वतःसिद्ध है। अर्थात् वह परमेश्वर कारण से रहित है और स्वतःसिद्ध है।

प्रश्न—आपने जिस परमेश्वर के नित्यादि गुण कथन किये हैं, उस परमेश्वर की प्राप्ति कैसे हो सक्ती है ?

उत्तर—गुरुप्रसाद और गुरुओं की कृपा से ही उस परमेश्वर की प्राप्ति हो सक्ती है।

प्रश्न—जिस गुरु की कृपा से परमेश्वर की प्राप्ति हो सक्ती है उस गुरू के लक्षण क्या हैं ? यह कैसे जाना जाय कि यह गुरु करने के योग्य है ? इनकी कृपासे मुझे परमेश्वरकी प्राप्ति होगी ?

उत्तर—शम दमादिकों से जो युक्त है। अपने प्रयोजन बिना जो शिष्यके कल्याणकी इच्छा करता है। जो दयालु स्वभाव का है। छल कपटसे रहित है। उसी गुरुकी कृपासे परमेश्वर की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—जब वह गुरू प्रसन्न होवेंगे, तब क्या उपदेश करेंगे ?

उत्तर—जप। उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के नामों का जप। अर्थात् प्रत्येक श्वास में उसके नामों को जपते ही रहो, ऐसा उपदेश करेंगे।

प्रश्न—परमेश्वर का नाम जपने से क्या फल होगा ?

उत्तर—जपेनैव तु संसिद्धेत्। नामके जपने से ही पुरुष सिद्धि को प्राप्त होता है। अर्थात् जप करने से ही अंतःकरण की शुद्धि होती है। गरुड़पुराण में नाम के जपने का माहात्म्य भी लिखा है—

श्रीरामरामरामेति ये वदन्त्यपि पापिनः।
पापकोटिसहस्रेभ्यस्तेषां संतरणं ध्रुवम्॥
कलौ संकीर्त्तनादेव सर्वपापं व्यपोहति।
तस्माच्छ्रीरामनाम्नस्तु कार्यं संकीर्त्तनं वरम्॥

पापी पुरुष भी श्रीराम राम राम नित्य उच्चारण करने से करोड़ों पापों से मुक्त हो जाते हैं, इसी कारण नामका कीर्तन, जपना, सब जीवों को करना चाहिये।

वाराहपुराण में एक कथा आती है कि एक महापापी म्लेच्छ बैलों का व्यापार करता था। एक दिन वह बैलोंको लेकर कहीं जाता था। रास्तेमें वनमें ही उसको रात्रि होगई। वह वनमें ही उतर पड़ा। उसी जगह डेरा लगाकर वह सोरहा। आधी रात्रि में उसको पेशाव लगी। वह उठकर थोड़ी दूर जाकर पेशाव करने बैठा, तो पीछे से एक जंगली सूकर ने उसको ऐसी टक्कर मारी कि वह एक गड्ढे में जा गिरा। तव उसके मुख से निकला कि हराम से मरा। इतना कहते ही उसके प्राण निकल गये। यमके दूत उसको लेनेको आये। इधर से विष्णुके गण भी पहुँचे और यमके दूतों से उन्होंने कहा, "इसने हा राम" ऐसे राम को पुकारा है; इस वास्ते यह अव विष्णुलोक को ही जायगा। वे उसको विष्णुलोक में ले गये। नाम का ऐसा माहात्म्य है कि महापापी भी तर जाते हैं।

प्रश्न—शास्त्रों में तो लिखा है कि परमेश्वर भक्ति से ही प्रसन्न होता है और आप नामके जपने से ही ईश्वरकी प्रसन्नता वताते हैं ?

उत्तर—ईश्वरकी भक्ति अनेक प्रकार से होती है और अनेक प्रकार की भक्ति ग्रंथों में कही भी है। उनमें नामका जपनाही भक्ति का सुगम रूप कहा है। भागवते—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

विष्णु के नामों की कथाओं का श्रवण करना, कीर्तन करना–याने गायन करना, मनमें स्मरण करना, पादसेवन करना, पूजन करना, नमस्कार करना, अपने को उसका दास मानना, उसे अपना सखा मानना और अपने शरीरादिकों को उसे अर्पण करना, ये नव प्रकार की भक्ति है। परीक्षित राजा उसके गुणों का श्रवण करते रहे, नारदजी उसके गुणों का कीर्तन करते रहे, प्रह्लादजी उसके नामका स्मरण करते रहे, लक्ष्मी उनके चरणों की सेवा करती रहीं, पृथुराजा आदिकों ने अर्चन याने पूजन किया, अक्रूर और उद्धवने वंदना करके ही उसको प्रसन्न किया और हनुमान् तथा गरुड़जीने दासभाव से ही उनको प्रसन्न किया है, अर्जुनने मित्रभाव से उनको प्रसन्न किया है और बलि राजा ने अपनी सर्वस्व भेट देकर उनको प्रसन्न किया है, ये नव प्रकार की भक्ति उसकी प्रसन्नता का साधन है। इसमें नामका स्मरण और कीर्तन ही सुगम साधन है। इसी से गुरूजीने भी नामके ही जपने को कहा है। नामके जपने में सब वर्णाश्रमों का अधिकार भी है। किसी का वाद-विवाद भी नहीं है। भक्ति नाम प्रेम का है। वह प्रेम किसी तरहसे हो, उसी तरहकी वह भक्ति कही जाती है। शाण्डिल्यमुनिने भक्ति के सूत्र भी कहे हैं।

सापरानुरक्तिरीश्वरे। ईश्वरे परानुरक्तिर्भक्तिः ॥

ईश्वर में जो परम अनुराग है, याने अतिशय प्रेम है, उसीका नाम भक्ति है। किसी को तो उसके गुणों के माहात्म्य श्रवण करने से प्रेम होता है, जैसे कि राजा परीक्षित को हुआ है, किसी को उसके रूपके देखने से होता है, जैसे कि गोपीजनों को हुआ है, किसीका उसकी पूजा करने में प्रेम होता है, जैसे कि पृथुराजा को हुआ है, किसी को उसके नामके स्मरण करने में प्रेम होता है, जैसे प्रह्लाद को हुआ है, किसी का दासभाव में ही प्रेम होता है, जैसे कि हनुमान्‌जी को हुआ है, किसी को उससे मैत्री करने में ही प्रेम हुआ है, जैसे कि अर्जुन

का हुआ है, किसी का कांतरूप मानकर प्रेम होता है, जैसे कि गोपियों का हुआ है, किसी का पुत्ररूप जानकर प्रेम होता है, जैसे कि यशोदा-नंद का कौशल्या दशरथ का हुआ है और किसी का सर्वस्व अर्पण करने से प्रेम हुआ है, जैसे कि राजाबलि का हुआ है। नारदजीने भी अपने भक्ति के सूत्रों में इसी तरह की नव प्रकार की भक्ति कही है। उनको यहाँ पर नहीं लिखा है। तुलसीदासने भी नवप्रकार की भक्ति, पूर्वोक्त से कुछ विलक्षण, रामायण में कही है।

चौपाई

नवधा भक्ति कहों तोहिं पाहीं। सावधान सुनु धरि मनमाहीं॥
प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा। दूसर रत मम कथा प्रसंगा॥

दोहा

गुरुपद पङ्कज सेवा, तीसर भक्ति अमान।
चौथि भक्ति मम गुण गण, करे कपट तजि गान॥

चौपाई

मन्त्रजाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजन सो वेदप्रकासा॥
षटदश शील विरति बहुकर्मा। निरत निरन्तर सज्जनधर्मा॥
सप्तम सब मोहिंमय जग देखे। मोते सन्त अधिक कर लेखे॥
अष्टम यथालाभ संतोषा। सपनेहु नहिं देखे परदोषा॥
नवम सरल सब सों छलहीना। मम भरोस जिय हर्ष न दीना॥
नव महँ जिनके एको होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सो अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे॥

तुलसीदासजी ने भी नव प्रकार की भक्ति में दृढ़ विश्वास करके परमेश्वर के नाम के जप को भक्ति कहा है। नाम के स्मरण का महत्त्व भी अनेक ग्रंथों में लिखा है। नाम के स्मरण में किसी विधि की भी जरूरत नहीं है।

स्नातो यदि वा स्नातः शुचिर्वा यदि वाशुचिः ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं सबाह्याभ्यन्तरःशुचिः ॥

स्नान किये हो अथवा नहीं, शरीर से पवित्र हो अथवा अपवित्र हो, जो पुंडरीकाक्ष विष्णु के नाम का स्मरण करता है, वह बाहर भीतर से पवित्र होजाता है । लिंगपुराण में भी नाम के जपने का महत्त्व लिखा है ।

चाण्डालादिजन्तूनामधिकारोऽस्ति वल्लभे ।
श्रीरामनाममन्त्रेऽस्मिन् सत्यं सत्यं सदाशिवे ॥
तावद्गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्याशतानि च ।
यावद्रामं रसनया न गृह्णातीति दुर्मतिः ॥

महादेवजी पार्वती से कहते हैं, हे प्रिये ! श्रीराम नाम मंत्र के जपने में चांडालादिकों का भी अधिकार है । मैं सत्य २ कहता हूँ । तब तक पुरुषों के शरीर में ब्रह्महत्या आदि सैकड़ों पाप पड़े गर्जते हैं, जबतक दुर्मति पुरुष रसना करके राम-नाम का उच्चारण नहीं करता है । उच्चारण करते ही सब पाप भाग जाते हैं, इसी वास्ते गुरुजी ने भी नाम के जपने का ही उपदेश किया है । तात्पर्य्य यह है जब कि महात्मा गुरु के पास जाकर शिष्य परमेश्वर की प्राप्ति के साधन को पूछेगा, तब गुरु उसके चित्त की शुद्धि के लिये पहले नाम के जपने का उपदेश करेंगे ।

प्रश्न—जिस परमेश्वर के नाम के जपने का गुरु उपदेश करेंगे उस परमेश्वर का स्वरूप कैसा है ?

उत्तर—आदिसच । जगत् की उत्पत्ति से पूर्व अर्थात् सृष्टि करने की इच्छा जब तक उस परमेश्वर में नहीं स्फुरी थी, तब भी वह सद्रूप था । जुगादि सच । फिर जब उस परमेश्वर में सृष्टि करने की इच्छा स्फुरी, तब भी वह सद्रूप ही था । है भी सच । फिर सृष्टि के उत्पन्न होने पर भी वह सद्रूप ही है । गुरु नानकजी कहते हैं । होसी भी सच । सृष्टि के नाश के अनंतर प्रलयकाल में भी वह सद्रूप ही होगा ।

जपजी के आदि में, प्रथम गुरुजी ने मंत्ररूप श्लोक कहा है उसी की आगे व्याख्यारूप ३८ पौड़ियाँ नाम धरकर कथन करते हैं।

फल

रविवार से सूरज के सामने चालीस दिनमें सवालाख जपकरे और आदि और अंत में कड़ाह प्रसाद करे, तो अपने स्वरूप में मग्न हो जाय, ब्रह्म के दर्शन से, जो कहे वह हो जाया करे।

मू० ॥ सोचे सोच न होवई जे सोची लख बार।
चुपै चुप न होवई जे लाइरहा लिवतार॥
भुख्याभुख न उतरी जे बंना पुरियाँ भार।
सहसस्याणपां लखहोइतइकनचलैनाल॥
किव सच्याराहोईये किव कूड़ै तुटै पाल।
हुकमरजाई चलणा नानक लिख आनालि॥

अर्थ—"सोचे सोच न होवई" सोच नाम शुद्धिका है। मृत्तिका और जल से इस स्थूल शरीर को शुद्ध करने से इसकी शुद्धि कदापि नहीं होती है। "जे सोची लखवार" यदि लाखों दफा भी मृत्तिका और जलसे इसको शुद्ध करता रहे, तो भी यह शुद्ध नहीं होसक्ता है; क्योंकि इसके नवही द्वारों से नित्यही मल गिरता रहता है। यदि एक या दो रोज इसको जल से न धोया जाय, तो इसमें दुर्गंधि आने लगती है। इसकी उत्पत्ति भी अत्यंत मलीन वीर्य से होती है। इसके भीतर भी मल, मूत्र, विष्ठा आदि अपवित्र वस्तुएँ भरी हैं, ये मृत्तिका और जल से कैसे शुद्ध होसक्ती हैं? कदापि नहीं होसक्तीं। इसी वार्ता को सूतसंहिता में भी कहा है—

अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते॥

यह विषय स्थूल देह अत्यंत मलीन है, अति अपवित्र है और इसके अंतर जो आत्मा है, वह अत्यंत निर्मल है। तब शुद्धि किसकी

होती है ? किसीकी भी नहीं; क्योंकि देह तो कदाचित् शुद्ध नहीं होसकी और आत्मा अशुद्ध नहीं होसक्ता।

प्रश्न—जल और मृत्तिका से शरीर और आत्मा की शुद्धि नहीं होसक्ती, तब शास्त्रों में दो प्रकार का शौच किस वास्ते विधान किया है ?

शौचं हि द्विविधं प्रोक्तं बाह्याभ्यन्तरकं तथा।
मृज्जलाभ्यां भवेद्बाह्यं मनःशुद्धिस्तथान्तरम्॥

अर्थ—शौच दो प्रकार का कहा है। एक बाह्य शरीर का और दूसरा अंतर मन का। बाह्य शौच तो मृत्तिका और जल से होता है और अंतर शौच और साधनों से होता है।

उत्तर—शास्त्र में जो मृत्तिका और जल करके शरीर की शुद्धि मानी है सो उस शुद्धि का अर्थ शरीर की सफाई है और उसका फल शरीर की आरोग्यता है। यदि स्नानादिकों से शरीर की सफाई नित्य नहीं होगी, तो वह मलीन होने से रोगग्रस्त होजायगा। इसीसे प्रातःकाल के स्नान का माहात्म्य भी लिखा है। जिससे शरीर की आरोग्यता बनी रहे। शरीर के आरोग्य रहने से ही व्यवहार और परमार्थ भी सिद्ध होता है। इसी वास्ते स्नान में दस गुण लिखे हैं—

स्नानं नाम मनःप्रसादजननं दुःस्वप्नविध्वंसनं,
शौचस्यायतनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसः।
रूपोद्योतकरं गदप्रशमनं कामाग्निसंदीपनं;
नारीणां च मनोहरं श्रमहरं स्नाने दशैते गुणाः॥

स्नान करने से आलस हटता है, मन प्रसन्न होता है, दुःस्वप्न का भी नाश होता है, शरीर की सफाई का आश्रय है, शरीर के मलों को दूर करता है, तेजको बढ़ता है, रूपको उज्ज्वल करता है, बदहजमी को दूर करता है, कामाग्नि को बढ़ाता है, थकावट को भी दूर करता है, और स्त्रियोंके लिये तो अति मनोहर है, स्नान में ये दश गुण हैं, जो शरीर की आरोग्यता के हेतु हैं। इनसे भिन्न और रूपांतर रूप शुद्धि तो लिखी नहीं और न देखते हैं और न अंतर मनकी शुद्धि

स्नानादिकों करके लिखी है और न स्नानादिकों के करने से इसके भीतर की मल सुगंधित होजाती है ; किंतु ज्योंकी त्योंहीं रहती है। इसीसे सिद्ध होता है गुरुजी ने जो कहा है सो ठीक है। काशीखंड में भी ऐसी वार्त्ता लिखी है—

न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तस्सुनिर्मलः॥

शरीर का मल त्यागे से पुरुष शुद्ध नहीं होता है, मनका मैल निकालने से ही पुरुष शुद्ध होता है।

नक्तं दिनं निमज्याप्सु कैवर्त्तः किमु पावनः।
शतशोपि तथा स्नातः न शुद्धः भावदूषितः॥

रात्रि दिन मल्लाह लोग जल में ही रहते हैं, तो क्या वह पवित्र हो जाते हैं ? कदापि पवित्र नहीं होते हैं। यदि उनका मन पवित्र हो जाय, तो मछली आदि जीवों की हिंसा ही न करें। पर वे बराबर वही करते हैं, इसी से जाना जाता है, बाहर के स्नान से मनकी शुद्धि नहीं होती है। पुरुष लाखों दफे स्नान करे, पर जिसका मन दुष्ट है, वह कदापि शुद्ध नहीं होता है।

प्रश्न—यदि बाहर के स्नानादिकों से मनकी शुद्धि नहीं होती, तो आचारी लोग बाहरके आचार कोही ईश्वरकी प्राप्ति का मुख्य साधन क्यों मानते हैं और बहुत सी छूआ क्यों करते हैं ?

उत्तर—एक तो वह असली आचार को जानते नहीं हैं, दूसरे वे आचार के फलको नहीं जानते हैं, तीसरे वे सिद्धांत के ग्रंथों को न पढ़ते हैं न देखते हैं, चौथे उनकी बुद्धि विचारशील नहीं होती है, इसीसे वह पाखंडरूपी आचार में ही व्यर्थ जन्मको खोते हैं।

प्रश्न—असली आचार क्या है ?

उत्तर—असली आचार दो प्रकारके हैं। जैसा पीछे कहा है, जलादिकों से शरीर और वस्त्रादिकों को तथा मकान को साफ रखना। देखने में सुंदर तथा स्वभाव के कोमल होना और नरम भोजन करना, अर्थात् सात्त्विकी भोजन करना। राजसी और तामसी भोजन का

त्याग करना। नीच जाति वालों को स्पर्श न करना। मद्यपानादि के सेवन करनेवालों का भी संग न करना; क्योंकि उनके संग से भी पाप होता है। किसी जीव की हिंसा न करनी। मांस-मद्य का सेवन न करना। ये बाहर के असली आचार हैं। अब अंतर के आचार को कहते हैं। मन से दूसरे का बुरा न सोचना न करना। वाणी से झूठ न बोलना। किसी का भी अपकार न करना। सब जीवों पर दया करनी। कपट-छल न करना। भीतर बाहर से सचाई रखनी। ये सब अंतर के आचार हैं। बाहर का आचार ईश्वर की प्राप्ति का साधन नहीं है; अंतर का आचार ही ईश्वर की प्राप्ति का मुख्य साधन है। जो बाहर के आचार को करते हैं और अंतर के आचार को नहीं करते हैं; उन्हीं को पाखंडी कहा है; क्योंकि उनके चित्त में लोकों को वंचन करने के लिये कपट भरा है। गीता में भी भगवान् ने कहा है—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

भगवान् कहते हैं, जो बाहर से कर्म इंद्रियों को रोक के मन से विषयों का चिंतन करता है वही कपट आचारवाला कहा गया है। कबीरजी ने भी यही बात कही है—

सन्ध्या प्रातः स्नान कराहीं। ज्यों भये दादुर पानी माहीं॥
जो पह राम नाम रतनाहीं। ते सब धर्मराय पै जाहीं॥

और भी कहा है—

रहाउ॥

अन्तर मैल लोभ बहु झूठे बाहरि नावहु काही जीउ।
निर्मलनामजपहु सद्गुरु मुख अन्तरकी गति ताही जीउ॥

बाहर के स्नान से क्या होता है जब शरीर के भीतर लोभादिक मैल भरा है परमेश्वर का शुद्ध नाम गुरु से सुनकर उसी को जपो, तब भीतर की शुद्धि होगी।

झूठ विकार महादुःख देह। भेप वर नदी सहस भखेह॥

देह के भीतर संताप के देनेवाले झूठ और विकार भरे हैं। जब तक वे दूर न होवें, तब तक ऊपर के भेष और रंग बनाने से क्या होता है? तात्पर्य यह है कि ऊपर के आचार से कुछ नहीं होता, जब तक भीतर का आचार शुद्ध न हो। जहाँ पर अति आचार रहता है, वहाँ पर विचार समीप भी नहीं आता है; क्योंकि उसी पाखंड-रूपी आचार में फँसे रहने से उनको विचार करने का अवसर भी नहीं मिलता। अति आचार करनेवालों में दया भी नहीं होती है। वह छू छाकी डरसे अपने वर्त्तन से दूसरे को जल भी नहीं पिलाते हैं। चाहे कोई मुसाफिर प्यासा ही मरजायं। दया बिन सिद्ध कसाई कहा है, तब आचार ईश्वर की प्राप्ति का साधन कैसे होसक्ता है? कदापि नहीं होसक्ता है। विचार ही ईश्वर की प्राप्ति का साधन है। सो योगवाशिष्ठ में कहा भी है।

न विचारं विना कश्चिदुपायोऽस्ति विपश्चिताम्।
विचारादशुभं त्यक्त्वा शुभमायाति धीः सताम्॥
बलं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिः क्रियाफलम्।
फलन्त्येतानि सर्वाणि विचारेणैव धीमताम्॥

बुद्धिमानों के लिये विचार ही ईश्वर की प्राप्तिका उपाय है। विचार से ही अशुभ संसार को त्याग के पुरुषों की बुद्धि शुभमार्ग को प्राप्त होती है। बल, बुद्धि, तेज और कर्मों के फल की सिद्धि, ये सब बुद्धिमानों को विचार से ही फलीभूत होते हैं। बिना विचार के ऊपर का आचार निरर्थक है। जितने ऊपर की छू छा करनेवाले विचार से शून्य हैं, वे सब मूर्ख और पाखंडी हैं। गुरु ग्रन्थसाहबजी के शब्दों में भी यही वार्त्ता कही है—

सोरठ ॥ म० ॥ १ ॥

क्रियाचार करे षट्कर्मा इतराते संसारी।
अन्तर मैल न उतरे हो में बिनु गुरु बाजी हारी॥

आचार का फल योग में भी दिखाया है।

"शौचात्स्वाङ्गे जुगुप्सापरैरसंसर्गः"

शौचात् याने आचार से; स्वांगे जुगुप्सा, जब कि अपने ही शरीर से घृणा होवै, और परैरसंसर्गः, अर्थात् पर जो नीचजाति वाले हैं, उनके साथ संबंध न होना, येही आचार का फल है। तात्पर्य्य यह है कि जिसको आचार करते २ कुछ दिन के पीछे, अपने शरीर से ऐसी घृणा हो कि यह शरीर अतिमलीन और अपवित्र है; क्योंकि हम इसको प्रतिदिन धोते और माँजते रहते हैं, फिर भी यह शुद्ध नहीं होता और न कदापि यह शुद्ध होगा। जिसका कारण ही अशुद्ध है, उसका कार्य्य कैसे शुद्ध होसक्ता है? कदापि नहीं होसक्ता। इस वास्ते शुद्ध वस्तु को जानना चाहिये। इस प्रकार शरीरादिक से वैराग्य होना ही आचार का फल है। वैराग्य-विचार से विना जो आचार है, वह सब निष्फल है। केवल जलताड़नाकी तरह परिश्रम मात्र ही है। जितने कि आज कल छू छावाले मनकी शुद्धि से रहित हैं, वे विचार से भी रहित हैं, और सब पाखंडी हैं। महाभारत में भी इसी वार्ता को कहा है—

अमेध्यपूर्णे क्रिमिराशिसंकुले स्वभावदुर्गन्धितमेलमध्रुवे।
कलेवरे मूत्रपुरीषभाजने रमन्ति मूढा विरमन्ति पण्डिताः॥

यह स्थूल शरीर अपवित्र मल मूत्र से भरा हुआ है। इसके भीतर क्रिमियों की राशियों के समूह हैं। स्वभाव से ही दुर्गंधिवाला है और अनित्य है। मूत्र तथा विष्ठा का एक भाजन याने वर्त्तन है ऐसे अपवित्र शरीर में मूढ पुरुष ही प्रीति करते हैं। विद्वान् इससे वैराग्य को प्राप्त होते हैं।

स्वदेहाऽशुचिगन्धेन न विरज्येत यः पुमान्।
वैराग्यकारणं तस्य किमन्यदुपदृश्यते॥

अपने अपवित्र और दुर्गंधिवाले शरीर से जो पुरुष वैराग्य को नहीं प्राप्त होता है, उसे इससे अधिक वैराग्य का और कौन कारण बताया जाय?

यदन्तस्य देहस्य बहिः स्याच्च तदेव हि।
दण्डग्रहावारयेयुः शुनः काकांश्च मानवः॥

'जो कुछ इस देह के भीतर है, यदि विधाता उसको बाहर की तरफ़ कर देता, तब सब मनुष्य दिन भर हाथ में दंड लेकर कौवों को ही हटाते रहते; क्योंकि कौवे इसको चोंचों से काटने को दौड़ते।

सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः।
शरीरस्य कृते मूढाः सर्वे पापानि कुर्वते॥

संपूर्ण अपवित्रों की खानि और कृतघ्न तथा नाशी जो यह शरीर है इसके वास्ते मूढ़ पुरुष सब पापों को करते हैं, विचारवान् नहीं करते हैं। तात्पर्य यह है कि जितने अति आचारवाले हैं और बाहर के आचार करके शुद्धि मानते हैं, उनके प्रति गुरुजी का कथन है "सोचे सोच न होवई" बाहर की सफ़ाई करने से मन की सफ़ाई कदापि नहीं हो सक्ती है। "जे सोची लखवार" यदि लाखों दफ़ा भी बाहर की सफाई करता रहै। अब दूसरा अर्थ कहते हैं। सोच का अर्थ विचार भी है; क्योंकि शोचकर शोचकर याने विचारकर विचार क्यों भूलता है। इस लौकिक प्रमाण से शोच का अर्थ विचार सिद्ध होता है। तब फिर "सोचे सोच न होवई" इसका यह अर्थ हुआ कि व्यवहार के विचारों से परमार्थ का विचार नहीं हो सक्ता है। तात्पर्य यह है कि बहुत से संसारी लोग रात दिन व्यवहार का ही विचार करते रहते हैं। अब इतना धन कमा लिया है, इतना ही और कमालें, तब मकान बनवावेंगे, फिर लड़के की शादी करेंगे, इस तरह के विचार रात दिन करते ही रहते हैं। और परमार्थ के विचार के फल की इच्छा करते रहते हैं। इसी पर गुरुजी ने कहा है कि व्यवहार के विचारों से परमार्थ का विचार और फल नहीं होसक्ता है। यदि लाखों जन्मों में भी व्यावहारिक विचार करता रहे।

शोचे और शोची इन दो पदों का अर्थ तो विचार है और शोच शब्दवाले चकार का अर्थ पुनः है, और सः का अर्थ, वह परमेश्वर है अर्थात् व्यावहारिक विचारों से उस परमेश्वर की पुनः प्राप्ति नहीं

हो सकी है। यदि लाखों दफा भी अथवा लाखों जन्मों में भी व्यवहारिक विचार करता रहे। इस पर एक दृष्टांत है। एक धर्म्मात्मा राजा था। वह रात दिन व्यवहारों के विचार में ही रहता और ईश्वर की प्राप्ति की इच्छा करता; परंतु साधनों को न करता और न उनका विचार करता। एक दिन रात्रि के समय में सिद्ध आकर उसके घर की छत पर दौड़ने लगे। तब राजा ने पुकार कर कहा, "तुम कौन हो और क्यों छत पर दौड़ते हो?" सिद्धों ने कहा, "हम शिकारी हैं और इस छत पर बाघ को खोजते हैं।" तब राजा ने कहा, "कभी छतों पर भी बाघ रहते हैं? वह तो जंगल में रहते हैं।" तब सिद्धों ने कहा, "कभी व्यवहारिक विचारों से भी परमेश्वर की प्राप्ति होती है? वह तो परमार्थिक विचार से और साधनों से होती है।" इसी पर गुरुजी ने भी कहा है--"सोचे सोच न होवई।" व्यवहार के विचारों से परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होती है, यदि लाखों जन्मों में भी करता रहे। अब इसी तुक के चौथे अर्थ को दिखाते हैं।

कहते हैं, फलाना आदमी बड़े सोच में पड़ा है अर्थात् बड़े शोक में पड़ा है। इसको उपदेश करके इसके शोक को दूर करो। इस लौकिक मिसाल से सोच का अर्थ शोक भी साबित होता है। सोचे, याने धन पुत्रादिकों के शोक करने से। "सोच न होवई" क्या वह शोक फिर नहीं होगा? अवश्य होगा। "जे सोची लखवार" यदि लाखों दफा भी पड़ा शोक करे। तात्पर्य यह है कि संसारी लोग रात दिन चितारूपी शोक में ही पड़े रहते हैं। किसी को धन की चिंता होती है और किसी को स्त्री की। किसी को पुत्र की और किसी को अनेक प्रकार की चिंताएँ बनी ही रहती हैं; परंतु इस संसाररूपी बंधन से छूटने की चिंता किसी को भी नहीं होती। जब तक कि संसार से छूटने की चिंता नहीं होगी, तब तक ईश्वर की प्राप्ति भी नहीं होगी। इस संसार-बंधन से छूटने की चिंता करनी चाहिये। नीति में व्यवहारिक चिंता की निंदा भी की है।

चिताचिन्ताद्वयोर्मध्ये चिन्ता चैव गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहात्सजीविकम्॥

चिता और चिंता दोनों में चिंता ही बड़ी है; क्योंकि चिता तो मरे हुये को जलाती है और चिंता जीते को ही जलाती है।

प्रश्न—व्यवहारिक शोकरूपी चिंता से छूटने का उपाय क्या है ?

उत्तर—विचार और वैराग्यही व्यवहारिक शोक से छूटने के उपाय हैं। आत्मपुराण में लिखा है—

येषां निमेषोन्मेषाभ्यां जगतां प्रलयोदयौ।
तादृशाः सन्ति वै नष्टा मादृशां गणनैव का॥

जिनके आँख के खोलने और मूँदने से जगतों का उदय और लय होता है वैसे भी जब नष्ट होगये, तब हम साधारण लोगों की कौन गिनती है ?

कोटयो ब्रह्मणो याता गताः सर्गपरंपराः।
प्रयाताः पांशुवद्भूपाः का धृतिर्मम जीवने॥

करोड़ों ही ब्रह्मा व्यतीत होगये, अनंत सर्गों की परंपरा भी व्यतीत होगई, अनंत राजा धूलिके किणकों की तरह गत होगये, तब हमारे जीवने की कौनसी आशा है—अपने उद्धार के लिये इस तरह शोक करने से मनुष्य व्यवहार के शोक से छूट जाता है। एक विरक्त योगाभ्यासी के पास जाकर एक पुरुष योगको सीखता था। कुछ काल में उसको योग की सब क्रियाएँ आगई और समाधि लगानी भी कुछ २ आगई। तब उसने एक दिन उस महात्मा से कहा, "महाराज, घरके धंधे हमारी समाधि में बड़ा विघ्न करते हैं। इनसे छूटने का कोई उपाय बताओ। महात्मा ने कहा, "घरको छोड़दे, इसके छोड़ने के साथ ही धंधे भी छूटजायँगे।" उसने कहा, यदि मैं घरके संबंधियों को छोड़ दूं, तब ये मेरे बिना कैसे जीवेंगे ? मुझे इनकी बड़ी चिंता है। योगी ने कहा, "तेरे बिना भी ये सब जीते ही रहेंगे।" तू इनकी झूठी चिंता करता है। अपने कल्याण के लिये तू चिंता क्यों नहीं करता ? यदि मेरे कथन में तेरा विश्वास न हो, तो मैं तुझे प्रत्यक्ष दिखला देता हूँ। ये जो तेरे संबंधी हैं, सब अपने सुख के लिये तुझ से प्रेम करते हैं। तेरे सुख के लिये ये तुझसे प्रेम नहीं करते हैं। इस

बात की तू इस तरह परीक्षा कर-कल तू अपने घर में प्राणों को रोक कर समाधि में स्थित होजाना। फिर मैं तेरे सब संबंधियों की परीक्षा करके तुझे दिखा दूंगा। दूसरे दिन उस पुरुष ने वैसाही किया। संबंधियों ने जाना यह तो मरगया है; क्योंकि इसके प्राण न आते हैं, न जाते हैं। तब वे संबंधी उस योगी के पास आये और आकर उस का सब हाल कहा। तब योगी उनके घर गये और उसको देखकर उसके संबंधियों से कहा, "थोड़ा सा दूध मँगावो।" उन्होंने जब दूध मँगाया, तब योगी ने उस पर मंत्र पढ़कर उसके माता पिता से कहा, 'इस दूध को तुम पी जाओ। इसके पीने से तुम तो मरजाओगे; परंतु यह तुम्हारा लड़का जिंदा होजायगा।' उन्होंने कहा, हम मरगये और लड़का जिंदा होगया, तो हम को क्या फल हुआ? हम अगर जीते रहेंगे, तो और लड़का उत्पन्न होजायेगा। हम यह दूध नहीं पियेंगे। फिर उसकी स्त्री से कहा, "तू इस दूध को पी जा।" स्त्री ने कहा, "यदि मैं मरगई और यह जी भी गया, तो मुझे इसका क्या सुख होगा? मैं इस दूध को नहीं पिऊँगी।" इसी तरह सब संबंधियों से कहा। किसी ने भी न पिया। तब योगी ने आप ही वह दूध पान कर लिया और उसको समाधि से उतार कर कहने लगा, "जिनके लिये तू शोक करता था, उनमें से किसी ने भी तेरे लिये शोक नहीं किया। अब तू चलकर अपनी चिंता कर। ऐसा कह कर उसको बंधन से छुड़ा, साथ लेकर चलेगये। इसी तात्पर्य्य को लेकर गुरुजी ने भी कहा है। "सोचे सोच न होवई" संबंधियों की चिंता करने से परमार्थ संबंधी अपनी चिंता नहीं होती। यदि लाखों दफा भी उनकी चिंता की जाय। जब तक शुद्ध चित्त से ईश्वर का स्मरण न करे, तब तक कोई चितारूपी संसार से पार नहीं होसक्ता है ॥

आत्मनो मुखदोषेण बध्यन्ते शुकसारिकाः।
बकास्तत्र न बध्यन्ते मौनं सर्वार्थसाधनम् ॥

प्रश्न—अपने मुख के दोष से तोते और मैनादि पक्षी पिंजरों में बंद होते हैं; क्योंकि वे सुंदर बोलियों को बोलते हैं; परंतु बगुले को

कोई भी पकड़ करके पिंजरे में नहीं डालता है; क्योंकि वह बोलता नहीं है। मौनही रहता है। तब यह वार्त्ता सिद्ध हुई कि संपूर्ण अर्थ का साधक मौनही है। उसी मौन से ही संसाररूपी चिंता से नर तर जायगा फिर भजन तथा स्मरण की क्या जरूरत है?

उत्तर—यह बगुले के मौन का दृष्टांत ठीक नहीं है; क्योंकि बगुले का मौन पापकर्म के लिये है। श्रीरामचंद्रजी वन में भ्रमण करते हुए जब पंपासर के किनारे पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि एक बगुला एक पाँव के भार आँख को मूँदे हुए खड़ा है। तब रामजी ने लक्ष्मणजी से कहा—

पश्य लक्ष्मण पम्पायां बकः परमधार्मिकः।
शनैः शनैः क्षिपेत्पादं जन्तूनां वधशङ्कया॥

लक्ष्मण, देख यह बगुला बड़ा धर्मात्मा है; क्योंकि जीवों के वध की शङ्का करके धीरे २ पाँव रखता है। उसी काल में एक मछली ताल से निकल कर रामजी से कहने लगी—

सहवासी विजानीयाद् धर्माऽधर्मौ च पूरुषः।
बकः किं वर्ण्यते राम येनाहं निष्कुलीकृतम्॥

हे राम! सहवासी पुरुष ही पुरुष के धर्म अधर्म को जानता है। इस बगुले का आप क्या वर्णन करते हैं? इसने तो मेरा सारा कुल ही नष्ट कर दिया है। तात्पर्य्य यह है कि ऊपर से बगुले की तरह भी मौन रखने से संसाररूपी शोक दूर नहीं होता है। इसी वार्त्ता को गुरुजी भी कहते हैं।

"चुपे चुप न होवई जे लाय रहा लिवतार"।

यदि नेत्रों को मूँदकर और पद्मासन को लगाकर चुप करके अर्थात् वाणी का निरोध करके पुरुष बैठ भी जाय, तब भी 'चुप न होवई' मौन नहीं होसक्ता है। 'जे लाय रहा लिवतार'। लिव नाम दृष्टि का है और तार नाम एक रस का है। यदि बगुले की तरह या बिलार की तरह, एकरस दृष्टि को लगा भी रक्खे, तब भी मौन नहीं होसक्ता है। जबतक मन का मौन न हो अर्थात् जबतक मन की वृत्तियाँ विषयों

की तरफ से न हटें, तब तक सच्चा मौन नहीं होता है। बिना सच्चे मौन के नर संसाररूपी शोकसागर से कदापि नहीं तरता है; क्योंकि मनको ही बंध-मोक्ष का कारण लिखा है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्॥

पुरुषों का मन ही बंध और मोक्ष का कारण है। जब कि मन विषयों में आसक्ति कर लेता है, तब बंध का कारण हो जाता है और जब कि निर्विषय होजाता है, तब मुक्ति का कारण होजाता है। इसलिये मन की चञ्चलता के हटाने का नाम ही मौन है। मन की चञ्चलता के बारे में भागवत में भी कहा है।

मनोहराणां च भोग्यानां युवतीनां च वाससाम्।
वित्तस्यापि सान्निध्याच्चलेच्चित्तं सतामपि॥

सुंदर मन के हरनेवाले भोगों को देखकर, सुंदर युवतियों को तथा सुंदर वस्त्रों को देखकर श्रेष्ठ पुरुषों का भी चित्त चलायमान हो जाता है, तब फिर इतर पुरुषों के मन की कौन बात है।

योगवाशिष्ठ।

क्षणमानन्दतामेति क्षणमेति विषादताम्।
क्षणं साम्यत्वमायाति सर्वस्मिन्नटवन्मनः॥

यह मन कैसा है क्षणमात्र में तो आनंद को प्राप्त होता है और क्षणमात्र में विषाद को। क्षणमात्र में समता को प्राप्त होता है। सर्वदा काल नट की तरह यह मन घूमता ही रहता है। भागवत में कहा है—

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्माग्रहकर्मकालाः।
मनःपरंकारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्त्तयेद्यत्॥

ये संसार के लोग मेरे सुख-दुःख के हेतु नहीं हैं और देवता तथा ग्रह और काल भी मेरे सुख-दुःख के हेतु नहीं हैं, मन को ही महात्माओं ने संसाररूपी शोक का कारण कहा है। और भाषा में भी कवियों ने मन की चंचलता का निरूपण किया है—

कबहूँ मन रंग तरंग चढ़ै, कबहूँ मन सोचत है धनकूँ।
कबहूँ मन मानुनि देख चलै, कबहूँ मृग होय फिरै वनकूँ॥
कबहूँ मन रंग में भंग करै, कबहूँ मन साजत है रनकूँ।
कहे तुलसी सुविचार करी, कर शान्त सदा कपटी मनकूँ॥

देखबे को दौरै तो अटकि जाहि वाही ओर सुनबे को दौरै तो रसिक सिरताज है। सूँघिबे को दौरै तो अघाय न सुगन्धन सों खायबे को दौरै तो न धावै महाराज है॥ भोगबे को दौरै तो तृपत नहीं होय कबौं सुन्दर कहत याहि नेकहू न लाज है॥ काहू को न कह्यो करै अपनी ही टेक धरै मनसो न कोऊ हम देख्यो दगाबाज है॥

तात्पर्य्य यह कि मन बड़ा चंचल है। इसीकी चंचलता से जीव शोकरूपी सागर को नहीं तरसक्ता है।

प्रश्न—मनकी चंचलता रोकने के क्या उपाय हैं? कहिये।

उत्तर—योगवाशिष्ठ में लिखा है—

द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानञ्च राघव।
योगो वृत्तिनिरोधोहि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्॥
असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचिज्ज्ञाननिश्चयः।
प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमेश्वरः॥

वशिष्ठजी कहते हैं, हे राघव! चित्त के नाशके दो क्रम हैं। एक योग और दूसरा ज्ञान। दोनों में से किसी को योग असाध्य है और किसी को ज्ञान। ये दोनों प्रकार चित्तके निरोध के देव परमेश्वर ने कहे हैं।

प्रश्न—चित्तके निरोध के, वशिष्ठ के कहे, ये दोनों साधन कठिन हैं; क्योंकि इन दोनों साधनों में सबका अधिकार नहीं है। कोई तीसरा साधन कहिये, जिसको कि सब कोई करसके।

उत्तर—योगसूत्रों में चित्तके निरोध के लिये और भी सुगम साधन कहा है उसको सुनो—"ईश्वरप्रणिधानाद्वा, ईश्वरेप्रणिधानं, ईश्वरप्रणिधानम्" ईश्वर को सम्पूर्ण क्रियाओं के फलको अर्पण-रूप जो भक्ति विशेष है, वही मनकी चंचलता के निरोध का सुगम उपाय है। भगवान् ने भी इसी उपाय को कहा है—

यथा राजानमाश्रित्य निगृह्यन्ते हि दस्यवः।
राजाश्रितोयमित्येवं ज्ञात्वा वश्या भवन्ति ते ॥
भगवन्तं तथाश्रित्य तत्प्रभावेन सर्वशः।
निगृह्याणीन्द्रियाण्येव क्षोभकान्यवियोगिनः ॥

जैसे राजा के बलपर या भरोसे राजा के भृत्यवर्ग चोरों को पकड़ लेते हैं और चोर भी उनके वश में होजाते हैं वैसेही जिसने परमेश्वर की ही भक्ति का भरोसा करलिया है उसकी संपूर्ण इन्द्रियाँ और मन आपसे आप उसके वशीभूत होजाते हैं। परमेश्वर की भक्ति से ही संपूर्ण कार्य सिद्ध होजाते हैं। इस वास्ते संसाररूपी शोक से तरने का सुगम उपाय परमेश्वर की भक्ति है।

प्रश्न—जिस परमेश्वर की भक्ति से नर शोकसागर से तर जाता है, उस परमेश्वर का क्या लक्षण है? उत्तम मध्यम भेद करके भक्ति कितने प्रकारकी है? भक्तिके भेद से क्या भक्तों में भी भेद है? और वे भक्त कितने प्रकार के हैं?

उत्तर—योगसूत्र में ईश्वरका स्वरूप ऐसा दिखाया है—"क्लेशकर्म्म-विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः"। अविद्या आदिक पाँच क्लेशों से और तीन प्रकार के कर्म्मों से और उनके फलसे और वासनारूपी संस्कारों से जो रहित पुरुष विशेष है, उसीका नाम ईश्वर है। उसीकी भक्ति करनी चाहिये। जो अविद्यादिकों वाला है, वही जीव है। ईश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक है। जीव परिछिन्न अल्पज्ञ है। इतनाही जीव और ईश्वर में फर्क है। चैतन्य दोनों बराबर हैं। अब भक्तिके भेद को कहते हैं। यद्यपि नव प्रकार की भक्ति पूर्व्व कही भी है

तथापि प्रेमकी न्यून अधिकता से फिर भी वह उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ भेद करके तीन प्रकारकी है। तीनों में से प्रथम उत्तम भक्ति को दिखाते हैं। संपूर्ण स्त्री-पुत्र-धनादिकों से ईश्वर में अधिक प्रेम होने का नामही उत्तम भक्ति है।

वित्तात्पुत्रः प्रियः पुत्रात्पिण्डः पिण्डात्तथेन्द्रियम्।
इन्द्रियेभ्यः प्रियः प्राणः प्राणादात्मा परः प्रियः॥

वित्त जो धन है, उससे पुत्र में अधिक प्रेम होता है; क्योंकि जब किसी के पुत्र को कोई कष्ट प्राप्त होता है, तब पुरुष करता है, चाहे कोई हमारा सब धन लेले, परंतु इसको अच्छा करदे। पुत्रके सुखके लिये धनके त्याग की भी इच्छा कहता है। पुत्रसे भी अपना शरीर अतिप्यारा है, क्योंकि दुर्भिक्षादिकों में पुत्र को बेच करके भी लोग अपने शरीर की रक्षा करते हैं। शरीर की रक्षाके लिये पुत्रका भी त्याग करदेते हैं। इसी से साबित होता है, पुत्रसे भी अपना शरीर अतिप्यारा है। जब कभी रस्ते में चलते २ ओला आकाश से पड़ने लगता है, तब नेत्रादिक इंद्रियों को बचाता है और उसको पीठपर सहन करता है। इसी से जानाजाता है इंद्रिय शरीर से भी प्यारे हैं। यदि किसी से कोई कसूर होजाय और राजा हुक्म दे कि इसके प्राण ले लो या इसकी एक आँख निकाललो तब प्राणों को बचाने के वास्ते एक आँख त्याग करदेता है। इसी से जाना जाता है इंद्रियों से भी प्राण अधिक प्यारा है। जब पुरुष किसी असाध्य रोग करके पीडित होता है, तब कहता है, "हे परमेश्वर! मेरे प्राण निकल जायँ कि मैं सुखी होजाऊँ।" आत्मा के सुखके लिये प्राणों के त्यागकी भी इच्छा करता है, तब यह बात सिद्ध हुई कि सबसे प्यारा अपना आत्मा है, जिसका अपने आत्मा से भी ईश्वर में अधिक प्रेम है, वही उत्तम भक्त है। उत्तम भक्त प्रह्लादजी हुये हैं, जिन्होंने अनेक प्रकारके क्लेशों को सहन किया, परंतु ईश्वर के प्रेम को न छोड़ा। फिर ध्रुव आदि भक्त हुये हैं, जिनको कितनाही राज्यादि का लोभ दिया गया, परंतु उन्होंने ईश्वर के प्रेम को न छोड़ा। उत्तम भक्त मीराबाई हुई है, जिसने जहर

के प्याले तक भी पी लिये; परंतु ईश्वर के प्रेम को न छोड़ा। जयदेवजी भी उत्तम भक्त हुये हैं, जिनके कटे हुये हाथ फिर से निकल आये। श्रीधरस्वामी, जिनकी सेवा विद्यार्थी बनके भगवान् ने की है। उत्तम भक्ति के प्रताप से प्रह्लाद को पिता ने कितने ही कष्ट दिये, परंतु उसका रोम भी न उखड़ा और मीराबाई को जहर के प्याले ने भी असर न किया, ऐसाही उत्तम भक्ति का महत्त्व है। जो इस लोक-परलोक कि या विषय वासना को त्यागकर और जाति आदिक धर्मों के अध्यास को त्यागकर केवल अनन्यचित्त होकर ईश्वर में सच्चे दिल से प्रेम करता है, वही उत्तम भक्त है। ऐसा प्रेम प्रह्लादादिकों ने किया है। जो पुत्र धनादि विषयों की प्राप्ति के लिये प्रेम करते हैं, वे मध्यम भक्त हैं वे सकामी कर्मी हैं। जो लोक में दिखलावे के लिये-ऊपर से तिलक छापे बहुत से करते और भीतर से लोगों के ठगने के विचार मन में रखते हैं, वे निकृष्ट ठग भक्त हैं। मनुष्य जन्म का यही फल है कि परमेश्वर की शरण को प्राप्त होकर, ऐसा चिंतन करे, जैसे कि शंकराचार्यजी ने किया है।

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः॥

हे नाथ! चेतनत्वेन यद्यपि हमारा तुम्हारा भेद नहीं भी है, तथापि मैं तुम्हारा ही हूँ, तुम हमारे नहीं हो; क्योंकि तरंग समुद्र का ही कहा जाता है, समुद्र तरंग का नहीं कहा जाता। जो ईश्वर की शरण को प्राप्त होता है, वही शोकरूपी संसार से तर जाता है, दूसरा नहीं तरता।

प्रश्न—कुछ लोग कहते हैं कि उपवासादिक व्रत करके भूखा रहने से भी पुरुष संसार से तर जाता है सो कहाँ तक ठीक है?

उत्तर—नहीं "भुक्खयां भुक्ख न उतरी जेवंनापुरीयां भार"

इस तुक में प्रथम भुख पद का अर्थ भूख है और दूसरे भुख पद का अर्थ विषयवासना है। तब ऐसा अर्थ हुआ भुखयां भूखे रहने से अर्थात् निराहार व्रतों के करने से भुख न उतरी, विषयों की वासना-

रूपी भूख दूर नहीं होती है। "जे बंनापुरीयां भार" यदि भूख के पूरे भारों को बाँध लेवें अर्थात् बरसों तक भी निराहार व्रतों को करता रहे, तब भी विषयों में तृष्णारूपी भूख कदापि दूर नहीं होती। इसी वार्ता को गीता में भी कहा है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्यं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

निराहार व्रत के रखनेवाले पुरुष के भी इंद्रिय विषयों से निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उसके चित्त का जो विषयों में राग है, वह मन के भीतर से कदापि निवृत्त नहीं होता; किंतु उसका भीतर से विषयों में राग बनाही रहता है। वह व्रत के पारणकाल को देखता रहता है। गुरुजी ने ठीक कहा है, भूखे रहने से विषयों में तृष्णारूपी भूख दूर नहीं होती है। अथवा दोनों भुख शब्दों का अर्थ कामना और तृष्णा दोनों एकही अर्थ के वाचक हैं अर्थात् पर्याय शब्द हैं। भोगों की कामना करने से भोगों में कामनारूपी तृष्णा कदापि दूर नहीं होती है, यदि कामना के पूरे भारों को भी बाँध लें अर्थात् अनंत कामना को भी कर लें, तब भी वह दूर नहीं होती। इसी अर्थ को श्रुति भी कहती है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥

अर्थ—भोगों की जो इच्छा है, सो भोगों के भोगने से दूर नहीं होती है। जैसे अग्नि में हवि डालने से अग्नि और वृद्धि को प्राप्त होती है वैसे ही भोगों में इच्छा करने से भोगों की तृष्णा और वृद्धि को प्राप्त होती है, कदापि शांति नहीं होती। तृष्णा पर ही दृष्टांत के दिखाते हैं। एक नगर में एक ग़रीब ब्राह्मण रहता था। उसके घर में एक कन्या विवाह करने के योग्य हो गई, तब उससे स्त्री ने कहा, "कहीं जाकर कुछ द्रव्य लाओ, जो कन्या का विवाह हो जावे" तब वह ब्राह्मण राजा से जाकर कहने लगा, "हमको थोड़ा सा द्रव्य दीजिये" राजा ने पूछा "क्या करोगे?" ब्राह्मण ने कहा, "कन्या

की शादी करेंगे" राजा ने खजानची से कहा, "सूर्य के उदय होने से लेकर सूर्य के अस्त होने तक जितना द्रव्य यह ब्राह्मण खज़ाने से ले जा सके ले जाने दो", रोकना नहीं। सूर्य के अस्त होने के पीछे फिर कुछ भी न ले जाने पावे। ब्राह्मण सवेरे खज़ाने में जाकर द्रव्य को ढोने लगा और दिन भर ढोता रहा, जब थोड़ा सा दिन रहा तब ब्राह्मण दो कंबल ले गया। दो गठरियाँ बाँधकर एक को धर दिया और एक को उठा लाया। जब दूसरी को लेने गया, तब इतने में सूर्य अस्त हो गया। ब्राह्मण जब गठरी उठाने लगा, तब खज़ानची ने गठरी पकड़ ली और कहा, "सूर्य अस्त हो गया है; अब राजा का हुकुम नहीं है" ब्राह्मण ने कहा, "मैंने सूर्य रहते ही यह गठर बाँधी थी।" दोनों झगड़ते २ राजा के पास गये। राजा ने कहा "देवता तुम तो पहले थोड़ा सा द्रव्य माँगते थे, जब तुमको बहुत मिला, तब भी तुम्हारी तृष्णा पूरी न हुई" अति तृष्णा करने से तो तृष्णा पूरी नहीं होती है। इसी पर गुरुजी ने भी कहा है कि तृष्णा करने से तृष्णा दूर नहीं होती है। अब तृष्णा के दोषों को दिखाते हैं—

यथा हि शृंगं गोकाले वर्धमानस्य वर्धते।
एवं तृष्णापि चित्तेन वर्धमानेन वर्धते॥

जैसे गौ के दोनों शृंग गौ के साथ ही साथ बढ़ते हैं, इसी प्रकार तृष्णा भी चित्त के साथ ही साथ बढ़ती है।

च्युता दन्ताः सितः केशाः दृङ्निरोधपदेपदे।
पातसज्जमिमं देहं तृष्णा साध्वी न मुञ्चति॥

वृद्धा अवस्था में जब दाँत टूट जाते हैं, केश श्वेत हो जाते हैं, नेत्रों की दृष्टि मंद हो जाती है, और चरण रखने से फिसलते जाते हैं, उस काल में भी यह साध्वी तृष्णा पुरुष का त्याग नहीं करती है।

तृष्णे देवि नमस्तुभ्यं धैर्यविप्लवकारिणि।
विष्णुस्त्रैलोक्यपूज्योऽपि यस्त्वया वामनीकृतः॥

हे तृष्णे ! हे देवि ! तुम्हारे प्रति मेरा नमस्कार है। विष्णु तीनों लोकों में पूज्य थे, तब भी तुम्हारी कृपा से वामन याने छोटे बन गये। तब इतर जीवों की कौन सी गिनती है। भाषा के कवियों ने भी कहा है—

दोहा

भार भरें खर सम फिरें, धावें श्वान समान।
सेवा श्वपच समान की, तृष्णा तउ न अघान ॥
आसन मारे का भयो, जो नहिं मरी दुरास।
ज्यों तेली के बैल को, घरहीं कोस पचास ॥

यह तृष्णा बड़ी दुष्ट है, बड़े २ महात्मा और पंडितों को सत्यमार्ग से गिरा देती है। बिना वैराग्य के इसकी शांति कदापि नहीं होती है। इस वास्ते तृष्णालु जीव कदापि तृष्णा करके शोकरूपी संसार से नहीं तर सक्ता। इसी पर गुरुजी ने कहा है तृष्णा करके तृष्णा कदापि शांत नहीं होती है, यदि लाखों दफा भी तृष्णा करता रहे।

प्रश्न—संसार में ज्ञानी लोग और पंडित लोग ही बड़े चतुर दिखाई पड़ते हैं और वे अपने को शोक से रहित मानते हैं। इसी से जाना जाता है कि चतुराई करने से पुरुष संसाररूपी शोक से तर जाता है।

उत्तर—"सहंस स्याणप लख्खहोय तां इकनचलैनाल"

अर्थ—स्याणप नाम चतुराई का है यदि लाखों चतुराइयों को पुरुष जानता हो। "तांइकनचलैनाल" तब भी मरती दफा एक चतुराई भी काम नहीं आती। जो वस्तु मरती दफा पुरुष के साथ रहती है वही जन्मांतर में सुखदुःख का हेतु होती है। धर्माधर्मादिक ही पुरुष के साथ रहते हैं। ये ही जन्मांतर में भी सुख दुःख का हेतु होते हैं। चतुराइयाँ तो सब व्यर्थ हैं। संसाररूपी शोक से पुरुष को यह कदापि छुड़ा नहीं सक्ती हैं। लुकमान हकीम वगैरह बड़े चतुर हुए हैं। उनकी भी मरणकाल में किसी चतुराई ने सहायता नहीं की

है। चतुराई से संसाररूपी शोक से छूटना कदापि नहीं हो सक्ता है। प्रारब्ध, कर्म-भोग भी चतुराइयों से हटाया नहीं जाता है।

न भूतपूर्वं न कदापि दृष्टं न श्रूयते हेमकुरङ्गवार्त्ता।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः॥

ब्रह्मा की सृष्टि में पूर्व स्वर्ण का मृग उत्पन्न भी नहीं हुआ और संसार में कभी किसी ने स्वर्ण का मृग देखा भी नहीं है और स्वर्ण के मृग की कदापि किसी ने वार्त्ता भी नहीं सुनी है, तब भी रामचंद्रजी दिनों के फेर से मृग के पीछे दौड़ पड़े। इसी से सिद्ध होता है, जब कि दिन बुरे आते हैं, तब पुरुष की बुद्धि भी विपरीत हो जाती है। जब प्रारब्ध-भोग ही चतुराई से नहीं हट सक्ता है, तब फिर संसाररूपी शोक कैसे दूर हो सक्ता है? कदापि दूर नहीं हो सक्ता है।

प्रश्न—फिर संसाररूपी शोक कैसे दूर हो सक्ता है?

उत्तर—सत्य का ग्रहण करने से और झूठ का त्याग करने से संसाररूपी शोक दूर हो सक्ता है।

प्रश्न—"किंव सच्यारा होईएकिव कूडै तुटै पाल"

अर्थ—सच्यारा का अर्थ सत्यवक्ता है अर्थात् सत्यवक्ता पुरुष कैसे होय? पाल का अर्थ परदा है। दिलों में जो कूड़ याने झूठ का परदा पड़ा है, वह कैसे टूटै? पुरुष सत्यवक्ता कैसे हो और झूठ का परदा कैसे टूटे, इससे क्या उपाय है? दूसरा अर्थ। सच्यारा नाम उसका है, जो अपने वचन पालता है। प्रथम जीव अपने कर्मों के अनुसार पिता के वीर्य द्वारा माता के गर्भ में प्रवेश करता है। पिता का वीर्य और माता के रज से इसके शरीर की उत्पत्ति होती है। जिस काल में पिता का वीर्य और माता का रज दोनों मिल जाते हैं, तब एक दिन तो वह कीच की तरह होकर रहते हैं। फिर पाँच दिन में फेनरूप हो जाता है। फिर चौदह दिन तक मांस का एक पिंड सा बन जाता है। पचीस दिन में बीज की तरह उसमें अंकुर उत्पन्न होते हैं। फिर एक महीने में उसी पिंड से ग्रीवा, शिर, स्कंध, पृष्ठ, उदर बनते

हैं। फिर दो महीना में क्रम से और अंग बन जाते हैं। तीसरे महीने में उसमें सब जोड़ बन जाते हैं। चतुर्थ महीने में अँगुली निकल आती हैं। फिर पाँचवें महीने में मुख और नासिका निकल आती हैं। छठे महीने में गुदा शिश्नादिकों के छिद्र निकल आते हैं। तब सब अंगों से इसका शरीर पूर्ण होजाता है और नाभी की नाड़ द्वारा माता के मासिक रुधिर से इसके शरीर की पुष्टि होती है। सातवें महीने में मूर्च्छा रहता है। आठवें महीने में इसको चेतनता होती है। तब बड़ा दुःखी होता है और अनेक जन्मों के दुःख इसको याद आते हैं। गर्भोपनिषद् में गर्भ के दुःखों का इस प्रकार निरूपण किया है—

विष्ठामूत्रगृहे वासात्पूयाऽसृक्रचितान्तरे।
कफपित्तादिचित्राढ्ये मांसभित्तौ सुदुःसहे॥
कृमिसर्पशताकीर्णे व्याधिवृश्चिकपूरिते।
मातृप्राणमहावातविनिःसारितबन्धने॥

वह गर्भाशय जिसमें जीव रहता है कैसा है? विष्ठा और मूत्र का मानो घर है और पूय तथा रुधिर करके भीतर से लिपा हुआ है। कफ और पित्त की उसमें चित्रकारी करी हुई है। उसके चारों ओर मांस की एक दीवार बनी हुई है। ऐसे गर्भाशय में जीव का निवास होता है। तब जीव बड़ा दुःखी होता है और कहता है—

पूर्वं योनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।
आहारा विविधा भुक्ता पीता नानाविधस्तनाः॥
जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुनः पुनः।
यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम्॥
एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलभोगिनः।
अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम्॥
यदि योन्याः प्रमुच्येहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्॥

जीव कहता है, पूर्व अनेक जन्मों में मैंने हजारों माताओं की योनि देखी, याने उनसे मैं उत्पन्न हुआ। मैंने अनेक प्रकार के भोजन भी किए और अनेक माताओं के स्तनों को भी पान किया। कई बार जन्मा और मरा। जो कुछ कि मैंने संबंधियों के लिये शुभ या अशुभ कर्म किये थे, उन कर्मों के फल को वे भोगकर चले गये। अब मैं अकेला गर्भ की अग्नि की दाह को प्राप्त होरहा हूँ। अहो, मैं इस दुःख-रूपी समुद्र में डूबा हुआ अपने छूटने के उपाय को नहीं देखता हूँ। यदि अबकी बार मैं योनि से छूटूँगा, तो परमेश्वर की शरण को प्राप्त हूँगा। वह परमेश्वर कैसा है ? अशुभ कर्मों के फल को क्षय करनेवाला है और शुभ मुक्ति को देनेवाला है। भविष्यपुराण में भी गर्भ के दुःखों को दिखलाया है ॥

यथागिरिवराक्रान्तः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति।
तथा जरायुणा देही दुःखे तिष्ठति चेष्टतः ॥
पतितः सागरे यद्वद्दुःखमास्ते समाकुलः।
गर्भोदकेन सिक्ताङ्गस्तथास्ते व्याकुलः पुमान् ॥
लोहकुम्भे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना।
तथा स पच्यते जन्तुर्गर्भस्थः पीडितोदरः ॥
एवं गर्भदुःखेन महता परिपीडितः।
जीवः कर्मवशादास्ते मोक्षोपायं विचिन्तयन् ॥

जैसे कोई भारी पर्वत के नीचे दबाया हुआ दुःखी होता है, वैसे ही गर्भ में जेर से कसा हुआ जीव बड़े दुःख से रहता है। जैसे समुद्र में डूबा हुआ पुरुष बड़ा दुःखी होता है, व्याकुल होता है, वैसे ही गर्भ के उदक से सिंचित-अंग पुरुष भी बड़ा व्याकुल होकर रहता है। जैसे अग्नि के कुंड में लोहा तपाया जाता है, वैसे ही गर्भ की अग्नि से जीव भी पकाया जाता है। इस प्रकार गर्भ के दुःखों से पीड़ित हुआ जीव कर्मों के वश से फिर अपने मोक्ष

के उपाय का चिंतन करता है। अर्थात् उस समय जीव ईश्वर से करार करता है कि यदि इस बार मैं योनि से छूटूँगा, तो हे ईश्वर ! अवश्य तुम्हारी शरण को प्राप्त हूँगा। जो जीव उस गर्भवाले करार को पूरा करता है, वही सच्यारा है याने अपने वचन को पालनेवाला है। उसके हृदय में जो झूठ का परदा है, वह टूट जाता है और जो गर्भवाले करार को पूरा नहीं करते हैं, वे सच्यार कदापि नहीं हो सके हैं। भाषा में भी एक कवि ने कहा है—

सवैया

दश मास रह्यो जब गर्भ महाँ तबहीं प्रभु से तुम कौल किया।
मैं बाहर ह्वै हरिभक्ति करों तेहि कारण तोहिं निकाल दिया॥
इत आय जगत् में भूलि रह्यो तेहि कारण लोक भये दुखिया।
कवि दील हरे मन चेत करो भज राम सिया जिन जन्म दिया॥

तात्पर्य यह है जो गर्भवाले करार को पूरा करता है, वही मनुष्य कहा जाता है; क्योंकि मनुष्य का लक्षण उसी में घटता है।

मनोरपत्यं कर्माधिकारी विशेषज्ञानवान् वचनपालको मनुष्यः।

जो मनु की संतान हो, कर्मों में अधिकारवाला हो, विशेष ज्ञान-वाला भी हो तथा वचन पालनेवाला भी हो, उसी का नाम मनुष्य है। सब पशु-पक्षी आदि मनु से ही उत्पन्न हुए हैं, तथापि कर्मों में उनका अधिकार नहीं है और विशेष ज्ञानवाले भी नहीं हैं; किंतु *सामान्य ज्ञान खाना सोना आदि है—उसीवाले हैं। इस वास्ते उनमें* यह लक्षण नहीं होता है। सभी मनुष्य मनु से ही उत्पन्न हुए हैं तथापि सब अपने वचन का पालन नहीं करते हैं। इस वास्ते परमार्थ दृष्टि को लेकर सभी मनुष्य नहीं हो सके हैं। व्यवहार में भी जो अपने वचन को पालता है, वह व्यवहार में मनुष्य कहा जाता है। जो व्यवहार में भी अपने वचन का पालन नहीं करता है, वह नाम मात्र का मनुष्य है। वास्तव में वह पशु-तुल्य ही है। जैसे एक बनिये ने

किसी ग्राम में जाकर विवाह किया और वहाँ से स्त्री लेकर जब चला तब रास्ते में उसको पहली मंज़िल पर रात्रि व्यतीत हुई। सवेरे जब वहाँ से चलने लगा, तब उसने अपनी स्त्री से कहा, "हमारी तुम्हारी गुज़र कैसे होगी?" उसने कहा, "क्यों?" तब बनिये ने कहा, "थोड़ा २ मैं सब नशा करता हूँ। स्त्री ने कहा, ख़ैर नशे भी एक भोग के साधन हैं। मैं गुज़र कर लूँगी।" फिर दूसरी मंज़िल से जब चलने लगे तब बनियाँ ने कहा, "मेरे में एक और भी ऐब है, तब मेरी तुम्हारे साथ गुज़र कैसे होगी?" स्त्री ने कहा, "वह कौन सा ऐब है?" बनिये ने कहा, "मैं कभी २ जुआ भी खेलता हूँ?" स्त्री ने कहा, "ख़ैर मैं गुज़र कर लूँगी।" जब तीसरी मंज़िल से चलने लगे तब बनियाँ ने कहा, "मेरे में एक और भी ऐब है?" स्त्री ने पूछा, "वह कौन ऐब है?" बनिये ने कहा, "मैं कहता कुछ हूँ और करता कुछ हूँ। मेरी जबान का भी कुछ ठिकाना नहीं है।" इतना सुनते ही स्त्री पालकी से उतर खड़ी हुई और कहने लगी, "मैं तुम्हारे संग नहीं जाऊँगी। जिसकी जबान का ठिकाना नहीं है, वह आदमी कैसा? वह तो पशु है। मैं पशु के साथ नहीं जाऊँगी।" मनुष्य का विवाह मनुष्य के साथ शोभा पाता है, पशु के साथ मनुष्य का विवाह नहीं शोभा पाता। इसलिये मैं आपके साथ कदापि नहीं जाऊँगी।" आख़िर वह अपने घर को लौट गई। इस दृष्टांत से यह सिद्ध हुआ कि जो पुरुष व्यवहार में भी अपने वचन का पालन नहीं करता है, कहता और है और करता और है, किसी को जो देने को कहता है, उसको नहीं देता, फिर जाता है, वह व्यवहार-दृष्टि से भी मनुष्य नहीं हो सक्ता है।

अब परमार्थ-दृष्टि से मनुष्यपने को दिखाते हैं। किसी नगर के बाहर जंगल में एक महात्मा कुटी बना कर रहते थे। रोज सवेरे वह नगर में भिक्षा माँगने को जाते थे। रास्ते में एक वेश्या का मकान पड़ता था। जब वहाँ से होकर जाते, तब वेश्या उनसे पूछती, "आप स्त्री हो या मर्द।" तब वह कह देते, "मैं इसका जवाब फिर दूँगा।" इसी तरह वह

वेश्या नित्यही उनसे पूछती और वह कह देते, "इसका उत्तर हम फिर देंगे।" इसी तरह पूछते पाछते बहुत काल बीत गया और एक दिन वह महात्मा मर गये। नगर में उनके मरने की खबर पहुँची, तो बहुत से लोग उनके दर्शन को गये। उस वेश्या ने भी सुना। और वह भी गई। लोगों की बड़ी भीड़ लगी थी। वहाँ जाकर वह उनके मुर्दे से कहने लगी, "हमारे सवाल का जवाब दिये बिना आप मर गये। आपने कहा था हम उत्तर फिर देंगे। महात्मा तो असत्यवादी नहीं होते। जल्दी बताइए आप मर्द हैं या औरत ?" जब वेश्या ने ऐसा कहा, तब महात्मा उठकर अपनी छाती पर हाथ ठोक कर तीन बार उन्होंने कहा, "हम मर्द हैं ३।" तब वेश्या ने कहा, "आप तो पहले ही जानते थे कि आप मर्द हैं, फिर जीते जी क्यों न कहा जो अब मर कर कहते हैं हम मर्द हैं ?" महात्मा ने कहा, "मनुष्य.जन्म लेकर केवल बाहर के चिह्नों से आदमी मर्द नहीं हो सक्ता है। जब तक की वह गर्भवाले करार को पूरा न करे। यदि हम पहले से ही बाहर के चिह्नों से अपने को मर्द बता देते और फिर बीच में कोई विघ्न पड़ जाता तब हम मर्द कैसे हो सके; किंतु कदापि न होते। अब तो हमको और जीना है नहीं और निर्विघ्न हमारी आयु व्यतीत हो गई। इस वास्ते अब हम कह सके हैं कि हम मर्द हैं।" इतना कह कर महात्मा फिर लेटगये। तात्पर्य यह है, जो गर्भवाले करार को पूरा करता है, परमार्थ-दृष्टि से वही मनुष्य कहलाता है। सो गर्भवाले करार को पूरा करनेवाला आदमी ही सच्यार कहलाता है।

सच्यार किस तरह से अर्थात् कौन उपाय से परमेश्वर के सामने होना चाहिये और किस उपाय करके कूड़ की याने शोकरूपी संसार की पाल याने पड़दा टूट जाय, सो उपाय कहना चाहिये ?

उत्तर मू०—हुकम रजाई चलणा नानक लिख्या नालं।

टी०—हुकम का अर्थ श्रुति स्मृति है। सो परमेश्वर का हुकम, जो

श्रुति स्मृति है, उनके अनुसार चलने से ही पुरुष परमेश्वर के आगे सच्यार हो जाता है और संसार शोकरुपी जो झूठी पाल है याने पँड़दा है वह भी टूट जाता है।

प्र०—वह परमेश्वर का हुक्मरूप जो श्रुति स्मृति हैं उनमें मनुष्य के लिये क्या करना लिखा है ?

उत्तर श्रुतिः—सत्यं वद धर्म्मं चर स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

हे जीव ! तू सत्य बोल, धर्म का आचरण कर, और वेद के अध्ययन में प्रमाद मत कर।

देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

देवकार्य और पितृकार्य में प्रमाद मत कर।

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव।

माता को, पिता को, आचार्य को और अतिथि को देवतारूप जान।

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।

जो निर्दोष कर्म हैं, वेही कर्म सेवन करने योग्य हैं। उनसे भिन्न कर्म सेवन करने योग्य नहीं हैं। इस तरह के उपदेशों को जो श्रुतियाँ कहती हैं, उनके अनुसार चलने से ही पुरुष सच्यार होता है। स्मृतियाँ भी ऐसेही उपदेशों को कहती हैं। सो भी दिखाते हैं।

विद्यामुपार्जयेद्बाले धनं दारांश्च यौवने।
प्रौढे धर्म्याणि कर्माणि चतुर्थे प्रव्रजेत्सुधीः॥

बाल्यावस्था में विद्या का उपार्जन करे, युवावस्था में धन का और दारा का उपार्जन करे, धर्म-संबंधी कर्मों को दृढ़ करे, फिर वृद्धावस्था में संन्यास को ग्रहण करे।

और भी बहुत से नीति वाक्य कहे हैं।

पात्रे त्यागी गुणे रागी भोगी परिजनैः सह ।
शास्त्रे बोद्धा रणे योद्धा पुरुषः पञ्चलक्षणः ॥

सुपात्र को दान देना, गुणी पुरुष के साथ प्रेम रखना, संबंधियों के साथ मिल कर ऐश्वर्य को भोगना, शास्त्र में सुबोध होना और रण में शूर होना, ये पाँच लक्षण जिसमें रहते हैं वही पुरुष कहलाता है।

इस तरह के वाक्य पुरुष के व्यवहार के सुधारनेवाले हैं। अब परमार्थ के सुधारनेवाले वाक्यों को दिखलाते हैं—

कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले
समागत्य वक्तीति लोकाः शृणुध्वम् ।
परस्त्री परस्वस्य वांछां त्यजध्वं
भजध्वं रमाकान्तपादारविन्दम् ।'

जिस काल में वृद्धावस्था आती है तब प्रथम कानों के नीचे के बाल सुफेद हो जाते हैं। वही मानों यमराज की दूती है। वह मृत्यु का संदेशा लाकर कान में कहती है, हे लोगो ! तुम श्रवण करो, अब तुमको पराई स्त्री, पराये धन की इच्छा छोड़ कर, रमाकांत जो विष्णु हैं, उनका भजन करना चाहिये।

अरे भज हरेर्नाम क्षेम धाम क्षणे क्षणे ।
बहिस्सरति निःश्वासो विश्वासः कः प्रवर्तते ॥

अरे जीव हरि के नाम को भज। वह नाम कैसा है ? मानों वह कल्याण का एक मंदिर है। जब श्वास बाहर निकल जाते हैं तब उनके भीतर आने का कौन विश्वास है। आवें या न आवें। इस वास्ते प्रत्येक क्षण उसके नाम का स्मरण कर।

इसी पर एक दृष्टांत कहते हैं—एक किसान का खेत नदी के किनारे पर था। वह अपने खेत की रक्षा करने के लिये वहीं पर कुटी बना कर रहता था। एक दिन वह नदी के किनारे दिशा फिरने

गया। वहाँ पर नदी का किनारा गिरा था। उसमें लालों की भरी हुई एक हाँडी भी गिरी पड़ी थी। उस किसान ने उनको पत्थर जान कर उठा लिया और आकर अपने मचान पर उनको धर दिया। जब चिड़ियाँ खेत खाने के लिये आवें, तब वह एक लाल लेकर उनको मारे। वह लाल तो नदी में जा गिरे और चिड़ियाँ उड़ जायँ। इसी तरह उसने सब लाल नदी में फेंक दिए। एक लाल जो उसका लड़का खेलता था बच गया। उसकी स्त्री लड़के को और उसके खेलने के लाल को लेकर घर में चली गई। जब वह रसोई बनाने चली तो देखा कि घर में न नमक है और न पास पैसा ही। वह उस लाल को सुंदर पत्थर जान कर उसके बदले में बनिये के पास नमक लेने गई। बनिये ने कहा मैं इसके बदले नमक नहीं दूंगा। वहाँ पर एक जौहरी भी खड़ा था। उसने लाल को ले लिया और बनिये से उसे एक पैसे का नमक दिलवा कर कहा कि इसका बाकी दाम तुम्हारे घर भिजवा दिया जावेगा। वह नमक लेकर घर चली आई।

दूसरे दिन जौहरी ने एक लाख रुपया उस लाल का दाम उसके घर भेज दिया। स्त्री ने उससे एक बड़ा भारी मकान बनवाया। विषय भोग की सब सामग्री उसमें जमा करके पति को लेकर उस घर में गई। उसके पति ने पूछा यह मकान किसका है? स्त्री ने कहा तुम्हारा है। उसने पूछा कैसे? तब स्त्रीने कहा कि जो पत्थर तुमने नदी में फेंक दिए थे उनमें से एक बचा था। उसीसे यह सब सामान आया है। यह सुनते ही वह बेहोश हो गया कि मैंने मुफ़्त में ही सब लाल फेंक दिए। तब स्त्री उसपर पानी छींट कर उसे होश में लाई और कहा, जो गए सो गए। जो एक बच गया है इसी के सुख का अनुभव करो। यह कुछ कमती नहीं है।

यह तो दृष्टांत है। पूर्व जन्मों में जो इसको मनुष्य शरीर मिले थे उनको तो इसने विषयरूपी नदी में व्यर्थ फेंक दिया अथवा मनुष्य-शरीर में जो श्वासरूपी लाल चले गए हैं उनको तो विषयरूपी नदी

में व्यर्थ बहा दिया; परंतु जो बाकी बचे हुए श्वासरूपी लाल हैं वे न बहने पायें, हरएक श्वास में हरि का नाम लेकर इन्हीं का आनंद लूटो। इसी पर कहा है प्रत्येक क्षण में हरि के नाम का उच्चारण करे। तभी परमेश्वर के आगे सच्चारा हो जाय और शोक मोह की झूठी पाल भी टूट जायगी।

प्रश्न—जब परमेश्वर के हुक्म से श्वास में नाम का ही स्मरण करता रहेगा तो इसके शरीर की यात्रा कैसे होगी? बिना शरीर के निर्वाह के यह किसी प्रकार से जी भी नहीं सक्ता है?

उत्तर मू०—नानक लिख्या नाल।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं कि यह तो जन्मकाल में ही परमेश्वर ने इसके साथ लिख दिया है। शरीर के निर्वाह की चिंता करनी व्यर्थ है। नीति में भी यही बात लिखी है।

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥

आयु, कर्म, धन, विद्या और मरण इन पाँचों को विधाता ने गर्भ में स्थित जीव के मस्तक पर लिख दिया है। इनमें से कोई भी अन्यथा नहीं होता है। इनकी चिंता करनी व्यर्थ है।

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि तं लङ्घयितुं न शक्तः।
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्॥

जो कुछ मनुष्यों के प्रारब्ध में विधाता ने सुख दुःखादि उत्पत्तिकाल में लिख दिया है वही उनको मिलता है। उसके हटाने में ब्रह्मा भी समर्थ नहीं है। इस कारण शरीर के भोग के लिये चिंता करनी व्यर्थ है। जिसका जो अपना भोग है, वह दूसरे का कदापि नहीं हो सक्ता है।

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
प्रचलति यदि पृथ्वी कम्पते नागलोकः
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः
नहि चलति नराणां भाविनी कर्मरेखा ॥

सूर्य यदि पश्चिम दिशा में उदय हो, नागलोक हिलने लगे, पृथ्वी चलायमान हो, सुमेरु भी अपनी मर्यादा छोड़ दे और वह्नि भी शीतल हो जाय तब भी पुरुषों की प्रारब्ध कर्म की रेखा कदापि अन्यथा नहीं हो सकी है।

अवश्यम्भावि भावानां प्रतीकारो यदा भवेत्।
तदा न लिप्यते दुःखं नलरामयुधिष्ठिराः ॥

यदि प्रारब्ध का लिखा मिट सकता, तो राजा नल, श्रीरामचंद्र और युधिष्ठिर दुःख से कदापि लिपायमान न होते। पर ऐसा नहीं हुआ। इसी से सिद्ध होता है कि प्रारब्ध की रेखा अमिट है।

जिस काल में श्रीरामचंद्रजी समुद्र पर पुल बाँधने लगे हैं और समुद्र में पत्थर तरने लगे हैं तब लक्ष्मणजी से रामजी कहते हैं।

पश्य लक्ष्मण कालस्य प्रतिकूलानुकूलते।
वनवासे पिताहेतोः समुद्रतरणे शिला ॥

हे लक्ष्मण! काल की अनुकूलता और प्रतिकूलता को तुम देखो जब कि हमारे दिन बुरे आये तब वनवास देने में पिता ही कारण हो गये। अब जो हमारे दिन अच्छे आये हैं तब समुद्र पर पत्थर भी तरने लग गये हैं। ये सब प्रारब्ध कर्म का ही हेर फेर है। पुरुष के अधीन कुछ भी नहीं है। अध्यात्मरामायण में भी कहा है—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेखा।
अहं करोमीति वृथाऽभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥

इस जीव को सुख दुःख देनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। जो

कहता है दूसरा कोई मेरे को सुख या दुःख देता है, यह उसकी कुबुद्धि है। जो कहता है मैं ही सब कर्ता हूँ, ये भी उसकी कुबुद्धि है। अपने ही जन्मान्तर के कर्मों से संपूर्ण जगत् गूथां हुआ है।

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
द्वयमेतद्धि जन्तूनामलंघ्यं दिनरात्रिवत्॥

सुख के बाद दुःख आता है और दुःख के बाद सुख। ये दोनों जीवों को रात्रि दिन की तरह अलंघ्य हैं। याने हटाये नहीं जाते हैं।

इन वाक्यों से यह सचित होता है शरीर का भोग तो आपसे आप ही मिलता रहता है। इसकी चिंता करनी व्यर्थ है। परमेश्वर के नाम का प्रत्येक श्वास में उचारण करता रहे; क्योंकि गुरुजी ने जो कहा है 'लिख्या नाल' याने शरीर का भोग तो जन्मकाल में ही परमेश्वर ने लिख दिया है। उसकी चिंता व्यर्थ है।

फल—रविवार से दस दिन तक सूर्य के सामने एक हजार रोज जप करे, तो चोर उसके माल को न छुवे।

हुकमी होव न आकार हुकम न कहिआजाई।
हुकमी होव न जीअ हुकम मिलै वडयाई॥
हुकमी उत्तम नीच हुकमि लिख दुःख सुखपाईअहि।
इकना हुकमी बखसीस इक हुकमी सदा भवाईअहि॥
हुकमे अन्दर सभको बाहर हुकम न कोइ।
नानक हुकमै जे बुझै तहौ मै कहे न कोइ॥

पूर्ववाली तुक में ईश्वर के नाम का स्मरण ही संसाररूपी शोक को दूर करनेवाला कहा है। अब इस तुक में परमेश्वर की शक्ति का निरूपण करते हैं।

मू०—हुकमी होव न आकार ।

टी०—हुकम नाम इच्छा का है और इच्छावाले का नाम हुकमी है । सो सृष्टि आदि काल में परमेश्वर की इच्छा से ही सब जीवों के आकार होते हैं । इसी अर्थ को श्रुति भी कहती है ।

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन्मिषत् । स ईक्षत लोकानुसृजा स इमाँल्लोकानसृजत् ॥

जगत् की उत्पत्ति के पूर्व ईश्वर ही एक आत्मा था । उसने अपनी माया शक्ति से जगत् के रचने की इच्छा की । उस परमात्मा ने इन लोकों की रचना की ।

जिस अर्थ को वेद ने कहा है उसी अर्थ को गुरुजी ने भी कहा है । इसी से साबित होता है कि गुरु जी का सिद्धांत, वेद के विरुद्ध नहीं है ।

प्र०—यदि परमेश्वर की इच्छा से ही जीवों की उत्पत्ति मानी जायगी, तो परमेश्वर में अन्यायकर्त्तादि दोष आवेंगे; क्योंकि किसी को उसने जन्म से ही अंधा और किसी को काना बनाया है, किसी को रोगी, किसी को कोढी और किसी को अत्यंत दुःखी बनाया है । इन सभों ने परमेश्वर का क्या कसूर किया था ? किसी को नीरोग, किसी को धनी, किसी को राजा और किसी को विद्वान् बनाया है । इन्होंने परमेश्वर पर कौन सा उपकार किया था ? उत्पत्ति से पूर्व तो कोई था नहीं, जो उपकार अपकार करता । फिर परमेश्वर न्यायकारी कैसे हो सक्ता है ? कदापि नहीं हो सक्ता है ।

उ०—जीव सब अनादि हैं । उनके कर्म भी सब अनादि हैं । सृष्टि के आदि काल से ब्रह्मा के दिन को आदि काल कहा है; क्योंकि ब्रह्मा के दिन में जीवों की सृष्टि होती है और ब्रह्मा की रात्रि में जीवों की प्रलय होती है । आकार पद करके जीवों के स्थूल शरीरों की उत्पत्ति कही है । प्रलयकाल में सब जीव अपने अपने कर्मों और

संस्कारों के सहित माया में ही लीन होकर रहते हैं। जब उनके कर्म फल देने को उदय होते हैं, तब परमेश्वर अपनी इच्छारूपी माया करके जीवों के कर्मों के अनुसार जीवों के स्थूल शरीररूपी आकारों को और स्थूल भूतों को उत्पन्न कर देता है। इस वास्ते ईश्वर में कोई भी दोष नहीं आता है।

प्र०--ईश्वर की इच्छारूपी माया का स्वरूप क्या है?

उ०। मू०—हुकुम न कहा जाई।

टी०--परमेश्वर की इच्छारूपी माया का स्वरूप कहा नहीं जाता है। अर्थात् कहने में नहीं आता है। यदि सत्य कहा जाय; तो उसकी निवृत्ति न हो। और निवृत्ति होती है इस वास्ते वह सत्य नहीं कही जाती और प्रतीति होती है। इस वास्ते असत्य भी कहा नहीं जाता; क्योंकि असत्य हो तब उसकी प्रतीति न होनी चाहिये और प्रतीति होती है इस वास्ते असत्य भी कहा नहीं जाता। सत्य, असत्य उभयरूपी भी नहीं कही जाती; क्योंकि दो विरोधी धर्म एक में रह नहीं सकें। इसी वास्ते गुरुजी ने कहा है "हुकुम न कहा जाई" तिस की माया का स्वरूप नहीं कहा जाता है। बड़े बड़ों को माया मोह लेती है। इसी संबंध में एक दृष्टांत भी है।

एक दिन श्रीकृष्णचंद्रजी और अर्जुन दोनों यमुना के किनारे खड़े थे। अर्जुन जब जल में स्नान करने के लिये खड़ा हुआ तब उसने भगवान् से कहा कि मुझे अपनी माया दिखलाओ। तब भगवान् ने कहा, "गोता लगाओ। तब तुमको माया दिखाई पड़ेगी।" तब अर्जुन ने गोता लगाया तब पाताल में जा निकला। वहाँ का राजा मर गया था। लोगों ने अर्जुन को वहाँ का राजा बना दिया। वहाँ अर्जुन बहुत काल तक रानी के साथ आनंद भोगता रहा। एक दिन रानी मर गई। अर्जुन बड़ा दुःखी हुआ। रानी के साथ सती होने को तैयार हुआ। तब लोगों ने अर्जुन को बहुत समझाया; परंतु अर्जुन ने एक न माना। तब लोगों ने कहा सती होने के पहले स्नान करना होता है। अर्जुन

ने जब स्नान करने के लिये जल में गोता लगाया तब जहाँ पर यमुना के किनारे कृष्णजी खड़े थे वहाँ पर अर्जुन निकले। तब भगवान् ने पूछा, "माया को देखा ?" अर्जुन लज्जित हो गया। अब विचार करिये, वहाँ पर यमुना के किनारे पर तो थोड़ी देरी हुई और अर्जुन को जल में सैकड़ों बरस बीत गये। कोई माया का क्या विचार कर सक्ता है ? इसी वास्ते गुरुजी ने भी कहा है और श्रुति भी कहती है--

परास्य शक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।

परमेश्वर की माया शक्ति नाना प्रकार की शक्तियोंवाली है। वह स्वभाव से ही क्रिया और बलवाली है। उसका स्वरूप नहीं कहा जाता है।

प्र०--प्रलयकाल में सब जीव सूक्ष्मरूप होकर माया में रहते हैं, फिर उस माया से किस प्रकार जीवों के स्थूल शरीर और स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं ?

उ०--तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्॥

श्रुतिः-माया-विशिष्ट ईश्वर प्रथम ज्ञानरूपी तप करके वृद्धि को प्राप्त होता है। तब उससे अव्याकृत जगत् का साधारण कारण उत्पन्न होता है। उससे हिरण्यगर्भ होता है। उससे अहंकार उत्पन्न होता है उससे आकाशादि उत्पन्न होते हैं। उनसे फिर सप्तलोक उत्पन्न होते हैं। उन लोकों में अपने अपने कर्मों के अनुसार जीव उत्पन्न होते हैं। इसी श्रुति के अर्थ को गुरुजी ने भी कहा है।

मू०--हुकमी होवन जीअ।

टी०--अर्थात् परमेश्वर की इच्छा से अपने अपने कर्मों के अनुसार जीव भी सब उत्पन्न होते हैं।

मू०--हुकम मिलै वडआई।

टी०--परमेश्वर के हुकम से ही संसार में पुरुषों को बड़ाई याने

यश मिलता है। तात्पर्य यह है कि जिन पुरुषों ने पूर्व जन्म में शुभ कर्म किये हैं उनको कर्मों के अनुसार ही परमेश्वर की इच्छा से बड़ाई मिलती है। संसार में बहुत से लोग अच्छे अच्छे कामों को करते हैं, तब भी यश किसी एक पुरुष को ही मिलता है। सबको नहीं मिलता।

मत्स्यादयोऽपि जानन्ति नीरक्षीरविवेचनम्।
कीर्तिस्तत्र हंसस्य यशः पुण्यैरवाप्यते॥

मछली आदि भी दूध और पानी का जुदा करना जानती हैं। फिर भी संसार में दूध और पानी के जुदा करने का यश हंस को ही मिलता है। मछली आदि का कोई नाम भी नहीं लेता। इसी तरह संसार में अनेक आदमी अच्छे काम को करते हैं; परंतु यश किसी एक को ही मिलता है।

प्र०—बहुत से आदमी एक ही शुभ कर्म को करते हैं, पर यश सबको क्यों नहीं मिलता? इसमें क्या कारण है?

उ०—इसमें अहंकार का अभाव कारण है। अर्थात् जो अहंकार से रहित होकर श्रद्धा और नम्रता-पूर्वक अच्छा काम करता है उसी को बड़ाई याने यश मिलता है। जो अहंकार के सहित श्रद्धाहीन होकर काम करता है या केवल नाम के लिये ही करता है तो उसकी कोई भी बड़ाई नहीं करता। उसकी बड़ाई होने में परमेश्वर की भी इच्छा नहीं होती। गुरुजी ने भी ठीक कहा है "हुकम मिलै वडआई"।

मू०—हुकमी उत्तम नीच।

टी०—परमेश्वर की इच्छा से जन्मान्तर के कर्मानुसार जीव का उत्तम और नीच योनियों में जन्म होता है। कोई उत्तम योनि में उत्पन्न होकर नीच योनिवाले कर्म करके नीच योनि को प्राप्त होता है, कोई नीच कुल में उत्पन्न होकर उत्तम कर्म करके उत्तम योनि को प्राप्त होता है। जरासंध कंसादि उत्तम क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर नीच पदवी को प्राप्त हुए। विदुर, हनुमान्, जामवंत, सुग्रीवादि नीच कुलों में उत्पन्न

होकर उत्तम पदवियों को प्राप्त हो गये। कर्म ही सद्गति का कारण है। जाति आदि उत्तम पदवी के कारण नहीं हैं। इसी पर गुरुजी ने भी कहा है कि बहुत कर्मानुसार परमेश्वर की इच्छा से उत्तम और नीच पदवी को प्राप्त होते हैं।

मू०—हुकमि लिखि दुःखसुख पाईये।

टी०—हुकमी जो परमेश्वर उसने जन्मकाल में ही जीव के मस्तक पर जो लिख दिया है उसके अनुसार ही जीव दुःख और सुख को पाते हैं।

प्र०—यदि परमेश्वर जन्मकाल में ही किसी के मस्तक पर सुख और किसी को दुःख पाना लिखेगा, तो वह न्यायी कैसे हुआ?

उ०—परमेश्वर न्यायी है; क्योंकि वह जन्मान्तर के कर्मों के अनुसार ही जीवों के मस्तक पर सुख और दुःख का भोग लिख देता है। विना कर्मों के नहीं लिखता। यदि जन्मान्तर के कर्मों के विना ही लिखे, तो अन्यायी हो ऐसा तो नहीं है। इसी वास्ते वह न्यायकारी है। श्रुति भी इसी अर्थ को कहती है।

स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति।
तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते॥

जीव जैसी कामनावाला होता है, वैसा ही वह संकल्प करता है। जैसा संकल्प करता है, वैसे कर्म भी करता है। जैसे कर्म करता है, वैसे ही फल पाता है। पूर्वले कर्मों के अनुसार ही उत्तर जन्म में ईश्वर की इच्छा से जीव फल को प्राप्त होता है। स्मृति भी इसी अर्थ को कहती है।

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥

जैसे हजार गौओं में बछड़े को छोड़ दिया जाय, तो वह अपनी माता को चीन्ह लेता है। वैसे ही पूर्वले जन्मों में किए जो कर्म हैं, वे अपने ही कर्ता को प्राप्त होते हैं। दूसरे को नहीं।

इसलिये ईश्वर में कोई भी दोष नहीं आता है। गुरुजी का कथन ठीक है।

मू०—इकना हुकम बखसीस।

टी०—इकना याने किसी पुरुष को परमेश्वर के हुकम से राज धनादि की बखशीश हो जाती है। वह जन्मभर आनंद ही करते हैं। तात्पर्य यह है कि संसार में ऐसे भी जीव हैं, जिनको बिना परिश्रम ही धन, स्त्री, पुत्र और नीरोग शरीर सभी परमेश्वर की बखशीश से प्राप्त होते हैं। सो कहा भी है।

अर्थागमो नित्यमरोगता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोर्थकरीच विद्या षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं नित्य धन की प्राप्ति होनी, शरीर आरोग्य रहना, स्त्री सुंदर और प्रिय भाषणवाली होनी, पुत्र आज्ञाकारी होने, विद्या अर्थकरी होनी, अनर्थकरी न होनी, इन छः वस्तुओं की प्राप्ति इस लोक में सुख का हेतु है। सो गुरुजी भी कहते हैं कि किसी पुरुष को परमेश्वर की बखशीश से ये छओं प्राप्त हैं।

मू०—इक हुकमी सदा भवाईये।

टी०—कोई जीव कर्मानुसार परमेश्वर के हुकम से सदा घूमते ही रहते हैं। तात्पर्य यह है कि जो कर्महीन जीव हैं वे सर्दैव भोजन के लिये मारे-मारे घूमते है, तब भी उनको पेट-भर भोजन नहीं मिलता।

प्र०—जब परमेश्वर के हुकमसे जीव अपने अपने कर्मोंके अनुसार सुख, दुःखादि फल भोगते हैं तब ऐसा जानकर सब संतोष क्यों नहीं करते हैं?

मू०—हुकमें अन्दर सबको बाहर हुकम न कोइ।

टी०—परमेश्वर के हुकम से ही जीवों को संतोषादि मिलते हैं। बिना हुकम के उसको संतोष भी नहीं मिल सकता है; क्योंकि संतोषादि की प्राप्ति भी उसके हुकम से बाहर नहीं है। जीवों की जितनी क्रियाएँ हैं, सब उसके हुकम से ही होती हैं। श्रुति भी यही कहती है—

न प्राणेन न पानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥

प्राण और अपान की क्रियाओं से कोई नहीं जीता है; किंतु इतर चेतन ईश्वर की सत्ता करके ही सब जीते हैं। जिस चेतन में प्राणापानादि सब स्थित हैं उसके हुक्म बिना कोई काम नहीं होता है।

मू०—नानक हुकमें जे बुझै तां हों में कहै न कोइ ।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं, यदि जीव उस परमेश्वर के हुक्म से ही सब कार्मों की सिद्धि को जाने तब हों मैं अर्थात् मैं ही 'हूँ या मैं ही कर्ता हूँ, ऐसा कभी भी न कहे। जिस वास्ते सब जीव हौं मैं को करते हैं इसी वास्ते दुःखी होवे हैं, क्योंकि अहंकार ही पुरुषों को दुःख का हेतु होता है। कहा भी है—

यानि दुःखानि दीर्घाणि विषमाणि महान्ति च ।
अहंकारात् प्रसूतानि तान्यगात् खदिरा इव ॥

संसार में जितने दीर्घ और कठिन तथा बड़े बड़े दुःख हैं वे सब अहंकार से ही उत्पन्न होते हैं और हुए भी हैं। तात्पर्य यह है कि अहंकार ही से सब जीव दुःखी होते हैं। अहंकार के त्यागने से ही सब जीव सुखी होते हैं। इसी वास्ते भगवान् अपने भक्तों को अभिमान नहीं होने देते हैं। उनको कदाचित् अभिमान हो भी जाय तो भगवान उसे दूर कर देते हैं। कर्ण बड़ा दान करता था और दान के विषय में कर्ण की बड़ी कीर्ति होती थी। कर्ण की कीर्ति को सुनकर अर्जुन को अभिमान हुआ कि हम भी दान किया करें, जो मेरी कीर्ति कर्ण से भी अधिक हो जाय। अर्जुन भी बहुत सा सोना दान करने लगा। तब भगवान् ने सोचा अर्जुन को अभिमान खराब करेगा, इसलिये इसका अभिमान दूर करना चाहिए। एक दिन बड़ी वर्षा होती थी और सूखी लकड़ी कहीं मिलती नहीं थी, तब भगवान् एक ब्रह्मचारी का रूप धरकर और बहुत से चेलों को साथ लेकर नगर के बाहर

वर्षा में जाकर बैठ गए। अर्जुन ने सुना कि एक ब्रह्मचारी महात्मा आए हैं। सुनते ही अर्जुन उनके पास पहुँचा और हाथ जोड़कर कहने लगा—महाराज, कुछ सेवा फरमाओ। तब उन्होंने कहा हमको सूखी लकड़ी की जरूरत है। और किसी चीज की भी जरूरत नहीं है। तब अर्जुन ने कहा महाराज, इस वर्षा में सूखी लकड़ी तो कहीं भी नहीं मिलती है और जो जरूरत हो सो कहिए। उन्होंने कहा तुम जाओ और किसी चीज की जरूरत नहीं है। अर्जुन चुपचाप अपने घर को चला आया। पीछे से कर्ण उनके पास गया और कहने लगा कुछ सेवा फरमाओ। उन्होंने कहा और तो सब चीज है पर सूखी लकड़ी नहीं है। कर्ण ने कहा चलिये मेरे साथ में आपको सूखी लकड़ी दूँगा। वह साथ हो लिये। कर्ण आकर अपने मकान की छत को फाड़ कर लकड़ी निकाल-निकाल कर फेंकने लगा। तब भगवान् ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा संसार में तू ही दाता है। तेरे तुल्य दूसरा कोई भी नहीं है। कर्ण की उदारता को सुनकर अर्जुन का अभिमान दूर होगया। भाषा में भी एक कवि ने अभिमान की निंदा की है—

॥ दोहा ॥

बड़े बड़े अभिमान कर, खोय गये जगमाहिं।
महिरावण रावण सकल, कौरव दीखत नाहिं॥
धन अरु यौवन को गरब, कबहूँ करिये नाहिं।
देखत ही मिटि जात है, ज्यों बादर की छाहिं॥

अहंकार ही सब दुःखों का कारण है इसे दूर करने के वास्ते गुरुजी ने कहा है। यदि परमेश्वर के हुकम से ही सब कार्य्यों की सिद्धि को पुरुष जान लेवे तब हां में कभी भी न करे; किंतु परमेश्वर का ही आश्रय करे।

फल—ग्यारह दिन में छः घड़ी रात रहे तब ग्यारह हजार जाप

करे, तो उसके बाल भी न टूटें और ब्रह्म के जाननेवाली समझ होजाय।

गावैको ताण होवै किसे ताण । गावैको दात जाणै निसाण ॥
गावैको गुण वडआई आचार । गावैको विद्याविषम विचार॥
गावै को साज करे तन खेह । गावै को जी अले फिर देह ॥
गावै को जापै दिसै दूर । गावै को वेखै हादरा हदूर ॥
कथना कथीन आवै तोटि । कथि २ कथी कोटिकोटिकोटि ॥
देदा देलै देथक पाहि । जुगा जुगंतर खाहि खाहि ॥
हुकमी हुकुम चलाये राह । नानक विगसै वेपरवाह ॥ ३ ॥

इस तीसरी पौड़ी का अर्थ प्रश्न और उत्तर रूप करके कहा जायगा।

प्र०, । मू०—गावै को ताण ।

उस परमेश्वर की शक्ति को कौन पुरुष ताण करके याने विस्तार करके गाता है ?

उ०—होवै जिसे ताण । यहाँ ताण का अर्थ विशाल है अर्थात् जिस पुरुष की बुद्धि विशाल होती है वही उसकी शक्ति को याने सामर्थ्य को गाता है । परमेश्वर की शक्ति को प्रह्लादादि ने गाया है।

प्र० । मू०—गावै को ?

टी०—उस परमेश्वर के गुणों को कौन पुरुष संसार में गाता है ?

उ० । मू०—दाता जाणै निसाण ।

टी०—जो उसकी दात याने उदारता के निसाण अर्थात् चिह्नों को जानता है वही गाता है । सुदामा भक्त एक मुष्टि चावल को लेकर उसके पास गया । भगवान् ने उसके स्वर्ण के मंदिर बना दिए । जब पाँडवों को वनवास हुआ तब वन में पांडवों के पास दुर्वासा को दुर्योधनादि ने शाप देने के लिये भेजा । द्रौपदी खा चुकी थी । उसने दुर्वासा से कहा स्नान कर आइए । वह साठ सत्तर हजार चेले के साथ स्नान करने गए और इधर द्रौपदी ने भगवान् का ध्यान किया । भगवान् तुरंत आकर द्रौपदी से कहने लगे हमको भूख लगी है।

द्रौपदी ने बटलोई में देखा तो एक साग का पत्ता लगा था। वही भगवान् के मुख में डाल दिया। भगवान् चले गए। इधर भीमसेन दुर्वासा को भोजन के लिये बुलाने गए। उनके पेट आगे ही से भर गए। वह शाप देने आए थे पर उलटा वर दे गए और दुर्योधनादि को शाप देगए। ऐसे २ उसके उदारता के चिह्नों को जो भक्त जानते हैं वही उसके गुणों को गाते हैं। संसार में जिस मनुष्य में उदारता रूपी गुण रहता है उसको भी लोग गायन करते हैं। फिर जो अपनी उदारता से तीनों लोकों का, बल्कि सारे संसार का पालना करता है उसकी उदारता की कौन महिमा है? दाता मनुष्य की महिमा भी शास्त्रों में लिखी है, सो दिखाते हैं—

दाता नीचोऽपि सेव्यस्स्यान्निष्फलो न महानपि।
जलार्थी वारिधिं त्यक्त्वा पश्य कूपं निषेवते॥

नीच जातिवाला दाता भी संसार में पूजने योग्य होता है। उदारता से हीन महान् जातिवाला भी नहीं पूजा जाता है। जैसे जल का अर्थी पुरुष बड़े समुद्र को त्याग करके छोटे से कूप की उपासना करता है।

त्याग एको गुणः श्लाघ्यः किमन्यैर्गुणराशिभिः।
त्यागाज्जगति पूज्यन्ते पशुपाषाणपादपाः॥

संसार में त्यागरूपी याने उदारता रूपी एक ही गुण श्लाघा करने के योग्य है। और गुणों की राशियों से क्या प्रयोजन है? त्याग से ही संसार में पशु पाषाण वृक्षादि पूजे जाते हैं।

भवन्ति नरकाः पापात्पापं दारिद्र्यसम्भवम्।
दारिद्र्यमप्रदानेन तस्माद्दानपरो भव॥

पाप से नरकों की प्राप्ति होती है। पाप दरिद्रता से होता है। दरिद्रता दान के न करने से होती है। इसलिये दाता ही होना चाहिए।

कर्णस्त्वचं शिविर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः।
ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम्॥

कर्ण ने अपनी त्वचा उतार करके दे दी, शिवि राजा ने अपना मांस काटकर दे दिया था, जीमूतवाहन ने अपना जीव दे दिया और दधीचि ऋषि ने हड्डियों को दे दिया था। महात्मा को कोई वस्तु भी अदेय नहीं है। कलियुग में राजा विक्रमाजीत आदि से लेकर बड़े-बड़े उदार हुए हैं, जिनकी उदारता को ग्रंथों में गायन किया है। इस वास्ते उदारता ही परम उत्तम गुण है, सो सबसे उत्तम गुण परमेश्वर में ही है जो कि नास्तिकों को भी खान पानादि सब पदार्थ देता है। ऐसी उसकी उदारता को जानकर उसके प्रेमी भक्त उसका नित्य ही गायन करते हैं।

प्र०। मू०—गावै को गुण वडयाईयां।

टी०—परमेश्वर के गुणों को और वडयाईयां याने यशों को कौन गाता है?

उ०। मू०—चार।

अर्थात् चारों वेद गाते हैं और उनके अनुसार चलनेवाले ऋषि मुनि सब गाते हैं।

प्र०। मू०—गावै को विद्या।

परमेश्वर की जो विद्या याने मायारूपी शक्ति उसको कौन गाता है?

उ०। मू०—विषम विचार।

उसकी माया रूपी शक्ति का विचार करना विषम याने कठिन है; क्योंकि वह माया सत्य असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय है। उसका निर्वचन कदापि नहीं होसक्ता। इसीसे उसका विचार कठिन है। अथवा विद्या का अर्थ आत्मा का स्वरूप है। उस आत्मा के स्वरूप को कौन गाता है?

उ०—विषम विचार। उस परमेश्वर के स्वरूप का विचार करके कथन करना विषम है। याने कठिन है; क्योंकि मन वाणी का वह विषय नहीं है। श्रुति भी कहती है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

जिस आत्मा के स्वरुप के देखने और जानने से सब वाणियाँ भी मन के सहित न प्राप्त होकर हट आती हैं तब और कौन उसके स्वरुप को कह सक्ता है ? कोई भी नहीं कह सक्ता है।

प्र० । मू०—गावे को साज करे तनखेह ।

जो परमेश्वर जीवों के शरीरों की सृष्टि करता है और फिर उसको खेह याने राख कर देता है उसके गुणों को कौन गाता है । तात्पर्य यह जो कि एक बूंद वीर्य से ऐसी ऐसी सुन्दर सूरतों को उत्पन्न करता है जिनको देखकर बड़े बड़े ऋषि मुनि तपस्वियों के भी मन चलायमान होजाते हैं फिर जब वही सूरतें वृद्धावस्था को प्राप्त होती हैं तब उनसे सब भागते हैं फिर पृथिवीतल में एक एक बीज से अनेक प्रकार के फूलों को और मेवों को वह उत्पन्न करता है । उस परमेश्वर को कौन भजता है ।

मू०—गावेकोजीअलेफिरदेह ।

टी०—जो परमेश्वर जीव को एक शरीर से लेकर फिर उसको दूसरा नया शरीर दे देता है उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को कौन गाता है ?

मू०—गावेकोजापे ।

टी०—उस परमेश्वर के गुणों को कौन पुरुष गाता है और कौन पुरुष उसको जपता है ?

उ० । मू०—दिसेदूर ।

जिन सकामी पुरुषों को परमेश्वर वैकुंठादि दूर देशों में बैठा हुआ प्रतीत होता है वही उसके लोक की प्राप्ति के लिये उसके गुणों को गाते हैं और उसको जपते हैं ।

प्र०—सब लोग परमेश्वर को दूरस्थित जानकर ही गाते हैं या किसी दूसरे प्रकार से गाते हैं ?

उ०—दूसरे प्रकार से भी गाते हैं ।

प्र० । मू०—गावेको ।

दूसरे प्रकार से कौन गाता है ?

उ० । मू०—वेखैहादराहदूर ।

जो निष्काम भक्त हैं वह परमेश्वर को हादराहदूर याने सब जगह मौजूद सर्वव्यापक जानकर गाते हैं । इसी अर्थ को श्रुति भी कहती है—

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥

वह परमेश्वर आकाशादि से भी बड़ा है । अलौकिक है । अचिंत्यरूप है अर्थात् उसका रूप मन वाणी करके भी चिंतन नहीं किया जाता है । सूक्ष्म जो आकाशादि उनसे भी अतिसूक्ष्म है । सकामियों को अतिदूर है और निष्कामों को अति समीप है । अपने हृदय में ही मौजूद है । उसीको निष्काम देखाते हैं । इसी पर गुरुजी ने भी कहा है—वेखैहादराहदूर ।

मू०—कथनाकथीनआवैतोट ।

टी०—परमेश्वर का कथन जो वेद है उस वेद ने कथनकरी जो उस की स्तुति है उस स्तुति की तोट याने अंत नहीं आता है इसी वार्ता को महिम्न में भी कहा है ।

चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।

श्रुति जो वेद है वह भी भयभीत होकर परमेश्वर की स्तुति को करता है । अथवा ऋषियों के बनाये हुए जो षट् शास्त्र हैं, वे ही उनकी कथना है । उस कथना करके कथनकरी जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयादि हैं, उनकी तोट अर्थात् अंत नहीं आता है । क्योंकि सब शास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न रीति से ही जगत् की उत्पत्ति आदि कथन की हैं । यदि उनको ठीक-ठीक पता लगता, तो सब एक ही तरह से कथन करते । पर ऐसा तो नहीं हुआ है । सबने परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध कथन किया है । नैयायिकों ने जगत् की उत्पत्ति परमाणुओं से मानी है । सांख्यकों ने प्रकृति से मानी है । वेदांतियों ने माया से मानी है । मीमांसकों ने अपनी भिन्न ही तरह से मानी है । पौराणिकों ने अपने

जुदा ही गीत गाए हैं। शिवपुराणवाले ने शिव से। विष्णुपुराणवाले ने विष्णु से। देवीभागवतवाले ने देवी से। इसी तरह से औरों ने भी जुदा-जुदा तरह से जगत् की उत्पत्ति मानी है; परंतु ईश्वर का अंत किसी को मिला नहीं है। इसी वास्ते गुरुजी ने कहा है 'कथना-कथीन आवैतोट' जीवों की कथना कथी हुई से ईश्वर की सृष्टि का अंत नहीं आता है।

मू०—कथकथकथीकोटिकोटिकोटि।

करोड़ों ही ऋषिमुनि अपनी-अपनी कथना को कथन करके संसार से चले गए हैं। तात्पर्य यह है कि चार वार्त्ता का पता ठीक-ठीक किसी को भी नहीं मिला है और न मिलेगा। एक तो जगत् की उत्पत्ति का पूरा हाल किसी को भी नहीं मिला है; क्योंकि उत्पत्ति से पूर्व काल में कोई विद्यमान होता तो उसकी उत्पत्ति को देख करके कहता ऐसा तो नहीं है। इस वास्ते उसका पूरा हाल कोई भी नहीं जानता है और प्रलय का हाल भी कोई नहीं जानता; क्योंकि उस काल में भी कोई नहीं रहता और जीवात्मा के आकार को भी कोई नहीं जानता। क्योंकि किसी इंद्रिय का और मन का भी वह विषय नहीं है। ईश्वर आत्मा के स्वरूप को भी कोई नहीं जानता; क्योंकि वह भी किसी इंद्रिय का विषय नहीं है। इस वास्ते अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सब ऋषियों ने अटकल-पटकल लिखा है। एक दूसरे की अपेक्षा से एक दूसरे का कथन मिथ्या प्रतीत होता है। तब सबका कथन झूठा ही प्रतीत होता है। ईश्वर का पूरा हाल किसी को भी नहीं मिला है। इसलिये गुरुजी का कथन ठीक है।

कथकथकथी कोटीकोटिकोटि।

अर्थात् करोड़ों ऋषि मुनि कथन करते करते चले गए। ईश्वर का और ईश्वर की रचना का अंत किसी को भी नहीं मिला। इसी वास्ते परमेश्वर के भक्त उसकी शरण को ही प्राप्त होते हैं। सृष्टि की रचनादि का विचार वे नहीं करते हैं।

प्र०—ईश्वर की शरण को प्राप्त होने से वह अपने भक्तों को कुछ देता भी है या कुछ भी नहीं देता ?

उ० । मू०—देदादेलैदेथकपाय ।

टी०—जो सकाम भक्त हैं वह अपनी कामना के अनुसार उससे माँगते ही रहते हैं और वह दयालु कृपालु परमेश्वर उनको देता ही रहता है और वह भक्त अपनी कामनों के अनुसार उससे लेते-लेते थक जाते हैं पर वह देनेवाला नहीं थकता है ।

प्र०—वह परमेश्वर कब तब अपने भक्तों को देता है ?

उ० । मू०—जुगांजुगंतर खाई खाहि ।

वह परमेश्वर युगांयुगंतर याने हर एक युग में अपने भक्तों को देता ही रहता है और वे उसके दिए हुए पदार्थों को हर एक युग में खाते ही रहते हैं ।

प्र०—एक ही जन्म में करी जो भक्ति है उसी के फल को हर एक युग में भक्तजन भोगते रहते हैं या हर एक युग में फिर भक्ति करके उसके फल को भोगते हैं ?

उ० । मू०—हुकमी हुकम चलावै राह ।

टी —हुकमी नाम हुकम करनेवाले का है और हुकम नाम आज्ञा का है । सो परमेश्वर का हुकम याने आज्ञा जो श्रुति स्मृति है उसी आज्ञा पर अर्थात् उनके रास्ते पर अपने भक्तों को वह चलाता रहता है । तात्पर्य यह है कि हर एक युग में अपने भक्तों को भक्तिमार्ग में ही चलाता है । उसका फल जो सुख उसको देता ही रहता है ; क्योंकि उसके भक्तजन युग-युग में उससे भक्ति ही माँगते रहते हैं । अग्निपुराण में प्रह्लाद-वाक्य भी इसमें प्रमाण है ।

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युताभक्तिरस्त्वय्यच्युत सदास्तु मे ॥
या प्रीतिरविवेकीनां विषयेष्वनुपायिनी ।
त्वमनुस्मरतःसा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥

प्रह्लादजी ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, हे नाथ ! हजारों योनियों में से जिस-जिस योनि में मेरा गमन होवै उस-उस योनि में तुझ ईश्वर में मेरी अच्युत भक्ति सदैव बनी रहे। जैसे अविवेकी पुरुषों की भक्ति सदा विषयों में बनी रहती है वैसी ही मेरी प्रीति तुम्हारे में सदैव बनी रहे। अर्थात् मेरे हृदय से तुम्हारी भक्ति कदापि दूर न हो। तात्पर्य यह है कि भक्त हर एक युग में और हर एक जन्म में परमेश्वर से भक्ति की ही प्रार्थना करते हैं। परमेश्वर भी उनको अपनी भक्ति के ही रास्ते चलाता है।

मू०—नानक विगसे वेपरवाह।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं कि परमेश्वर, अपने भक्तों की भक्ति को देखकर विगसे है अर्थात् प्रसन्न होता है; क्योंकि परमेश्वर वेपरवाह है। वह किसी दूसरे की परवाह याने अहसान को नहीं चाहता; क्योंकि वह स्वतंत्र है। जैसे पिता अपने पुत्र को उत्पन्न करता है, बातचीत सिखाता है और उसकी बातों को सुनकर प्रसन्न होता है, वैसे परमेश्वर भी अपने भक्तों को उत्पन्न करता है, भक्ति के रास्ते पर उनको चलाता है, उनको भोग भुगवाता है और आप ही उसे देखकर आनंदित होता है।

फल—रविवार से सौ दिन तक दो सौ पचास जपे, तो राजा की लड़की से व्याह हो और धनी हो।

मू०—साचा साहिब साच नाहि भाषया भाउ अपार।
आखहिं मंगहि देहि देहि दातकरे दातार॥
फेरकि अगै रखीयै जित दिसै दरबार।
मुहो कि बोलण बोलियै जित सुण धरे पियार॥
अमृत वेला सचनाउ वडआई वीचार।
कर्मी आवै कपड़ा नदरी मोक्षद्वार॥
नानक एवै जाणीयै सब आपे सचआर॥

मू०—साचा साहिब साच नाहि ।

मू०—साचा साहिब साच नाहि साहिब नाम बड़े का है और नाहि शब्द का अर्थ नाम है । वह परमेश्वर साचा है याने सद्रूप है । उसका नाम भी सत्य है और वह सबसे बड़ा है । श्रुति भी इसी अर्थ को कहती है । महतो महीयान् । महान जो आकाशादि हैं उनसे भी यह परमेश्वर महान् है । अर्थात् आकाशादि से भी बड़ा है ।

मू०—भाषया भाव अपार ।

टी०—भापया याने अपनी-अपनी भाषा में संसार में लोग उसे ईश्वर, परमेश्वर, राम, कृष्ण, शिव, महादेव, खुदा, गाड आदि नाम से अपने-अपने देश की बोली में उच्चारण करते हैं और उस परमेश्वर से भाव याने प्रेम अपार को माँगते हैं ।

मू०—आखहि मँगहि देह देह दात करे दातार ।

टी०—अपनी-अपनी भाषा में सब लोग उसके नाम को आखहि याने कहते हैं । कोई हे परमेश्वर ! कहता है, कोई कहता है हे ईश्वर ! कोई कहता है हे खुदा ! कोई कहता है हे गाड ! इस प्रकार सब पुकार पुकार के उसके नाम को कहते हैं । फिर उससे मँगहि माँगते हैं । कोई धन को, कोई स्त्री को, कोई पुत्रादि को माँगता है । देह देह अर्थात् अपनी अपनी कामना के अनुसार सब देह देह ही करते हैं । गीता में भी भगवान् ने कहा है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

हे अर्जुन ! चार प्रकार के सुकृति पुरुष मेरा भजन करते हैं । एक अन्नादि करके दुःखी, दूसरा जिज्ञासु, तीसरा धनादि का अर्थी और चौथा ज्ञानी, ये चार प्रकार के भक्त मेरा भजन करते हैं और अपनी अपनी कामना माँगते रहते हैं । मैं भी उनकी कामना के अनुसार ही उनको देता रहता हूँ । इसी पर गुरुजीने भी कहा है—वह जो दातार परमेश्वर है, वह सबको दानही करता रहता है ।

प्र०—जो निष्काम भक्त है, जिसको केवल उसके दर्शन की लालसा है, उसको उपासना करने से यदि वह परमेश्वर दर्शन देवै तव ?

मू०—फेर के अगे रखीये।

टी०—फिर उस परमेश्वर की भेंट के लिये उसके आगे व रक्खा जाय ?

मू०—जित दिसे दरबार।

जिस भेंट के करने से उसका दरबार याने निवास का स्था दिखाई पड़े।

उ०—संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो उसको प्राप्त होवै; किंतु वह आप्त काम है। इसलिये परम प्रेम ही उसकी भें करनी चाहिये; क्योंकि प्रेम करके ही सब किसी को उसकी प्राप्ति हु है सो दिखाते हैं—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयः किंवा तपो हस्तिनः क जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्॥ कुब्जा का कम नीयरूपनिपुणा किंवा सुदाम्नो धनं भक्त्या तुष्यति केवलं च गुणैः भक्तिप्रियो माधवः॥ १॥

व्याध जो फंदक था उसका कोई भी शुभ आचार नहीं था, ध्रु भक्त की कोई भी बड़ी आयु नहीं थी, गजेंद्र हस्ती का कोई भी भार तप नहीं था, विदुर की कोई भी उत्तम जाति न थी, उग्रसेन का कोई भी भारी पुरषार्थ न था, कुब्जा का कोई भी सुंदर रूप न था, सुदामा के पास कुछ भी धन न था पर परमेश्वर केवल प्रेमभक्ति से ही प्रसन्न हुए। दूसरे गुणों से वह प्रसन्न नहीं होते हैं। इस वास्ते उनका नाम भक्तिप्रिय है जब ईश्वर प्रसन्न हो तब प्रेम ही उसकी भेंट करे।

मू०—मुँहकि बोलण बोलीये जित सुण धरे प्यार।

टी०—जब परमेश्वर प्रसन्न होकर दर्शन दे तो उसके सामने

किस प्रकार का वचन बोलना चाहिये। जित सुण धरे प्यार ॥ जिस वचन को सुन वह प्यार से आगे कृपादृष्टि करे ?

उ०—नम्रतापूर्वक उसकी स्तुति करे। जैसे कि अर्जुन, प्रह्लाद ध्रुवादि ने की है। भाषा में भी कवियों ने उसकी स्तुति की है। उसको भी यत्किंचित् लिखते हैं—

॥ कवित्त ॥

आगे वह वानिसो भुलानी अब दीनानाथ दीन की सुनेते नाम दीनबंधु पाये हो। द्रौपदी पुकारी ताकी सारीको बढ़ाय दई, दुर्जन दुशासन के गर्व को निवाये हो॥ बकी दुष्ट तारी, जो पयान गरला आई, भक्ति के वसी ह्वै गाय नंद की चराये हो। द्वारका कहैजु करुणा को न बिसारो नाथ, करुणा किये ते करुणाकर कहाये हो॥

ऐसे प्रेम के भरे हुए वचनों को बोलें जिनको सुनकर परमेश्वर भी प्यार करे।

प्र०—परमेश्वर के ध्यान का और उसके नाम जपने का कौन सा समय है ?

उ०। मू०—अमृत वेला सचनाउ वड्याई वीचार।

टी०—अमृतवेला नाम प्रातःकाल का है। प्रातःकाल में उठकर, एकांत में बैठ कर, परमेश्वर का ध्यान करे और सत्य जो उसका नाम है ॐ कार उसका जप करे। उसकी बड़ाई करे। उसके दया-लुतादि गुणों का विचार करे। अथवा प्रातःकाल उठकर सत्य नाम का उच्चारण करके उसकी बड़ाई का विचार करे अथवा दिनरात की साठ घड़ी में जिस घड़ी में मुख से परमेश्वर के नाम का उच्चारण हो जाय उसी घड़ी का नाम अमृतवेला है; क्योंकि अमृत रूपी नाम का वही घड़ी वेला है याने वक्त है। नामही सब घड़ियों को अमृत रूप

करने वाला है। बिना नाम के जपने की जो घड़ी व्यतीत होती है वह विषरूप है। विषरूप संसार का हेतु होने से ब्रह्मपुराण में नाम का माहात्म्य भी कहा है—

इदमेव हि मांगल्यमिदमेव धनागमः।
जीवितस्य फलं चैव रामनामानुकीर्तनम्॥

रामनाम का कीर्तन करना ही मंगल रूप है। यही धन का आगम रूप है और जीने का फल भी यही है, जो रामनाम का कीर्तन करना है।

प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्।
तथोष्ठपुटसंस्पृष्टं रामनामदहेदघम्॥

प्रमाद से भी स्पर्श की हुई अग्नि जैसे जला देती है, तैसे ही ओष्ठ पुट से भूले चूके भी रामनाम कहने से सब पाप दग्ध हो जाते हैं।

हत्यायुतंपानसहस्रमुग्रं गुर्वंगनाकोटिनिषेवनञ्च।
स्तेनान्यसंख्यानि च पातकानि श्रीरामनाम्नानिहितानि
सद्यः॥

ब्रह्महत्या के सहित जो हजारों पाप हैं, बड़े भयानक और करोड़ों ही गुरु अंगना के सेवन से जो पाप होते हैं और स्वर्ण की चोरी के जो अनंत पाप हैं सब पाप श्रीरामनाम के जपने से शीघ्र ही दूर हो जाते हैं। रामनाम के जपने से ही वाल्मीक्यादि भी बड़ी बड़ी पदवी को प्राप्त हुए हैं इसी से जाना जाता है कि नाम ही सब घड़ियों को अमृतरूप बना देता है। जो रामनाम को छोड़कर कर्मकांड में लगे रहते हैं वह जन्मते मरते ही रहते हैं। इसीपर गुरुजी कहते हैं।

मू०—कर्मीआवैकपड़ानदरीमोक्षद्वार।

टी०—जन्मांतर के कर्मों के अनुसार ही जीव को शरीर रुपी कपड़ा मिलता है। जब नामका स्मरण करते-करते ईश्वरकी नजर याने कृपा-दृष्टि इस पर हो जाती है तब इसको मोक्ष के द्वार की प्राप्ति होती है।

प्र०—मोक्ष का द्वार कौन है ?

उ०—मोक्ष का द्वार ईश्वर की निष्काम भक्ति है ।

प्र०—वेद में तो ज्ञान से मोक्ष कहा है । तब मोक्ष का द्वार ज्ञान को कहना चाहिये । भक्ति को आप कैसे मोक्ष का द्वार कहते हैं ?

उ०—मोक्ष ज्ञान से ही होता है ; परंतु ज्ञान बिना निष्काम भक्ति के नहीं होता है । भक्ति ज्ञान की माता है और ज्ञान उसका पुत्र । भक्ति ही मोक्ष का द्वार साबित होती है । कहा भी है—

हरिभक्ति विनाकर्म्म नस्याद्धीशुद्धिकारणम् ।
नवासिद्ध्येद्विवेकादि नज्ञानं नापिमुक्तता ॥

हरि की भक्ति के बिना कर्म भी फल को नहीं देते हैं । बिना भक्ति के निष्काम कर्म भी चित्त की शुद्धि को नहीं करते हैं । आत्मज्ञान की प्राप्ति भी नहीं होती है । न बिना भक्ति के मोक्ष ही होती है । इसी से हरिकी भक्ति ही मोक्ष का द्वार साबित होती है ।

प्र०—भक्तिरूपी द्वार में प्रवेश कैसे हो सक्ता है ?

उ०—उसके द्वारपालों की प्रथम सेवा करने से ।

प्र०—वह द्वारपाल कौन हैं ?

उ०—योगवाशिष्ठ में कहा है—

मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तितः ।
शमो विचारः सन्तोपश्चतुर्थः साधुसंगमः ॥
एते सेव्याः प्रयत्नेन चत्वारो द्वौ त्रयोऽथवा ।
द्वारमुद्‌घाटयन्त्येते मोक्षराजगृहे तथा ॥

अ०—मोक्ष का द्वार जो भक्ति है उसके चार द्वारपाल हैं । शम १ विचार २ सतोष ३ और सत्संग करना ४ । यत्न से इन चारों की उपासना करनी चाहिए । या दो की या तीन ही की उपासना करनी चाहिए । मोक्ष के द्वार को ये खोल देते हैं । जैसे राजा के द्वारपालों की सेवा करने से राजगृह के फाटक को वे खोल देते हैं ।

एकं वा सर्वयत्नेन प्राणांस्त्यक्त्वा समाश्रयेत् ।
एकस्मिन् वशगेयान्ति चत्वारोपि वशंगतः ॥

अथवा चारों में से एक को बड़े यत्न से प्राणों का त्याग करके भी सेवना चाहिये ; क्योंकि एक के भी वश होने से चारों वश में होजाते हैं । विना द्वारपालों की उपासना के मोक्ष का द्वार जो भक्ति है उसमें प्रवेश कदापि नहीं होसक्ता । विना परमेश्वर की कृपा के मोक्ष के द्वार पर जाना भी कठिन है । गुरुजी का कथन ठीक है ।

नदरीमोक्षद्वार अथवा कर्मी आवै कपडा ।

इसका ऐसा भी अर्थ होता है कि जन्मांतर के कर्मों से ही जीवों को वस्त्रादि मिलते हैं । विना कर्मों के नहीं मिलते । विना ही वस्त्र के हजारों दुःख पाते हैं । उनको माँगने से भी नहीं मिलते; क्योंकि उनके कर्मों में नहीं हैं ।

प्र०—कोई २ महात्मा जान बूझ कर वस्त्र को नहीं ओढ़ते हैं । यदि कहो कि उनको मिलता ही नहीं, सो भी नहीं ; क्योंकि उनको मिलता है तब भी वह नहीं ओढ़ते, इसका क्या कारण है ?

उ०—कर्म अनेक प्रकार के हैं । उनके फल भी भिन्न २ और अनेक प्रकार के हैं । देखो संसार में किसी को तो राज और धन सब कुछ है, पर संतान नहीं है । संतान के विना वह दुःखी है । राज और धन को देनेवाले कर्म उसने पूर्वजन्म में किए हैं; संतति देनेवाले नहीं । किसी को धन, पुत्रादि भी हैं; पर उसका शरीर नित्य रोगी रहता है । शरीर की आरोग्यतावाले कर्म उसने नहीं किए हैं । किसी-किसी का शरीर आरोग्य रहता है और संतति भी उसके हैं; पर धन उसके पास नहीं है । धन के बिना वह दुःखी रहता है; क्योंकि धन के देनेवाले कर्म उसने किए नहीं हैं । इसी तरह जिन महात्माओं को सब सुख के साधन मिलते हैं उन सबको तो वह भोगते हैं; पर वस्त्र को नहीं ओढ़ते हैं । क्योंकि उनके कर्मों में वस्त्र ओढ़ना नहीं है उनकी रुचि नंगे रहने में ही होती है कर्म भोग बड़ा बली

है। वह उनकी रुचि वस्त्र ओढ़ने में होने ही नहीं देता। दूसरा, वस्त्र ओढ़ना उनके बाकी के भोग का और मान प्रतिष्ठा का प्रतिबंधक भी है। जितना मान उनका नंगे रहने से होता है और जितने उत्तम २ भोग उनको नंगे रहने से मिलते हैं उतने यदि वस्त्रों को ओढ़ लें तो न मिलें। इन भोगों के कर्म बली हैं। इस वास्ते उनको वस्त्रों के ओढ़ने में रुचि होती ही नहीं। इसलिये एक क्लेश उनको भी बना है। बिना पूर्वले कर्मों के जीव को कोई वस्तु भी नहीं मिलती है। यदि कहो कि नंगे रहने से परमेश्वर प्रसन्न होता है, तो पशु आदि सब नंगे ही रहते हैं इनपर वह क्यों नहीं प्रसन्न होता? यदि कहो, इनको विचारशक्ति नहीं। जो विचार पूर्वक नंगा रहे। उस पर परमेश्वर प्रसन्न होता है तब पुर्वले प्रह्लादादि और इस काल के नामदेव आदि पर परमेश्वर कैसे प्रसन्न हुआ? वे नंगे तो नहीं रहते थे। यदि कहो, नंगे रहने से ज्ञान की प्राप्ति होती है, तो निर्धन और पशु आदि सभी ज्ञानी होने चाहिए; क्योंकि ये सब नंगे रहते हैं, और रामचंद्र, वशिष्ठ, जनकादि सब अज्ञानी होने चाहिए, क्योंकि ये सब नंगे नहीं रहते थे। इसी से साबित होता है कि नंगा रहना भी एक कर्म का भोग है। ईश्वर की प्रसन्नता का साधन प्रेम है। ज्ञान का साधन श्रवणादि हैं। नंगा रहना नहीं है। गुरुजी का कथन ठीक है कि पुर्वले कर्मों से ही शरीर पर वस्त्रादि भी मिलते हैं। बिना कर्मों के नहीं मिलते। परमेश्वर की कृपादृष्टि बिना मोक्ष का द्वार जो भक्ति है सो भी नहीं मिलती।

मू०—नानक एवैं जाणीये सब आपेही सचआर ॥

गुरु नानकजी कहते हैं कि जीव को इस प्रकार जानना चाहिए कि सब कार्यों को करने वाला आपही परमेश्वर है। जीव को उसकी इच्छा बिना किसी कार्य्य के करने की भी सामर्थ्य नहीं है। इसमें बहुत से दृष्टांत ग्रंथों में मिलते हैं। रावण, दुर्योधन, कंस, शिशुपालादि ने अनेक प्रकार के संकल्प किए; पर एक भी सिद्ध न हुआ। जो ईश्वर ने चाहा सोई हुआ। कहा भी है—

सर्वाधारो निराधारः सर्वपोषक ईश्वरः ।
प्राणादिप्रेरकत्वेन जीवने हेतुरेव च ॥
सर्वकर्त्ता तथा पाता हर्ता सर्वत्रगो हरिः ।
सर्वानुस्यूतरूपश्च सर्वाधिष्ठानमेव च ॥

वह परमेश्वर सबका आधार है और आप निराधार है। सब का पालन करनेवाला भी वही है। सब जीवों के प्राणों का प्रेरक होने से सबके जीवन का हेतु भी वही है। सबका रचनेवाला और रक्षा करने वाला भी वही है। सर्वव्यापक भी है। सबमें एक रस व्यापक है और सबका अधिष्ठानरूप भी है। भाषा में भी एक कवि ने कहा है—

॥ छप्पय ॥

चिड़ी बाज को खाय नाग को दादुर ग्रासै।
गिरि पै उपजै कंज सिंह को अजा विनासै ॥
जल सींचे ते हरी बेलि अति ही कुम्हिलावै ॥
बिन बदरी का मेह जोर से झड़ी लगावै ॥
अचरज हीन न मानियो रवि निकसै यदि रैनको ।
साहिब सब समरत्थ है याद रख इस बैनको ॥

गुरुजी का कथन ठीक है कि बिना ईश्वर की कृपादृष्टि के जीव को कुछ नहीं मिलता। सब कुछ वह आपही करता है ॥

फल—मंगलवार से हर दिन पचीस दिन तक पाँच सौ जपै तो लड़ाई व मुकदमा जीतै।

मू०—थापिया न जाइ कीता न होइ आपेआप निरंजन सोइ ॥ जिन सेवया तिन पाइआ मान नानक गावीयै गुणी निधान ॥ गावीयै सुणीऐ मन रखीयै भाउ दुःख पर

हर सुख घर लै जाइ ॥ गुरुमुखनादं गुरुमुखवेदं गुरुमुख रहा समाई ॥ गुरु ईश्वर गुरु गोरख ब्रह्मा गुरु पारवती माई ॥ जेहोजाणा आखानाही करणा कथन न जाई ॥ गुरां इक देहि बुझाई सबना जी आका इक दाता सो मैं बिसर न जाई ॥

पूर्ववाली तुक में ईश्वर को ही करता हरता कहा है। अब इस तुक में उसी ईश्वर को अनादि कहा है।

मू०—थापिया न जाइ।

परमेश्वर किसी दूसरे से स्थापित नहीं किया हुआ है। जो वस्तु उत्पत्तिवाली और कालादि परिच्छेदवाली होती है वही दूसरे से स्थापित की जाती है। ईश्वर उत्पत्ति और कालादि परिच्छेद से रहित है। इसवास्ते वह किसी से स्थापित नहीं किया हुआ है।

मू०—कीता न जाइ।

जो वस्तु पहले न होकर पीछे होती है वही करी जाती है याने बनाई जाती है। ईश्वर ऐसा नहीं है वह सदा विद्यमान है। फिर वह परमेश्वर कैसा है?

मू०—आपे आप।

वह आप ही अपनी महिमा में स्थित है। फिर वह कैसा है?

मू०—निरंजन सोइ।

अंजन नाम अज्ञान का है। परमेश्वर अज्ञानरूपी मल से भी रहित है। श्रुति भी इसी अर्थ को कहती है।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके
न चेशितानैव च तस्य लिंगम्।

उस परमेश्वर का कोई दसरा लोक में स्वामी नहीं है, न कोई उसका प्रेरक है और न कोई उसका चिह्न है।

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।

वह परमेश्वर क्रिया से रहित है । निरवयव है । शांतरूप है । उत्पत्ति नाश से रहित है । अविद्यारूपी मल से भी वह रहित है ।

मू०—जिन सेव्या तिन पाया मान ।

जिन पुरुषों ने पूर्वोक्त गुणों करके युक्त परमेश्वर की उपासना की है उसी ने इस लोक और परलोक में मान पाया है । इसी वास्ते परमेश्वर की उपासना करनेवालों की शास्त्र भी स्तुति करता है । देवीभागवत के नवम स्कंध के छठे अध्याय में भगवान् ने गंगाजी के प्रति कहा है—

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सत्यसंख्यानि सुन्दरि ।
भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥

भगवान् कहते हैं, हे सुंदरि ! पृथिवीतल में जितने तीर्थ हैं वे सब मेरे भक्त के साथ स्पर्श करने से और दर्शन करने से पवित्र हो जाते हैं ।

मन्मन्त्रोपासका भक्ता विश्रमन्ति च भारते ।
पूतां कर्तुं तारितुं च सुपवित्रां वसुन्धराम् ॥

मेरे मंत्र की उपासना करनेवाले मेरे भक्त जो भारत में निवास करते हैं सो पृथिवी को पवित्र करने के लिये और लोकों को तारने के लिये निवास करते हैं ।

मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च ।
तत्स्थानं तु महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम् ॥

भगवान् कहते हैं मेरे भक्त जहाँ रहते हैं और जहाँ चरणों को धोते हैं वे स्थान महान् तीर्थ हैं और निश्चय करके वे पवित्र हो जाते हैं । जिन पुरुषों ने परमेश्वर की उपासना की है उन्होंने भी मान पाया है इतरों ने नहीं ।

मू०—नानक गावीये गुणीनिधान ।

गुरु नानकजी सब पुरुषों के प्रति उपदेश करते हैं-संपूर्ण गुणों की निधान याने खानि जो परमेश्वर है उसी के गुणों को गायन करना चाहिए। सब कोई उस परमेश्वर के गुणों को गायन करो, जिससे तुम्हारा कल्याण हो।

प्र०—उस परमेश्वर में मुख्य गुण कौन है?

उ०—उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥

संपूर्ण भूतों की उत्पत्ति और नाश को, तथा गमन आगमन को और विद्या और अविद्या को जो जानता है उसी का नाम भगवान है। अनेक गुणों की वह खानि है श्रुति भी कहती है—

यः सर्वज्ञः सर्ववित्।

जो ईश्वर सामान्यरूप से सबको जानता है वह विशेष रूप से भी सबको जानता है इस तरह के गुण किसी जीव में नहीं रह सक्ते हैं। इसवास्ते गुरुजी का कथन ठीक है कि उसी परमेश्वर को गायन करना चाहिए, जो सब गुणों की खानि है।

मू०—गावीये सुणीये मन रखीये भाव।

टी०—परमेश्वर के गुणों को गाइए, याने गायन करना चाहिए, सुनिए कथा आदि में उसके गुणों को श्रवण करना चाहिए। श्रवण करके फिर मन में प्रेम रखना चाहिए भाषा में भी कवियों ने उसके गुणों को गाया है—

क०—जाही हाथ धनुष उठायो है सीतापति, जाही हाथ रावण संहारे लंक जारी है। जाही हाथ तारे औ उवारे हाथ हाथी गहि, जाही हाथ सिंधु माथि लक्ष्मी निकारी है॥ जाही हाथ गिरिवर उठाय गिरधारी भये, जाही हाथ नंदकाज नाथे नागकारी है। हौंतो अति

अनाथ, कहाँ दीनानाथ, वाही हाथ मेरो हाथ गहिबे की अब वारी है ॥

दो०—कबीर प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रम रहा और अमल क्या खाय ॥
आठ पहर भीना रहे प्रेम कहावे सोय।
बढ़े घटे छिन एक में सो तो प्रेम न होय ॥
यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै तब बैठे घर माहिं ॥

प्र०—ईश्वर के गुणों को गायन करने से और प्रेम रखने से क्या होगा ?

उ०—मू०—दुःख परहर सुख घर लै जाइ।

टी०—परमेश्वर में प्रेम रखने से दुःख परहर अर्थात् तीन प्रकार के दुःखों का प्रहार याने नाश होता है।

प्र०—तीन प्रकार के दुःख कौन हैं ?

उ०—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

शरीर और अतःकरणसंबंधी दुःख का नाम आध्यात्मिक दुःख है। ग्रहों संबंधी दुःख का नाम आधिदैविक है। अग्नि वायु आदि भूतों से दुःख का नाम आधिभौतिक दुःख है। परमेश्वर के गुणों को श्रवण करने से इन तीना प्रकार के दुःखों का नाश हो जाता है।

मू०—सुख घर लै जाय।

और चित्त का शांतिरूपी जो सुख है, वह अंतःकरणरूपी घर में आ जाता है।

प्र०—ईश्वर में प्रेम आप ही आप होता है या किसी के बताने से होता है ?

उ०—गुरु के बताए हुए मार्ग पर चलने से ही ईश्वर में प्रेम होता है।

गुरुजी मू०—गुरुमुखनादं गुरुमुखवेदम्।

टी०—गुरु के वचनों में विश्वासवाले शिष्य का नाम गुरुमुख है। उसी गुरुमुख को गुरु के उपदेश से नाद जो भीतर अनहद शब्द होता है उसकी प्राप्ति होती है। और गुरुमुख शिष्य को ही वेद के अर्थ का यथार्थ ज्ञान होता है।

मू०—गुरुमुख रहा समाई।

गुरुमुख शिष्य के हृदय में गुरु का उपदेश समा जाता है। याने स्थिर हो जाता है। इसी अर्थ को श्वेताश्वतर उपनिषद् की श्रुति भी कहती है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

जिस पुरुष की गुरु में भी परमात्मा जैसी भक्ति है उसी महात्मा को वेद में कथन किए जो अर्थ हैं वह यथावत् प्रकाशमान हो जाते हैं। इतर मनमुख को नहीं प्रकाशमान होते हैं। दूसरा अर्थ—

मू०—गुरुमुखनादं।

जिस जिज्ञासु ने श्रद्धापूर्वक गुरु के मुख से नाद को याने ओंकार-रूपी शब्द को सुना है।

गुरुमुखवेदं।

जिस पुरुष ने गुरु के मुख से ओंकार के अर्थ को वेदं याने यथार्थ रूप से जाना है। जो ओंकार का वाच्य चेतन विभु परमेश्वर ही है।

गुरुमुख रहा समाई।

तब उस गुरुमुख पुरुष का मन परमेश्वर में समा जाता है याने लीन हो जाता है। जिस जिज्ञासु का मन गुरु के मुख से ओंकार के वाच्य परमेश्वर में समा जाता है अब उस गुरु की स्तुति को करते हैं।

मू०—गुरु ईश्वर गुरु गोरख ब्रह्मा गुरु पार्वती माई।

टी०—वह गुरु कैसे हैं? ईश्वररूप हैं अर्थात् महादेवरूप हैं।

जैसे महादेवजी वैराग्य और ज्ञान करके पूर्ण हैं वैसे वह गुरु भी वैराग्य और ज्ञान से पूर्ण हैं। गो नाम पृथिवी का है उसकी जो रक्षा करे, पालना करे, उसका नाम है गोरख। सो विष्णु ही रक्षा करते हैं और पालना भी करते हैं। उस विष्णु के तुल्य गुरु भी हैं। जैसे विष्णु अपने भक्तों के विरोधी दैत्यों का नाश करके अपने भक्तों की रक्षा करते हैं, वैसे गुरु भी अपने शिष्यों की काम क्रोधादि से रक्षा करते हैं। इस वास्ते वह गोरख विष्णुरूप हैं। जैसे ब्रह्मा सृष्टि को उत्पन्न करता है, वैसे गुरु भी अपने शिष्यों में शम दमादि सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। इसवास्ते वह ब्रह्मा रूप भी हैं। गुरु पार्वतीरूप हैं। मा नाम लक्ष्मी का है। ई नाम सरस्वती का है। जैसे पार्वती दुर्गा और काली आदि मूर्तियों को धारण करके दैत्यों का नाश करती है वैसे गुरु भी शिष्य के लोभ मोहादि दैत्यों का नाश करते हैं इससे वह पार्वतीरूप हैं। जैसे लक्ष्मी अपने भक्तों को धन और ऐश्वर्य देती हैं वैसे गुरु भी शिष्य को मैत्री करुणादि ऐश्वर्य को देते हैं। इसवास्ते वह लक्ष्मी-रूप भी हैं। जैसे सरस्वती अपने भक्तों को विद्यारूपी गुण को देती हैं वैसे गुरु भी अपने भक्तों को ईश्वर में प्रेमरूपी विद्या को देते हैं इसवास्ते वह सरस्वतीरूप भी हैं।

प्र०--आपने जिस गुरु की ऐसी महिमा कही है उस गुरु के मन का निश्चय कैसे जाना जाय ?

उ०। मू०--जेहौंजाणाआखानाहीं कहणा कथन न जाई।

टी०—यदि हम उस गुरु के निश्चय को जाणै याने जानते तब आखा नाहीं क्या हम न कहते ? उनका निश्चय कहणा कथन न जाई अर्थात् कहने में और कथन करने में नहीं आता है।

प्र०—तब फिर अपने निश्चय का शिष्य को कैसे उपदेश करते हैं ?

उ०। मू०—गुरांइकदेबुझाई।

अपने निश्चय को गुरु शिष्य के प्रति एक इशारे से बुझा देते हैं याने समझा देते हैं।

प्र०—वह कौन-सा इशारा है जिससे गुरु अपने शिष्य को समझा देते हैं ?

उ० । मू०—सभनाजीयांकाइकदातासोमैंविसर न जाई ।

सब जीवों के अन्न वस्त्रादि भोगों का दाता एक परमेश्वर है । देनेवाला है । सो हमें क्षणमात्र भी विस्मरण नहीं होता है । हे शिष्य ! तुम भी उस परमेश्वर को क्षणमात्र भी विस्मरण मत करो । ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा । गुरु अपना यह निश्चय शिष्य को समझा देते हैं ।

फल—सोमवार से सैंतीस दिन तक एक हजार रोज जप करे तो वसीकरन होवे ।

मू०—तीर्थनावांजेतिसभावां विणभाणेकिनाइ करी । जेतीसृष्टउपाईवेखाविणकर्माकिमिलैलई ॥ मति विचिरतनजवाहरमाणिक जेइकगुरुकीसिखसुणी । गुराइकदेहिबुझाई सभनाजीआकाइकदाता सो मैं विसरि न जाई ॥

प्र० । मू०—तीर्थनावांजेतिसभावां ।

शिष्य पूछता है यदि मैं गंगा आदि तीर्थों का स्नान ही करता रहूँ अर्थात् तीर्थों में जन्म भर पर्यटन करता रहूँ, तो उस भावां, उस परमेश्वर को प्यारा लगूँगा ?

उ० । मू०—विण भाणे कि नाइ करी ।

विण का अर्थ विना है । नाइ का अर्थ नाम है । कि का अर्थ क्या है । अर्थात् विना नाम के जपने के क्या परमेश्वर को प्यारा हो सक्ता है ? कदापि नहीं हो सक्ता । यह वार्ता बृहन्नारदीय पुराण में भी लिखी है—

किं तीर्थैः किं व्रतैर्होमैः किं तपोभिः किमध्वरैः ।
दानैर्ध्यानैश्च किं ज्ञानैर्विज्ञानैः किं समाधिभिः ॥

किं योगैः किं विरागैश्च जपैरन्यैः किमर्चनैः।
यन्त्रैर्मन्त्रैस्तथा तन्त्रैः किमन्यैरुग्रकर्मभिः॥
स्मरणात्कीर्तनाच्चैव श्रवणाल्लेखनादपि।
दर्शनाद्धारणादेव रामनामाखिलेष्टदम्॥

तीर्थों और व्रतों से तथा होम और तप से क्या होता है ? यज्ञ दान और ध्यान तथा ज्ञान, विज्ञान और समाधि से क्या होता है ? योग, वैराग्य, जप, पूजन, यंत्र, मंत्र तथा तंत्रों से और उग्र कर्मों से क्या होता है ? रामनाम के स्मरण करने से, कीर्तन से, श्रवण से, लिखने से, दर्शन से ही सब इष्टफलों की प्राप्ति होती है। गुरुजी का कथन ठीक है—विना नाम के जपे कोई परमेश्वर को कदापि प्यारा नहीं हो सक्ता है।

प्र०—इस लोक और परलोक के जो विषय भोग हैं उनकी प्राप्ति साधनों ही से होती है या विना साधनों के भी ?

उ०। मू०—जेती सृष्ट उपाई वेखां विण कर्मा कि मिलैलई।

टी०—इस जगत् में ईश्वर की उत्पन्न की हुई जितनी सृष्टि तुम देखते हो उसमें से किसी को भी विणकर्मा, विना कर्मों के क्या कुछ भी मिलता है ? कुछ भी नहीं मिलता। अर्थात् सब सांसारिक भोग जन्मान्तर के कर्मों के अधीन ही हैं। जिसने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये हैं, उन्हें उनके अनुसार ही दूसरे जन्म में फल मिलता है। विना कर्म के कुछ भी नहीं मिलता है। एक दृष्टांत भी है—एक राजा की दो कन्याएँ थीं। जिस समय राजा अपने घर में जाता, तो छोटी कन्या कहती—राजन्! तुम्हारी सदा जय हो। आप ही के प्रताप से हम सब लोग जीते हैं। दूसरी जो बडी कन्या थी वह कहती राजन्! जन्मान्तर के पुण्य-कर्मों के फल को भोगो। प्रतिदिन छोटी और बडी दोनों ऊपर-वाली बातों को कहतीं। एक दिन राजा को बडी कन्या के ऊपर क्रोध आया। वजीर को बुलाकर राजा ने कहा किसी गरीब और दुःखी लडके के साथ इस बडी कन्या की शादी करके इस देश से दोनों को

निकाल दो। वज़ीर राजा की आज्ञा सुनकर बाज़ार में लड़के की खोज में निकला। आगे एक दूसरे राजा के घर एक लड़का पैदा हुआ था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसको एक बड़ा रोग लग गया। वह रोग अनेक उपायों से भी जब दूर न हुआ तब वह लड़का दुःखी होकर अपने देश से रात्रि में फ़क़ीर बनकर इस नगर में भाग आया था। उसी लड़के को वज़ीर ने देखा। अति दुबला, पतला और चलने में असमर्थ। अति मलिन वस्त्रों को पहरे हुए बाज़ार में भीख माँग रहा है। वज़ीर ने उस लड़के को पकड़कर उसके साथ राजा की बड़ी लड़की की शादी कर दोनों को अपने देश से निकाल दिया। वह कन्या उस लड़के को साथ लेकर दूसरे देश में चली गई। एक दिन सवेरे चलते-चलते जब दोनों थक गए तब एक ग्राम के बाहर एक कूप के पास जाकर दोनों बैठ गए। थोड़ी देर के बाद उस लड़के को वहाँ पर बिठाकर कन्या ग्राम में भिक्षा माँगने गई। वह लड़का वहीं सो गया। उसके भीतर एक पतला और लंबा सांप घुसा हुआ था। वही उसका रोग था। वह साँप उसके मुख से आधा निकलकर, वहाँ पर एक बिल थी, उस बिल में भी एक साँप रहता था, उस बिलपर सिर धरकर, बिलवाले साँप से बातें करने लगा। बिलवाले साँप ने उससे कहा तुम क्यों गरीब को दुःख देते हो ? यदि कोई काँजी या खट्टी छाछ इस लड़के को पिलावे, तो तुम टुकड़े-टुकड़े होकर इसके मुख से बाहर आजाओगे। बिलवाले से उसने भी कहा कि-यदि कोई तुमपर गरम पानी डाले तब तुम भी मर जाओ और जिस द्रव्यपर तुम बैठे हो उसके हाथ लग जाय। इतने में कन्या आ गई और उसने दोनों की बातों को सुना। सुनकर तुरंत फिर ग्राम में चली गई और किसी के घर से काँजी माँग लाई और उसे उस लड़के को पिला दी। तुरंत ही लड़के के उदर में से साँप टुकड़े-टुकड़े होकर मुख द्वारा गिर पड़ा और लड़के का रूप बड़ा सुंदर हो गया। शरीर निरोग्य होगया। फिर कन्या ने पानी गरम करके उस बिलवाले सांप पर डाल दिया। वह भी मर गया। उसके द्रव्य को भी कन्या ने निकाल लिया और दोनों लड़के के देश में जाकर राज्य

भोगने लगे। जिसके कर्मों में सुख होता है उसको वह हर तरह से मिलता है। जिसके नहीं होता उसको किसी तरह से भी नहीं मिलता।

दृष्टांत—एक बनिया बड़ा कृपण था। उसने अपने सब धन का स्वर्ण खरीद कर उसकी रीणीयें बनवाकर उन सबको दीवार में गाड़ दीं। उसके पड़ोसी को स्वप्न आया कि दीवार में स्वर्ण की बहुत सी रीणीयें गड़ी हैं उनको तुम निकाल लो। दोनों के घरों में वह दीवार एक ही थी। उसने अपनी तरफ से उसे खोदकर सब निकालकर खाने खिलाने लगा। तब बनिये ने पूछा तुमको द्रव्य कहाँ से मिला। उसने सब हाल कह दिया। बनिया ने राजा के पास जाकर फरयाद की। राजा ने बनिये से कहा तुम्हारे कर्मों में यह नहीं था। इसी के कर्म में था। इसको मिला। बिना कर्मों के किसी को भी कुछ नहीं मिलता है। गुरुजी का कथन ठीक है कि बिना कर्मों से कुछ नहीं मिलता। जीव को उचित है कि कर्मों को करता ही रहे। श्रुति-स्मृति भी कर्मों के करने का ही उपदेश करती हैं।

श्रुतिः—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।

कर्मों को करता हुआ ही सौ बरस जीने की इच्छा करे। स्मृतिः—

श्रौतं चापि तथा स्मार्तं कर्मालम्ब्य वसेद्द्विजः।

तद्विहीनः पतत्येव ह्याजन्मरहितान्धवत्॥

श्रुतिप्रतिपाद्य तथा स्मृति प्रतिपाद्य कर्मों को आश्रयण करके द्विज संसार में रहे। कर्मों से हीन हुआ अंधे की तरह आश्रय से रहित होकर पतित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि बिना कर्मों के ईश्वर भी कुछ फल नहीं देता। जब तक जीव कर्मों को करे। लिखा भी है—

गवां सर्पिः शरीरस्थं न करोति हि पोषणम्।
तदेव कर्मरचितं पुनस्तस्यैव भेषजम्॥
एवं स्वस्वशरीरस्थं सर्पिर्वत्परमेश्वरम्।
विना चोपासनामेव न करोति हितं नृणाम्॥

गौ के शरीर में घृत रहता है, परंतु उसके शरीर की पुष्टि नहीं करता। वही घृत उसके दूध से निकाल कर औषधी बनाकर जब उस को दिया जाता है तब उसके शरीर की पुष्टि करता है। इसी प्रकार घृत की तरह सबके शरीरों में परमेश्वर रहता है, परंतु बिना उपासना करने के कुछ भी फल नहीं देता है। गुरुजी ने कहा भी है कि बिना कर्मों के कुछ भी नहीं मिलता है।

प्र०—कर्म का स्वरूप क्या है ? कर्म कितने प्रकार के हैं ?

उ०—कर्म अनेक प्रकार के हैं। कर्म नाम क्रिया का है। क्रिया शरीर, मन, वाणी और इंद्रियों से होती है। अच्छे बुरे संकल्पों का फुरना मन की क्रिया है। अच्छे संकल्प का नाम शुभ कर्म है। बुरे संकल्पों का नाम अशुभ कर्म है। मन से जो शुभ अशुभ कर्म किए जाते हैं उसका फल भी मन से ही भोगा जाता है। किसी की स्तुति करनी, प्रिय भाषण, सत्य भाषण करना, राम राम कहना इत्यादि वाणी के शुभ कर्म हैं। किसी की चुगुली करनी, निंदा करनी, झूठ बोलना इत्यादि वाणी के अशुभ कर्म हैं। इन दोनों का फल वाणी द्वारा ही भोगा जाता है। किसी दुःखी की सेवा करनी, हाथ से अधिकारी को देना, खिलाना, इस तरह के शारीरिक शुभ कर्म हैं। परस्त्री गमन करना, जीव की हिंसा करनी, इस तरह के अशुभ कर्म शारीरिक कर्म हैं। उनका शुभ अशुभ फल शरीर द्वारा ही भोगा जाता है। कर्म यद्यपि अनेक हैं तथापि वह शरीर, मन, वाणी से ही होते हैं। भक्ति तथा उपासना भी मन की वृत्तिरूप क्रियाएँ हैं। ये भी कर्म के ही अंतर्भूत हो सके हैं। बिना कर्म करने के संसार में कोई जीव भी नहीं रह सका। इस वास्ते सदैव शुभ चिंतन करना सबको उचित है; क्योंकि बिना शुभ चिंतन के दोनों लोकों में सुख कदापि नहीं मिलता है। इसी वास्ते गुरुजी ने कहा है कि बिना कर्मों के कुछ भी नहीं मिलता है।

प्र०—आपने कहा है कि बिना उपासना के और भक्ति के परमेश्वर पुरुषों के हित को नहीं करता है पर शरीर में रहता है सो वह समग्र

शरीर में रहता है या शरीर के किसी एक हिस्से में ? उसका ध्यान किस स्थान में करना चाहिए ?

उ० । मू०—मतिविचरलजवाहिरमाणक ।

टी०—जैसे मणी जवाहिरातरूपी प्रकाशमान रत्न जिस कोठरी में धरे होते हैं उनके प्रकाश से वह कोठरी भी प्रकाशमान प्रतीत होती है । वैसे ही जीवों की बुद्धिरूपी कोठरी में सतचित् आनंदरूपी चेतन ईश्वर सदैव ही प्रकाशमान रहता है । वही बुद्धिरूपी स्थान में उसका ध्यान करना चाहिए । यद्यपि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है । सर्वत्र व्यापक होने से सारे शरीर में भी व्यापक है । तथापि जैसे सूर्य का प्रकाश सब जगह पड़ता है ; पर भित्ती आदि में स्पष्ट नहीं दिखाता; क्योंकि वह मलिन है । वैसे ही ईश्वर का प्रकाश सारे शरीर में होने पर मलिन उपाधि में प्रतीत नहीं होता । जैसे जलादि स्वच्छ वस्तुओं में सूर्य का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई देता है, वैसे ही बुद्धिरूपी स्वच्छ उपाधि में भी ईश्वर का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई देता है ।

प्र०—जब कि सब जीवों की बुद्धियों में ईश्वर का प्रतिबिंब तुल्य ही पड़ता है तब सबको स्पष्ट क्यों नहीं दिखता है ?

उ०—जे इक गुरु की सिख सुणी ।

टी०—जे का अर्थ जो है । सिख का अर्थ शिक्षा है । अर्थात् जो अधिकारी शिष्य गुरु की एक ही शिक्षा को श्रवण करके धारण करता है उसी को अपनी बुद्धि में चेतन का प्रतिबिंब स्पष्ट प्रतीत होता है । दूसरों को नहीं ।

प्र०—गुरु शिष्य को बहुत काल तक शिक्षा देते रहते हैं या एक ही बार शिक्षा देके उसको समझा देते हैं ?

उ० । मू०—गुरां इकदेह बुझाई सो मैं विसर न जाई ।

टी०—गुरु एक इशारे से शिष्य के प्रति उस ईश्वर के स्वरूप के ध्यान को समझा देते हैं ।

प्र०—क्या कोई सुगम रीति से समझा देते हैं या कठिन रीति से ?

उ०—अति सुगम रीति से बता देते हैं ।

मू०—सबनाजीआंका इकदाता।

टी०—वह परमेश्वर संपूर्ण जीवों को कर्मों के फल का देनेवाला एक ही है।

प्र०—ऐसा जानकर फिर क्या करना चाहिये ?

उ०। मू०—सो मैं विसर न जाई।

टी०—गुरु कहते हैं कि हे शिष्य! परमेश्वर हमको जैसे क्षण-क्षण में नहीं भूलता है ऐसे ही तुम भी उसको क्षण-क्षण में मत भुलाओ। अर्थात् क्षण-क्षण में उसका स्मरण करो।

प्र०—उसका स्मरण किस प्रकार से करना चाहिये ?

उ०—राम कृष्णादि जो उसके नाम हैं उसको सदैव जपते रहना चाहिये।

प्र०—कहीं ऐसा लिखा भी है ?

उ०—हाँ लिखा है। मार्कण्डेयपुराणे—

नामस्मरणनिष्ठानां निर्विकल्पैकचेतसाम्।
किं दुर्लभं त्रिलोकेषु तेषां सत्यं वदाम्यहम्॥
अज्ञानप्रभवं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
रामनामप्रभावेण विनाशं जायते ध्रुवम्॥

नाम के स्मरण करने में ही है निष्ठा जिनकी और निर्विकल्प ब्रह्म में है चित्त जिनका उनको तीनों लोकों में क्या दुर्लभ है ? हम सत्य कहते हैं। अज्ञान से उत्पन्न हुआ जो संपूर्ण स्थावर जंगमरूपी जगत् है सो राम नाम के स्मरण के प्रभाव से सब लय हो जाता है। इत्यादि अनेक वाक्य परमेश्वर के नाम के स्मरण में प्रमाण हैं।

फल—रविवार से इक्कीस दिन में सात हजार जप करे तो सब तीर्थों का फल प्राप्त होवे।

मू०—जे युगचारे आरजा होरद सूणी होइ।
नवांखंडा विचजाणी ये नाल चलै सब कोइ॥

चंगानाउ रखाय कै यश कीरत जग लेइ ।
जे तिसनदर न आवई तवात न पूछै केइ ॥
कीटा अन्दर कीटकर दोसी दोसधरे ।
नानक निर्गुण गुण करे गुणवन्त्यां गुणदे ॥
तेहा कोइ न सूझई जितिसगुण कोइ करे ।

प्र०—बहुत बड़ी आयुवाला होने से और संसार में अति प्रसिद्ध होने से ही परमेश्वर भी अपनी नजर कभी न कभी कर ही देगा फिर नाम के स्मरण की क्या जरूरत है ?

उ० । मू०—जे युग चारे आरजा होरदसूणी होय ।

टी०—कलियुग की आयु चार लाख बत्तीस हजार वर्ष की है, द्वापर की आठ लाख चौंसठ हजार वर्ष की है, त्रेता की सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष की है और सत्ययुग की चौंतीस लाख छप्पन हजार वर्ष की है। कुल चारों युगों की आयु चौंसठ लाख अस्सी हजार वर्ष की है। इन चारों युगों की आयु के बराबर भी यदि किसी पुरुष की आयु हो या इससे भी दशगुना और अधिक आयुवाला भी पुरुष हो जाय ।

मू०—नवांखंडा विच जाणी ये नालचलै सब कोइ ।

टी०—और नवखंड पृथिवी पर सब कोई उसको जानता भी हो और उसकी प्रतिष्ठा के लिये सब कोई याने बहुत से लोग उसके साथ भी चलते हों ।

मू०—चंगा नावरखाय के यश कीरति जग लेइ ।

और उसने अपना नाम भी सबसे श्रेष्ठ रखाया हो और अपने यश तथा कीर्ति को भी वह प्राप्त हो अर्थात् जहाँ पर जाय लोगों से अपने यश को भी सुना करे ।

मू०—जे तिस नदर न आवई ।

टी०—यदि उसकी दृष्टि में परमेश्वर न आवे अर्थात् नास्तिक अनीश्वरवादी हो ।

मू०—त बात न पूछै केइ।

तब आस्तिकों की सभा में उसकी वार्ता को भी कोई नहीं पूछता है।

प्र०—नास्तिक का मत क्या ?

उ०—नास्तिक कहता है इस जगत् का कर्ता कोई भी ईश्वर नहीं है ! परस्पर स्त्री-पुरुष के संयोग होने से जीवों की उत्पत्ति होती है। बीज से बीज की तरह उत्पन्न होता चला जाता है। देह से भिन्न कोई भी परलोक में गमन करनेवाला आत्मा नहीं है। देह ही आत्मा है। जैसे चूना, कत्था, सुपारी और पान चारों के मिलने से रक्तता उत्पन्न होती है, वैसे ही चारों भूतों के मिलने से शरीर में चेतनता भी उत्पन्न होती है। न कोई नरक है और न कोई स्वर्ग। इस लोक में सुंदर-सुंदर भोगों के भोगने का नाम स्वर्ग है। रोगी हो जाना ही नरक है। इस लोक में नाम और प्रतिष्ठा पैदा करना और स्वतंत्र होने का नाम ही मोक्ष है। प्रत्यक्ष से अतिरिक्त याने भिन्न कोई प्रमाण भी नहीं है। जो वस्तु दिखती है, वह है। जो नहीं दिखती है, वह नहीं है। जैसे मदिराकार-परिणत द्राक्ष और मौहों के बीजों में मदशक्ति उत्पन्न होती है, वैसे ही देहाकार परिणत चारों भूतों में ज्ञानशक्ति उत्पन्न होती है। मैं गौर हूँ, मैं श्याम हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, ये सब प्रतीतियाँ देह के धर्मों को विषय करती हैं। इसी से जानाजाता है कि देह ही आत्मा है। इस तरह का नास्तिक का मत है। सो भी समीचीन नहीं है; क्योंकि युक्तिविरुद्ध है। इस संसार में कोई जन्म से ही सुखी है और कोई जन्म से ही दुःखी है; कोई जन्म से ही अंधा है, कोई काना है, कोई कुष्ठी है, कोई नीरोग है, कोई धनी है और कोई निर्धन है। इन बातों का कारण क्या है ? यदि वीर्य का ऐसा स्वभाव है, तब हम पूछते हैं कि एक ही माता-पिता के वीर्य से बहुत से लड़के पैदा होते हैं। कोई अंधा, कोई काना, कोई नीरोग, कोई धनी, कोई दरिद्री, होता है। यदि वीर्य का ही स्वभाव होता तब सब एक ही तरह के होते। क्योंकि वीर्य का स्वभाव तो एक ही तरह का होता

ह जैसे गेहूँ के बीज से गेहूँ ही उत्पन्न होता है। चना नहीं होता। एक ही वीर्य से विलक्षण-विलक्षण क्यों हुए ? यदि अन्न का स्वभाव मानोगे तब भी नहीं बनेगा ? क्योंकि अन्नों के स्वभाव वैद्यक में गरम शरद वगैरह लिखे हैं। इस तरह के नहीं लिखे हैं। फिर जो माता-पिता एक ही अन्न को खाते हैं और उनके एक ही काल में दो लड़के इकट्ठे उत्पन्न होते हैं। एक ही वीर्य से उन दोनों की सूरतें भिन्न-भिन्न होती हैं। एक पंडित और धनी होता है तो दूसरा निर्धन होता है। विलक्षणता क्यों होती है ? अन्न भी एक ही खाया -.या है और वीर्य भी एक है। विलक्षणता होती जरूर है। इसी से जाना जाता है कि वीर्य का और अन्न का स्वभाव विलक्षणता में कारण नहीं है। फिर वंध्या में जाकर वीर्य व्यर्थ हो जाता है इसी से साबित होता है जीवों की विलक्षणता में कोई दूसरा ही कारण है। वीर्य और अन्न कारण नहीं है। यदि कर्मों को कारण मानोगे तब देह से भिन्न आत्मा साबित हो जायगा; क्योंकि उत्पत्ति से पूर्व यह शरीर था नहीं जो कर्म करता, तब विना किए कर्मों के फल की प्राप्ति हो नहीं सकी। और फलरूपी जीवों को जुदा-जुदा देखते हैं। इसी से साबित होता है कि देह से आत्मा भिन्न है। जिसने पूर्व जन्म में कर्म किये हैं वह उत्तर जन्म में उनके फल को भोगता है। देह को यदि आत्मा मानोगे, तो अकृताभ्यागम दोष भी आवेंगे। अर्थात् विना कर्मों के फल की प्राप्ति और किए हुए कर्मों का विना फल देने के नाश। इस शरीर को जितना भोग मिलता है विना ही कर्मों के; क्योंकि उत्पत्ति से पूर्व इसने कोई कर्म नहीं किया। इस शरीर से जितने भी शुभ अशुभ कर्म करता है, नाश से उत्तर यह शरीर रहेगा नहीं तब वह सब व्यर्थ होजायँगे। पर ऐसा होता नहीं है। इसलिये तुमको देह से भिन्न आत्मा मानना पड़ेगा। नास्तिक ने भूतों के मेल से चेतनता की उत्पत्ति मानी है, वह भी असंगत है; क्योंकि मृतक शरीर में व्यभिचार है। चारों भूतों का मेल तो उसके शरीर में भी है, पर चेतनता नहीं है। महुओं के तथा दाख के बीजों के परिणाम का जो ज्ञानशक्ति की उत्पत्ति में दृष्टान्त नास्तिक ने दिया है, वह भी

असंगत है; क्योंकि उनका परिणाम आपसे आप नहीं होता है। दूसरे पुरुष के अधीन है। वैसे जगत् की उत्पत्ति भी आपसे आप नहीं होती है। किसी चेतन के अधीन है। कार्य को देखकर कारण का अनुमान होता है। जैसे घट को देखकर कुम्हार का अनुमान होता है। घट आपसे आप नहीं बनता है। वैसे जगत्‌रूपी कार्य को देखकर ईश्वर का अनुमान होता है। जैसे चलते हुए रथ को देखकर दूर से चलानेवाले सारथी का अनुमान होता है। कोई इसका चलानेवाला है। वैसे चलते-फिरते मनुष्यों को देखकर चलानेवाले आत्मा का अनुमान होता है। जब आत्मा शरीर को त्याग देता है तब मुर्दा नहीं चल सक्ता है; क्योंकि चलानेवाला उसमें नहीं रहा। अनुमान प्रमाण भी नास्तिक को मानना पड़ेगा। यदि नहीं मानेगा तब उसके मत में दोष आवेंगे सो दिखाते हैं। नास्तिक से हम पूछते हैं कि तुम्हारा वाक्य प्रमाण है या नहीं है ? यदि कहो है, तब प्रत्यक्ष से भिन्न शब्द की भी प्रमाणता सिद्ध हुई। यदि कहो नहीं है, तब तुम असत्यवादी हुए। मिथ्यावादी का कथन कदापि प्रमाण नहीं हो सक्ता है। शब्द प्रमाण की भी सिद्धि हो गई। नास्तिक कहता है जो नहीं दिखाता है वह नहीं है। जो दिखाता है वही सत्य है। भोजन में तृप्ति नहीं दिखाती है और खाने से क्षुधा की निवृत्ति होती है, इस वास्ते कारणरूप भोजन को देखकर तृप्ति का अनुमान होता है। यदि कहो जीवात्मा ईश्वरात्मा नहीं दिखाते हैं, इस वास्ते हम नहीं मानते। सो भी नास्तिक का मानना झूठा है; क्योंकि विद्यमान पदार्थ भी आठ हेतुओं से नहीं दिखता है। सांख्यकारिका—

अतिदूरात्सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात्समानाभिहाराच्च॥

आकाश में पक्षी जब अति दूर उड़ता है तब नहीं दिखता है। अति समीप होने से भी पदार्थ नहीं दिखता है। जैसे नेत्र में सुरमा अति समीप है पर दिखाता नहीं। बाह्य चक्षुरादि इन्द्रियों के नष्ट होने पर भी समीपवर्त्ती पदार्थ नहीं दिखाता। मन के अस्थिर होने पर

भी पदार्थ नहीं दिखता । जैसे बाण बनानेवाले के सामने से राजा की फौज चली गई और उसका मन बाण में लगा था उसको नहीं दिखाई पड़ी । या जो काम करके अनवस्थित चित्त है उसको भी समीपवर्त्ती पदार्थ नहीं दिखाता है । अतिसूक्ष्म होने से भी पदार्थ नहीं दिखाता है । जैसे नेत्रों के सामने अनंत परमाणु उड़ रहे हैं और नहीं दिखाते हैं । बीच में परदा होने से परदे की दूसरी तरफ़ विद्यमान पदार्थ भी नहीं दिखाता है । अभिभव होने से याने एक करके तिरस्कृत्य होने से भी दूसरा पदार्थ नहीं दिखाता है । जैसे नक्षत्रादि दिन में विद्यमान भी हैं तब भी सूर्य के प्रकाश करके तिरस्कृत होने से नहीं दिखाते हैं । समानाभिहार से याने मिल जाने से भी नहीं दिखाता है । जैसे बादल की ताल के जल में मिलने से और दूध में पानी मिलने से भी नहीं दिखाता है । इन प्रमाणों से नास्तिक मिथ्यावादी साबित होता है । फिर जब नास्तिक विदेश में जाते हैं तब पीछे उनकी स्त्रियों को विधवा हो जाना चाहिए; क्योंकि उनके तो जैसे मृतक नहीं दिखाता है, वैसे विदेशवाला भी नहीं दिखाता है । दोनों तुल्य हैं । जो नास्तिक ने देह की आत्मता में प्रतीतियों को प्रमाण दिया है मैं गौर हूँ, श्याम हूँ, सो ठीक नहीं है ; क्योंकि जिस काल में पुरुष के शरीर में कोई व्यथा होती है उस काल में वह कहता है मेरा शरीर बड़ा दुःखी है । मेरे कान में दर्द है ; मेरी आँखों में पीड़ा है, मेरा ठिकाना नहीं है, इन्हीं प्रतीतियों से साबित होता है कि देह से आत्मा भिन्न है ; क्योंकि अपने से भिन्न पदार्थ में ही मेरा शब्द होता है । जैसे मेरा घर, मेरा वस्त्र कहता है । क्योंकि घर से और वस्त्र से पुरुष भिन्न है । वैसे शरीरादि में मेरा शब्द होता है । शरीरादि से भी वह भिन्न है । वैसे ही जड़ जगत् से भी ईश्वर भिन्न है । जड़ जगत्कर्त्ता है । यदि कहो हम स्वभाव को ही जगत् कारण मानेंगे ; ईश्वर मानने की क्या जरूरत है ? तब हम पूछते हैं, वह स्वभाव जड़ है या चेतन है ? यदि जड़ कहो तब जड़ कर्त्ता कदापि नहीं हो सक्ता है । यदि चेतन कहो तब वही ईश्वर है । फिर वह

चेतन स्वभाव जड़ से भिन्न है या अभिन्न है ? यदि अभिन्न कहो तब जड़ चेतन का अभेद कदापि हो नहीं सक्ता; क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी हैं। शीत उष्ण की तरह यदि भिन्न कहो तब जो जड़ से भिन्न है और चेतन है वही ईश्वर है। इसी तरह जीवात्मा भी चेतन है। वह भी शरीर से भिन्न है। और विषयों का नाम तथा स्वतंत्र होने का नाम मुक्ति कदापि सिद्ध नहीं हो सक्ती है, क्योंकि सब भोगों के साथ रोग लगे हुए हैं और संसार में स्वतंत्र कोई भी जीव नहीं दिखाता है। सबको काल का भय बना है। राजा को भी मृत्यु का भय बना है। नास्तिक सर्वथा मिथ्यावादी है। इसी पर गुरुजी ने कहा है कि यदि नास्तिक की दृष्टि में परमेश्वर नहीं आता है, तो आस्तिकों की सभा में उसका नाम भी कोई नहीं लेता है। उसकी कोई वार्त्ता भी नहीं पूछता है।

प्रश्न—ऐसे नास्तिक को ईश्वर कुछ दंड भी देता है या नहीं ?

उत्तर—देता है।

मू०—कीटां अंदर कीट कर दोसी दोस धरे।

टी०—यदि उस नास्तिक को पूर्वले जन्मों के पुण्यों से ऐश्वर्य की प्राप्ति भी हुई है; क्योंकि ईश्वर न्यायकारी है तथापि वर्तमान जन्म में जो उसने नास्तिकपना अख़त्यार किया है इसकी सजा उसको परमेश्वर इस तरह से देता है कीटां अंदर कीटकर कीटों में भी जो अति तुच्छ जातिवाले कीट हैं उनमें उसको कीट कर देता है और अति नीच जातिवालों कीटों की योनि में उसका जन्म देता है; क्योंकि वह दोसी याने दोषवाला है और दोष धरे। लोग और भी उस पर दोषों को धरते लगाते हैं। कहते हैं यह कीट बड़ा नीच है। वह बार बार ही कीटों की योनियों में जन्मता मरता ही रहता है। इसी वार्त्ता को कठवल्ली उपनिषद् में यमराज ने नचिकेता के प्रति भी कहा है—

नसाम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमद्यान्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥

अज्ञानी नास्तिक को परलोक और उसकी प्राप्ति का कोई साधन नहीं दिखाता है; क्योंकि वह धन के मोह करके प्रमाद को प्राप्त हो रहा है। वह कहता है; ये ही लोक है। परलोक कोई भी नहीं है। ऐसा मानता है। यमराजजी कहते हैं वह बार-बार हमारे ही वश में प्राप्त होता है और मैं उसको पुनः-पुनः नीच योनियों में फेंकता हूँ। दूसरे श्रुति भी नास्तिक की निंदा करती है—

असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत्।
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनन्ततो विदुरिति ॥

जो कहता है ईश्वर ब्रह्म नहीं है उसका अपना ही असत् याने नाश होता है। जो कहता है ब्रह्म है उसका अपना ही सत्य होता है। स्मृति भी इसी अर्थ को कहती है—

ब्रह्म नास्तीति यो ब्रूयाद् द्वेष्टि ब्रह्मविदश्च यः।
अभूतब्रह्मवादी च त्रयस्ते ब्रह्मघातकाः ॥

जो कहता है ईश्वर ब्रह्म नहीं है, जो आस्तिक ब्रह्म को माननेवाले के साथ द्वेष करता है और जो बिना ही ईश्वर के जगत् की उत्पत्ति को मानता है, ये तीनों ब्रह्मघाती हैं। याने ब्रह्महत्यारे महापातकी हैं। इसी पर गुरुजी ने भी कहा है कि उस नास्तिक को कीटों में भी जो नीच योनियाँ हैं, उनमें परमेश्वर उत्पन्न करता है।

प्रश्न—जो आस्तिक उसके भक्त हैं उनको परमेश्वर क्या करता है?

उ० मू०—नानक निर्गुण गुण कर गुणवंत्या गुणदेह।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं कि वह परमेश्वर आस्तिक गुणहीन अपने भक्तों को गुणोंवाला कर देता है। अर्थात् उत्तम-उत्तम भोग ऐश्वर्य को देता है। अथवा उत्तम जाति आदिक गुणों से हीन अपने भक्तों को उत्तम जाति और ऐश्वर्यादि वाला कर देता है। जो गुणवंत हैं याने उत्तम जाति आदि गुणों से संपन्न हैं उनको और अधिक दैवी-संपदावाले गुणों को दे देता है।

प्र०—परमेश्वर के भक्त को कोई फिर माया में भ्रमा सक्ता है या नहीं ?

उ०—नहीं।

मू०—तेहाकोयनसूझई जेतिसगुणकोइकरे।

टी०—संसार में ऐसा कोई पुरुष भी नहीं दिखाता है जो उस भक्त को माया में भ्रमा दे या मोहादि गुणों से फिर उसको युक्त कर दे। इसी संबंध में एक दृष्टांत भी कहते हैं—एक राजा ने एक देश को फतह किया। उस देश का राजा युद्ध में मारा गया। उसके कोई लड़का नहीं था। तब इस राजा ने उस नगर के लोगों से पूछा पूर्वले इस देश के राजों के वंश में कोई है या नहीं ? लोगों ने कहा कि एक है। मगर उसने सब त्याग करके परमेश्वर की भक्ति अख्तयार की है। राजा ने पूछा वह कहाँ रहता है ? लोगों ने कहा, वह मसानों में रहता है। राजा ने अपने आदमी के हाथ उसको बुला भेजा; पर वह नहीं आया। तब आपही राजा उसके पास गया और उससे कहा जो तुम्हारी इच्छा हो सो तुम हमसे माँगो। हम तुमको देंगे। उसने कहा हमको किसी वस्तु की भी जरूरत नहीं है। तब राजा ने कहा यदि तुम्हारी इच्छा राज भोगने की हो तो कहो हम तुमको राजा बना दें। उसने कहा मेरे को राजा बनने की भी इच्छा नहीं। तब फिर राजा ने कहा और तुम क्या चाहते हो ? तब उसने कहा वह जीना जिसके साथ मरना न हो और वह जवानी जिसके साथ बुढ़ापा न हो, वह सुख जिसके साथ दुःख न हो, वह संपत्ति जिसके साथ आपत्ति न हो, और वह खुशी जिसके साथ रंज न हो, यदि राजन ! ये चीजें तुम्हारे पास हों तो हमको दे। राजा ने कहा, ये सब तो मेरे पास नहीं हैं किंतु ईश्वर के पास ही ये सब हैं। तब उसने कहा जिस ईश्वर के पास ये सब हैं और इन अलौकिक पदार्थों के भी देने में समर्थ है मैं उसको छोड़कर तुमसे ये अनित्य दुःखरूप राज को लेकर क्या करूँ ? आप जाइये मेरे को कोई चीज की भी जरूरत नहीं है। राजा चला गया। इसी

पर गुरुजीने भी कहा है, संसार में ऐसा कोई भी नहीं है, जो परमेश्वर के भक्त को फिर माया के गुणों करके युक्त कर दे।

फल--सोमवार से ६१ दिन हज़ार रोज़ जपें तो उसकी उमर ज़्यादह हो और ख़ुश रहे।

मू०—सुणिऐसिद्धपीरसुरनाथ । सुणिऐधरतिधवल आकाश ॥ सुणिऐदीपलोहपाताल । सुणिऐपोहिनसकै काल ॥ नानकभक्तासदाविगास। सुणिऐदूखपापका नास॥

अब परमेश्वर के नाम के माहात्म्य को दिखाते हैं।

मू०—सुणिये सिद्धपीरसुरनाथ।

टी०--ग्रंथों में सुना है, जो परमेश्वर के नाम का स्मरण करके सिद्ध और पीर तथा देवता और नाथ अपनी-अपनी पदवी को प्राप्त हुए हैं अथवा सिद्धों के पीर याने गुरु जो गुरु गोरखनाथजी हैं और सुर जो देवता उनके नाथ याने स्वामी जो इंद्रिय हैं ये दोनों नाम का स्मरण करके ही महान् पदवी को प्राप्त हुए हैं। अग्निपुराण में प्रह्लाद ने कहा भी है—

यत्प्रभावादहं साक्षात्तीर्णो घोरभयार्णवम्।
अनायासेन बाल्येपि तस्माच्छ्रीनाम कीर्त्तनम्॥

प्रह्लादजी कहते हैं जिस रामनाम के प्रभाव से मैं बाल्यावस्था में ही घोर संसाररूपी समुद्र को तर गया उसी हेतु से उस नाम का ही कीर्तन करना श्रेष्ठ है।

यदीच्छेत्परमां प्रीतिं परमानन्ददायिनीम्।
तदा श्रीरामभद्रस्य कार्यंनामानुकीर्तनम्॥

यदि तुम लोग परमेश्वर से आनंद के देनेवाली प्रीति की इच्छा करते हो, तो तुम कल्याणरूप श्रीराम नाम का कीर्तन करो।

मू०—सुणिऐ धरती धवलअकास।

टी०—शास्त्रों में और महात्मों से सुना है कि धरती, पृथिवी और धवल

बादल तथा आकाश ये सब परमेश्वर के नाम के प्रभाव से ही निराधार स्थित हैं। अथवा धरती का धर्म जो क्षमा और बादल का धर्म सुहृदता और आकाश का धर्म जो अडोलता है ये सब गुण पुरुष को नाम के स्मरण से ही प्राप्त होते हैं। इन्हीं गुणोंवाले पुरुष की दोनों लोकों में प्रतिष्ठा होती है। अथवा धरती नाम धारण करने का है और धवल नाम शुद्ध का है अर्थात् महात्मों से सुना है कि जो नाम का स्मरण करनेवाला शुद्ध और अडोल धर्म को धारण करता है और धर्म का धारण करनेवाला ही निर्भय होता है; क्योंकि और सब पदार्थों को मरते समय इसी लोक में छोड़ जाता है केवल धर्म ही परलोक में सहायता के लिये इसके साथ जाता है। सो मनु ने कहा भी है—

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥

जब पुरुष शरीर को त्याग देता है, तब उसके मृतक शरीर को संबंधीजन उठाकर काष्ठ और मट्टी के ढेले के समान श्मशान में फेंक कर घर को चले आते हैं। एक धर्म ही उसके साथ लोकांतर जन्मांतर में जाता है। इस हेतु परलोक में सहायता के लिये धर्म का ही नित्य संग्रह करे। धीरे-धीरे; क्योंकि धर्म की ही सहायता करके पुरुष दुस्तर संसार को तर जाता है।

प्र०—धर्म का स्वरूप क्या है।

मनुः—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकन्धर्मलक्षणम्॥

धैर्य १, क्षमा २, दम ३, चोरी न करनी ४, पवित्र रहना ५, इंद्रियों का निग्रह करना ६, ज्ञान होना ७, विद्या होनी ८, सत्य

बोलना ६ और क्रोध से रहित होना ये दश धर्म के लक्षण हैं। और कहीं ८ प्रकार का भी कहा है—

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥

ईश्वर का पूजन, ध्यान, दान करना, तप करना, सत्य भाषण करना, धैर्यता होनी, क्षमा होनी, लोभ न होना ये आठ प्रकार के धर्म के मार्ग कहे हैं। गुरुजी का कथन ठीक है कि धर्म का धारण करने-वाला ही निर्भय होता है।

मू०—सुणिऐदीपलोहपाताल।

शास्त्रों में और महात्मों से सुना है कि परमेश्वर के भक्तों को सात द्वीपों के और सात ऊपर के लोकों के और सात नीचे के पातालों का और उनके अंतर्वर्ती सब पदार्थों का ज्ञान हो जाता है।

दृष्टांत—एक मुरारीदासजी परमेश्वर के बड़े प्रेमी भक्त थे। वह नित्य कथा कहते थे। जब कथा कहने लगते थे तब उनके नेत्रों से प्रेम के मारे जल की धारा चली जाती थी। एक दिन उनकी कथा में राजा आकर बैठ गए, तब राजा ने देखा कि पंडितजी के और सब श्रोतों के नेत्रों से जल की धारा चल रही है और हमारे नेत्र में जल नहीं आता है। तब राजा ने चोरी से आँख में मिरच लगा ली, तब उनकी आँख से भी पानी गिरने लगा। जब मुरारीदासजी की निगाह उनकी तरफ पड़ी तब उन्होंने कहा जिस नर की आँख में प्रेम का जल नहीं आता है वह आँख में मिरच लगा कर पानी बहाते हैं। इसी तरह बहुत-सी जगह भक्तों ने दूसरों के चित्तों की वार्त्ता को बताया है। नारदजी बड़े भक्त हुए हैं। उनको सब लोगों का ज्ञान रहता था। परमेश्वर के भक्तों को तीनों लोकों में कोई भी पदार्थ अज्ञात नहीं है।

मू०—सुणिऐपोहिनसकैकाल।

शास्त्रों में सुना है कि परमेश्वर के भक्तों को काल भी नहीं पोह सकता है याने स्पर्श नहीं कर सकता है।

॥ अग्निपुराणे ॥

न भयं यमदूतानां न भयंरौरवादिकम्।
न भयं प्रेतराजस्य श्रीमन्नामानुकीर्त्तनात् ॥

कल्याणरूप नाम के कीर्त्तन करनेवाले भक्तों को यम के दूतों से भी भय नहीं होता और न रौरवादिक नरकों से ही। यमराज से याने काल का भय भी उनको नहीं होता है।

मू०—नानकभक्तांसदाविगास।

गुरु नानकजी कहते हैं कि परमेश्वर के भक्तों का मन सदैव ही प्रसन्न रहता है।

मू०—सुणिऐदूखपापकानाश।

और शास्त्रों में सुना है उनके दुःखों का और उनके अनेक जन्मों के पापों का नाश भी हो जाता है। अथवा शास्त्रों में सुना है कि भक्तों के संग करने से इतर जीवों के भी दुःख और पाप दूर हो जाते हैं। ये वार्त्ता देवीभागवत में भी कही है—

स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः।
जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥

स्त्रीघाती हो, गोघाती हो, कृतघ्न हो, ब्रह्मघाती हो, गुरु की स्त्री से गमन करनेवाला हो, भगवान् कहते हैं मेरे भक्त के दर्शन और स्पर्श से वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

एकादशीविहीनश्च सन्ध्याहीनोऽतिनास्तिकः।
नरघाती भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥

जो एकादशी व्रत से हीन है, संध्योपासन से भी हीन है, अति नास्तिक है, नरघाती है, वह मेरे भक्त के दर्शन और स्पर्श से ही पवित्र हो जाता है। दृष्टांत—एक धनुर्दास बड़े नास्तिक और मद्यपान के करने-वाले बड़े भारी दुराचारी थे, श्रीरामजी के जन्मउत्सव के मेले में यह एक रंडी को साथ लेकर और शराब पीकर गए। वहाँ धूप में उन्होंने

रंडी के छाता लगाया और आप धूप में ही उस छाते को पकड़े हुए उसके साथ साथ घूमने लगे। उसी मेले में एक वृक्ष के नीचे रामानुजजी बैठे थे। उन्होंने धनुर्दास की तरफ देखा, पर धनुर्दास का मन ऐसा उस समय रंडी में लगा था कि उसको मेले की कोई भी खबर नहीं थी। तब रामानुजजी ने विचारा जैसा कि इसका मन रंडी में लगा है यदि ऐसा परमेश्वर में लग जाय तो वह जीवन्मुक्त हो जाय। उन्होंने धनुर्दासजी को बुलाकर उपदेश किया और दोनों के मन को विषयों से हटाकर परमेश्वरपरायण किया। दोनों थोड़े काल में जीवन्मुक्त हो गए। इसी पर गुरु नानकजी ने कहा है, भक्तों का संग करनेवालों के भी सब दुःख और पाप दूर हो जाते हैं।

फल—नौ हजार इकतालीस दिन में जपै तो सब पढ़ने का फल पावै।

मू०—सुणीऐ ईश्वर ब्रह्मा इन्द।
सुणीयै मुखसाला हए मन्द॥
सुणीयै जोग जुगति तन भेद।
सुणीयै सासत स्मृत वेद।
नानकभक्तां सदा विगास।
सुणीयै दूख पापका नाश॥
मू०—सुणीऐ ईश्वर ब्रह्मा इन्द।

टी०—महात्मों से और शास्त्रों में सुना है कि जो परमेश्वर का भ[क्त है वह] महादेव और ब्रह्मा और चंद्रमा के तुल्य प्रतापवाला होता है अथ[वा] परमेश्वर की भक्तिरूपी पुरुषार्थ करके ही महादेव और ब्रह्मा त[था] चंद्रमा की इतनी बड़ी भारी पदवी को प्राप्त हुए हैं इसी वार्ता व[ो] योगवाशिष्ठ में कहा है—

पौरुषेण प्रयत्नेन त्रैलोक्यैश्वर्यसुन्दराम्।
कश्चित्प्राणिविशेषो हि शक्रतां समुपागतः॥

कोई एक पुरुष भक्तिरूपी प्रयत्न करके त्रैलोकी के ऐश्वर्यवाली इंद्र पदवी को प्राप्त होता है ।

पौरुषेणैव यत्नेन सहसांभोरुहास्यदाम् ।
कश्चिदेव चिदुल्लासो ब्रह्मतामधितिष्ठति ॥

कोई एक जीव भक्तिरूपी पुरुषार्थ करके कमलासन याने ब्रह्मा पदवी को प्राप्त हुआ है ।

सारेण पुरुषार्थेन स्वेनैव गरुडध्वजः ।
कश्चिदेव पुमानेव पुरुषोत्तमतां गतः ॥

भक्तिरूपी सार करके ही कोई पुरुष विशेष विष्णु की पदवी को प्राप्त हुआ है ।

मू०—सुणीयै मुख सालाहण मन्द ।

टी०—मंद नाम मंदमती नीच जातिवाले का है । शास्त्रों में सुना है कि बड़े बड़े नीच जातिवाले भी भक्ति के प्रताप से महात्मा के मुखों करके श्लाघा करने के योग्य होगए हैं और होजाते हैं । भगवान् ने ही गीता में कहा है ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिनिगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

भगवान् कहते हैं यदि सुष्ठि दुराचारी भी मेरे को अनन्य मन होकर भजै तो उसको भी तुम साधु मानो; क्योंकि उसने उत्तम निश्चय किया है वह मेरा भक्त शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और नित्य मोक्ष को प्राप्त होता है ।

॥ भागवते ॥

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्य्यहाघवान् ।
श्वान्दः पुष्कसको वापि संशुद्ध्येयस्य कीर्तनात् ॥

ब्रह्मघाती, पितृघाती, गोघाती, मातृघाती, आचार्यघाती, जो पापी हैं चांडाल, बालघाती भी उस परमेश्वर के नाम के स्मरण से शुद्ध हो जाते हैं। दृष्टांत—एक विप्र याने ब्राह्मण बड़ा वेश्यागामी था। एक वेश्या के साथ उसका बड़ा प्रेम था। नित्य ही सवेरे जाकर जब प्रथम उसका दर्शन कर लेता तब पीछे और सब काम करता। एक दिन उसके घर में श्राद्ध था। वह उस दिन उस वेश्या के पास न जा सका तब रात्रि के समय में वह एक थाल में लड्डू जलेबी भर और मद्यपान कर के चला। अँधेरी रात्रि में मद्य के नशे में उसका पाँव फिसला। वह एक गढ़े में गिरा और गिरती दफ़ा अरी लेरी प्यारी ऐसा मुख से कहने लगा। तब उसके मुख से निकला ले हरी। इतना कहते ही उसके प्राण निकल गए। यमदूत उसको लेने आये। इधर विष्णु के गण पहुँचे। यमदूतों से छुड़ाकर उसको वैकुंठ में ले गए। ऐसा परमेश्वर के नाम का महत्त्व है। इसी पर गुरुजी कहते हैं कि अति नीच जाति-वाले मंद भी मुख से परमेश्वर की सलाहण याने स्तुति करते हुए तर जाते हैं, ऐसा शास्त्रों में सुना है।

मू०—सुणीयै जोगजुगति तन भेद।

महात्माओं से सुना है कि परमेश्वर के भक्तों को योगाभ्यास करने की आपसे आपही अनेक युक्तियाँ मिल जाती हैं। योग के मिलने से शरीर के भेद को भी वह जान जाते हैं।

प्र०—योग किसको कहते हैं ?

उ०—चित्त की वृत्तियाँ जो बाह्य विषयों की तरफ फैली हैं उनके निरोध का नाम ही योग है।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा।

वह योग ईश्वर में अनन्यभक्ति करके प्राप्त होता है। और तन जो शरीर है उसका भेद भी उसको फिर मालूम हो जाता है। अर्थात् शरीर के भीतर जो कमल हैं और जो नाड़ियाँ हैं उन सबके भेद को वह जान लेता है। अब उसको दिखाते हैं। शरीर के भीतर गुदा स्थान में एक मूलाधार चक्र है और कमल की तरह उसके चार पत्र हैं और

गणपति अभिमान उसका देवता है। रक्त उसका वर्ण है। फिर लिं
स्थान में स्वाधिष्ठान नाम करके चक्र है। पीत उसका वर्ण है। उस
छः पत्र हैं। ब्रह्मा उसका देवता है। फिर नाभिस्थान में मणिपूर
नाम करके चक्र है। विष्णु उसका देवता है। नीलवर्ण है। दस उस
पत्र हैं। हृदयस्थान में अनहद चक्र है। दो उसके पत्र हैं। शि
उसका देवता है और श्वेत उसका वर्ण है। कंठस्थान विशुद्धि च
है। सोरह उसके पत्र हैं। जीवेश्वर उसका देवता है और धूम्रव
है। त्रिकुटी स्थान में आज्ञा चक्र है। दो उसके पत्र हैं। गुरु उसका देवता है
विजुली की तरह उसका वर्ण है। शरीर के भीतर नाभि से नी
कंदस्थान से बहत्तर हजार सूक्ष्म नाड़ियाँ निकली हैं। उनमें प्राणवा
विचरती रहती है। एक ही प्राणवायु स्थान के भेद से पाँच प्रकार
भेदवाली कही जाती है। प्राण अपान उदान व्यान समान ये उस
नाम हो जाते हैं। प्राणवायु का स्थान हृदय है। अपान वायु का स्था
गुदा है। समान वायु का नाभि स्थान है। उदान वायु का कंठ स्था
है। व्यान वायु सारे शरीर में व्याप्त होकर रहती है। प्राण वायु
चलने से चित्त भी चलता है। उसके स्थिर होने से चित्त भी स्थि
होता है। चित्त के स्थिर करने के लिये योगी प्राणायाम को करते हैं

प्र०—प्राणायाम विना भी कोई चित्त के स्थिर करने का सुग
उपाय है ?

उ०—है।

योगसूत्रयथाऽभिमतध्यानाद्वा।

जो मूर्ति अपने को अति प्यारी हो। रामकृष्ण की हो या किसी
और देवताविशेष की हो या किसी मनुष्यविशेष की हो। उसमें भी
चित्त का निरोध करने से अर्थात् उसी का पुनः पुनः ध्यान करने से
भी चित्त की स्थिरता होती है।

प्र०—आसन कितने हैं ?

उ०—जितनी योनियाँ हैं उतने ही आसन हैं। तथापि सिद्धासन
पद्मासनादि चौरासी आसन हैं। उनमें भी योगी के लिये सिद्धासन

और पद्मासन ये दो ही आसन मुख्य कहे हैं। योग के अभ्यास की कामनावाला ऐसे स्थान में अभ्यास करे जहाँ पर कोई भी विक्षेप का करनेवाला जीव न हो। फिर पद्मासन लगाकर या सिद्धासन लगाकर प्राणायाम करे। प्राणायाम की यह विधि है। प्रथम चंद्र नाड़ी से याने इडा करके प्राणवायु को धीरे-धीरे भीतर खैंच अर्थात् भीतर पूर्ण करे भरे। फिर यथाशक्ति उसको धारण करके फिर सूर्य जो पिंगला नाड़ी है उसके द्वारा धीरे-धीरे उस वायु को रेचन करे याने बाहर निकाले। फिर सूर्य्य और पिंगला दोनों नाड़ियों से प्राणों को बाहर से खैंचकर धीरे-धीरे उदर में भरे। इस रीति से कुंभक को करे फिर चंद्र नाड़ी प्राणवायु का त्याग करे। जिस नाड़ी से प्राणवायु को प्रथम शनैः शनैः खैंचे उससे दूसरी से रेचन करे। याने धीरे-धीरे त्याग करे। जिससे पहले रेचन करे फिर उसी से धारण करे। याने भरे और दूसरी से रेचन करे। तात्पर्य यह है कि जिस नाड़ी से प्रथम पूरक करे उससे ही रेचक करे। जिससे प्रथम रेचक करे उसी से फिर पूरक करे। यही प्राणायाम की रीति है। यदि धीरे-धीरे पूरक और फिर धीरे-धीरे रेचक नहीं करेगा तब योग के बदले रोग हो जायगा। और शरीर के भीतर जो छः चक्र हैं और सोरह आधार हैं और दो लक्ष हैं तथा पाँच व्योम हैं प्रथम ये सब योग करने की इच्छावाले को जानने योग्य हैं और उन्हीं षट्चक्रों में छः कमल हैं। उनमें तदभिमानी देवता रूप होकर परमात्मा विराजमान हैं। मूर्धा थान ब्रह्मरन्ध्र नामवाला सातवाँ चक्र है। वह सहस्र दलवाला है। उसमें परमात्मा अपने यथार्थ स्वरूप करके विराजमान रहता है। और जो पूर्व छः कमल कहे हैं वह सुषुम्णा नाड़ी के आश्रित हैं और वह सुषुम्णा नाड़ी नाभि के नीचे कंदस्थान से निकली है और उसी की जड़ से चौबीस नाड़ी और भी निकली हैं। उनमें से दस तो नीचे को गई हैं और दस ऊपर को गई हैं। दो-दो तिरछी जाकर जाले की तरह होकर स्थित हैं और अधिक विस्तार योग के ग्रंथों में लिखा है जिसको देखना हो सो देख ले। योग के भी चार भेद हैं। याने चार प्रकार का योग

है–हठयोग १, मंत्रयोग २, लययोग ३ और राजयोग ४। पूर्ववाले तीनों ही राजयोग के साधन हैं। राजयोग उनका फलरूप है। पूर्ववाले तीनों के सिद्ध करने की युक्तियाँ असंख्य हैं। तथापि दस जो महामुद्रा हैं, इन्हीं के प्रभाव से योग में आरूढ़ होता है। इन महामुद्रा के बड़े विस्तार हैं। इसी वास्ते उनको यहाँ पर नहीं लिखा है। जिसको वह मुद्रा जाननी हो, योग के ग्रंथों में देख ले।

प्र०–योग-विद्या के प्रथम कौन आचार्य हुए हैं? किस रीति से आगे जगत् में यह योग-विद्या प्रवृत्त हुई है?

उ०–योगविद्या के प्रकट करनेवाले प्रथम आचार्य महादेवजी हुए हैं। उन्हीं का नाम आदिनाथ है। एक काल में महादेवजी किसी द्वीप में समुद्र के किनारे बैठे हुए पार्वतीजी के प्रति योगविद्या का उपदेश कर रहे थे। वहाँ पर तीर के समीप एक मत्स्य आकर एकाग्र चित्त होकर महादेवजी के उपदेश को सुनता रहा। जिस काल में महादेवजी की दृष्टि उसकी तरफ़ गई तब महादेवजी ने जाना कि इसने योगविद्या को एकाग्र चित्त होकर सुना है। तब महादेवजी ने कृपा करके उसको जल से बाहर निकाल लिया। महादेवजी के स्पर्श से वह मनुष्य शरीरवाला हो गया। उसी काल से उसका नाम मत्स्येंद्रनाथ रक्खा गया। वह दूसरे नाथयोग के आचार्य हुए हैं। उन्हीं से आगे नाथों की संप्रदाय चली है। उनके शिष्य शारदानाथ हुए। उनके आनंद भैरवनाथ फिर चौरंगीनाथ, मीननाथ फिर तिनके गोरखनाथ, विरूपाक्षनाथ, विलेयनाथ, मंथाननाथ, भैरवनाथ, शुद्धबुद्धनाथ, कंथडिनाथ, कोरंटकनाथ, सुरानंदनाथ, सिद्धपादनाथ, चर्पटिनाथ, कानेरीनाथ, पूज्यपादनाथ, नित्यनाथ, निरंजननाथ, कपालबिंदुनाथ, काकचंडीनाथ, अल्लमानाथ, प्रभुदेवनाथ, चोडाचोलीनाथ, घटिंटिणीनाथ, भालुकनाथ, नागदेवनाथ, खंडिकानाथ और पलिकानाथ ये सब योग की संप्रदाय के आचार्य हुए हैं। योगबल से सब सिद्ध हुए हैं। योग और उसके सिद्ध करने की युक्ति और तनु जो शरीर उसका भेद याने उसके भीतर जो नाड़ी और चक्रादिकों के भेद हैं ये सब गुरुजी कहते हैं।

परमेश्वर की अनन्य भक्ति के प्रभाव से भक्त को विना ही परिश्रम के मालूम हो जाते हैं।

मू०—सुणिये सासत स्मृतवेद।

महात्मों से सुना है सासत याने पट्शास्त्रों का और सत्ताईस स्मृतियों का तथा चारों वेदों का तात्पर्य भी परमेश्वर की अनन्य भक्ति से ही जाना जाता है। ये तीनों और भी सूत्र भाष्य तथा इतिहास पुराणादि के लक्षायक हैं। अर्थात् उनका तात्पर्य भक्ति करके ही जाना जाता है। अथवा शास्त्र और स्मृति तथा वेदादिकों का भी मुख्य तात्पर्य ईश्वर की भक्ति के प्रतिपादन करने में है।

प्र०—पट्शास्त्रादि के कर्ता कौन हुए हैं और उनके नाम क्या हैं?

उ०—गौतमस्य कणादस्य कपिलस्य पतञ्जलेः।
व्यासस्य जैमिनेश्चापि दर्शनानिषडेव हि॥

गौतम १, कणाद २, कपिल ३, पतंजलि ४, व्यास भगवान् ५, और जैमिनि ये छः ही पट्शास्त्रों के कर्ता हुए हैं। इन्हीं के बनाए हुए पट्शास्त्र हैं। कणाद और गौतम ये दो न्यायशास्त्र के कर्त्ता हुए हैं। कपिल भगवान् सांख्यशास्त्र के कर्ता हुए हैं, पतंजलि भगवान योग-शास्त्र के, व्यासजी वेदांतशास्त्र के और जैमिनि मीमांसाशास्त्र के कर्ता हुए हैं। इन छः महर्षियों के बनाए हुए छः शास्त्रों के सूत्र हैं और मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर, अत्रि, शंख, वशिष्ठादि सत्ताईस धर्मशास्त्र जो स्मृतियाँ कही जाती हैं इनके कर्ता हुए हैं। चारों वेदों का कर्ता ब्रह्मा द्वारा ईश्वर ही माना जाता है। धर्मशास्त्र एक क़ानून है। आर्यावर्त के निवासियों के लिये ऋषियों ने बनाया है। पुराण और महाभारत का कर्ता भी व्यासजी को ही माना जाता है। पुराण जो हैं सो प्राचीन राजों की तवारीखें हैं। इसी वास्ते पुराण का लक्षण भी किया है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

जिसमें सर्ग का, याने ब्रह्मा की उत्पत्ति का, प्रतिसर्ग ब्रह्मा के दिन की सृष्टि का, राजों के वंशों का, मनुवों के वंशों का और उनके चरित्रों का निरूपण रहे उसी का नाम पुराण है। महाभारत को पंचम वेद करके माना है। सूत्रों पर भाष्य करनेवाले शंकराचार्यजी से आदि लेकर हुए हैं।

सूत्रार्थोः वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुकारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥

सूत्रों के अनुसारी वाक्यों से सूत्रों का अर्थ जिसमें निरूपण किया जाय और अपने पदों की भी व्याख्या की जाय जिसमें भाष्य के वेत्ता उसी को भाष्य कहते हैं। षट्शास्त्र और तमाम स्मृतियों का तथा चारों वेदों और जो इतिहासादि हैं इनका तात्पर्य भक्ति के प्रतिपादन करने में है सो गुरुजी कहते हैं अनन्य भक्ति से यह जाना जाता है।

मू०—नानकभक्तासदाविगास।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं भक्तों के चेहरे प्रेमाभक्ति करके सदैव ही खिले रहते हैं। अर्थात् वह प्रेमरूपी आनंद में सदा मग्न रहते हैं।

मू०—सुणियै दुःख पाप का नास।

क्योंकि परमेश्वर के गुणों को श्रवण करने से दुःखों और पापों का नाश हो जाता है। यही कारण चेहरों के खिलने का है।

फल—हर रोज एक हजार जपै ६१ दिन तक तो राजा काबू हो।

मू०—सुणीयैसतसंतोपज्ञान।
सुणीयैअठसठकास्नान॥
सुणीयैपडपडपावैंमान।
सुणीयैलागैसहजध्यान॥
नानकभक्तांसदाविगास।
सुणीयैदुखपापकानास॥

प्र०—परमेश्वर की प्रसन्नता के सहज उपाय कौन हैं ?

उ० । मू०—सुणीऐसतसंतोपज्ञान ।

टी०—महात्मों से सुना है परमेश्वर की प्रसन्नता सत्य भाषण से, यथा लाभ संतुष्ट रहने से और परमेश्वर के गुणों के ज्ञान से याने जानने से होती है । अब सत्य भाषणादि के फल को दिखाते हैं ।

मू०—सुणीऐअठसठकास्नान ।

टी०—महात्मों से और शास्त्रों में सुना है, जो सत्य भाषण करता है उसको घर बैठे ही नित्य अठसठ तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त हो जाता है । सत्य भाषण का फल योग में भी कहा है ।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयित्वम् ।

जो पुरुष सत्यभाषण का अभ्यास करता है उसको संपूर्ण क्रियाओं का अर्थ अर्थात् यज्ञादि तीर्थादि कर्मों का फल प्राप्त होता है । सत्यवादी के समीप अति पापी भी चला जाय और उसको भी वह कह दे 'त्वं स्वर्गं गच्छ' तू स्वर्ग को जा, तब उसके वाक्य से वह स्वर्ग को चला जाता है । उसके अपने फल को कौन कह सकता है ।

दृष्टांत—एक समय में बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा और वर्षा नहीं होती थी । प्रजा बड़ी दुःखी होकर राजा के पास गई । राजा से अपने दुःख का हाल कहा । राजा ने अपने मंत्रियों से कहा कोई उपाय करो जो वर्षा हो । मंत्रियों ने कहा आपके नगर में एक गरीब क्षत्रिय रहता है और वह आटे घृत की दूकान करता है; पर वह बड़ा सत्यवादी और परमेश्वर का भक्त है । यदि आप चलकर उससे कहें और वह ईश्वर से प्रार्थना करे, तो अवश्य वर्षा होगी । दूसरे दिन सवेरे ही राजा पालकी में सवार हो उसकी दूकान पर जाकर बैठ गए । उससे कहा, प्रजा मरती है । आप वर्षा कराकर प्रजा को बचाओ । उसने कहा ब्राह्मण लोग अपने देवतों की पूजा-पाजा करें । हम क्या कर सके हैं ? तब राजा ने कहा, सब उपाय हो चुके हैं । कुछ भी नहीं हुआ । अब आप ही कृपा कीजिए । राजा को उनसे कहते सुनते दुपहर हो गई और

राजा ने कहा, जब तक आप कृपा न करेंगे तब तक मैं न आपकी दूकान से उठूँगा और न अन्न को खाऊँगा। उन्होंने देखा कि राजा ने हठ कर लिया है अब यह किसी तरह से नहीं जाता तब उन्होंने अपनी तराज़ू को उठाकर कहा, यदि हमने जन्म भर सत्य भाषण ही किया है, पूरा लिया है और पूरा दिया है, अर्थात् सच्चा ही सौदा किया है तब तो वर्षा हो जाय और यदि मैंने असत्य भाषण करके झूठा सौदा किया है तो वर्षा न हो। जब उसने ऐसा कहा, उसी काल में पूर्व दिशा से एक बदली उठी और उसने सारे आकाश को आच्छादित कर लिया और बहुत ही वर्षा हुई। ऐसा सत्य भाषण का प्रताप है। भारत में भी सत्य का फल कहा है--

सत्यमेव व्रतं यस्य दया दीनेषु सर्वदा।
कामक्रोधौ वशे यस्य तेन लोकत्रयं जितम्॥

सत्य भाषण ही है व्रत जिसका और जिसकी तमाम दीनों में बड़ी दया है और काम क्रोध जिसके वश में हैं उसने तीनों लोकों को जीत लिया है। आत्मपुराण में भी कहा है--

पुत्रैर्दारैर्धनैर्वापि नानाविद्याविभूतिभिः।
रक्षणीयं हि वचनं नानृतात्पातकं परम्॥

पुत्रों, स्त्रियों, धन नाना प्रकार की विद्या और विभूतियों से अपने वचन की असत्य से रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि मिथ्या भाषण से बढ़कर और कोई भी पाप नहीं है।

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

सत्य से ही पृथिवी धारण करी हुई है। सत्य से ही सूर्य तपता है। सत्य से ही वायु चलती है। सारा जगत् सत्य के ही आश्रित खड़ा है। एक काल में ब्रह्माजी सत्य के फल को और एक हजार अश्वमेध यज्ञ के फल को तौलने लगे अर्थात् तराज़ू के एक तरफ़ सत्य

के फल को रक्खा और दूसरी तरफ हजार अश्वमेध यज्ञ के फल को रक्खा, तो सत्य का फल अधिक निकला ! श्रुति भी कहती है—

सत्यं वद धर्मं चर ।

सत्य भाषण करो और धर्म का ही आचरण करो ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

सद्रूप ज्ञान अनंत रूप ब्रह्म है । जिसने सत्य का ही आश्रय लिया है उसको फिर कुछ करना बाकी नहीं रहता है ; क्योंकि उसने ब्रह्म का ही आश्रय कर लिया है । सब फल उसको प्राप्त हो जाते हैं । अब संतोष के फल को दिखाते हैं । योगसूत्रम्—

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ।

संतोष करने से अनुत्तम सुख का लाभ होता है, जिससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है । अन्यत्र भी कहा है—

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।

कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥

जो शांत चित संतोषरूपी अमृत करके तृप्त हैं उनको जो सुख प्राप्त होता है, वह सुख धन के लोभ से इधर-उधर दौड़नेवाले धनी को नहीं होता है ।

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ।

सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥

जो अकिंचन भी है, इंद्रियों का दमन करनेवाला है, और सदैव संतुष्ट मन है उसको संपूर्ण दिशाएँ सुखरूप ही प्रतीत होती है । इसी पर गुरुजी ने भी कहा है—सत्यादि करके ही अठसठ तीर्थों का फल भी प्राप्त हो जाता है ।

मू०—सुणिऐ पड पड पावै मान ।

टी०—सत्यादि गुणों के धारण करनेवाला ही पुरुष वेद-शास्त्र को बारंबार पढ़ के मान को प्राप्त करता है । बिना इन गुणों के धारण

किए चाहे कितना ही पंडित हो, वह मान को नहीं प्राप्त होता। कहा भी है—

यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता नतु चन्दनस्य।
एवं हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य चार्थेषु मूढाः खरवद्वहन्ति॥

जैसे चंदन के भार को ढोनेवाला गधा भारमात्र को जानता है। चंदन के गुण को नहीं जानता। इसी प्रकार जो वहुत से शास्त्रों को अध्ययन कर लेता हैं और शास्त्रोक्त सत्यादि गुणों को धारण नहीं करता है, वह गधे के तुल्य ही है, वह मान को नहीं पाता है।

पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः॥

जितने कि संसार में पढ़ने पढ़ानेवाले हैं और जो शास्त्र का विचार करनेवाले हैं, वे सब मूर्ख हैं। जो शास्त्रोक्त गुणों को धारण करनेवाला है, वही पंडित है। इस पर गुरुजी का भी कथन है—शास्त्रोक्त सत्यादि गुणों के धारण करनेवाले ही पढ़कर मान को पाते हैं।

मू०—सुणीये लागै सहजध्यान।

टी०--महात्मों से सुना है सत्य संतोपादि गुणोंवाले का सहज ही याने विना परिश्रम ईश्वर में ध्यान लग जाता है।

दूसरा अर्थ।

मू०—सुणीयैसतसन्तोषज्ञान।

टी०—महात्मों से सुना है निष्काम भक्ति से ही सत्य के स्वरूप का और संतोप के स्वरूप का ज्ञान होता है। यद्वा। शास्त्रों में सुना है निष्काम भक्ति से ही सत्य संतोष और नित्याऽनित्य पदार्थों का ज्ञान होता है।

मू०—सुणीयैअठसठकास्नान।

टी०—और निष्काम भक्ति करके ही अथवा नाम के स्मरण करके ही अठसठ याने अठासठ जो गंगा आदि प्रधान तीर्थ हैं, उनके स्नान का फल होता है।

॥ पद्मपुराण ॥

गंगासरस्वतीरेवा यमुनासिन्धुपुष्कर ।
केदारे तूदकं पीतं रामइत्यक्षरं द्वयम् ॥

जिसने 'राम' इन दो अक्षरों को कहा है उसने गंगा, सरस्वती, रेवा, यमुना और सिंधु तथा पुष्कर, केदार इन सब तीर्थों का जल पान कर लिया है और स्नान कर लिया है।

मू०—सुणीयैपडपडपावैमान ।

टी०—महात्मों से सुना है परमेश्वर के नामों को बार-बार पढ़कर याने उच्चारण करके ही पुरुष इसलोक और परलोक में मान प्राप्त करते हैं।

मू०—सुणीयैलागैसहजध्यान ।

महात्मों से सुना है निष्काम भक्तिवाले का सहज ही ध्यान लगा रहता है।

मू०—नानकभक्तासदाविगास सुणीयैदूखपापकानास ।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं परमेश्वर के भक्तों के मन सदैव ही खिले रहते हैं; क्योंकि उनके दुख और पाप सब नष्ट हो गये हैं।

फल—एक हजार दफा सात दिन तक पढ़े तो इष्ट देवता का दर्शन स्वपने में हो ।

मू०—सुणीयैसरांगुणाकेगाह।सुणीयैसेखपीरपातसाह॥
सुणीयैअन्धेपावहिराह । सुणीयैहाथहोवैअसगाह॥
नानकभक्तांसदाविगास । सुणीयैदूखपापकानास ॥

मू०—सुणीयैसरांगुणाकेगाह ।

टी०—महात्मा से सुनते हैं सराँ है, याने ताल है और परमेश्वर का भजन स्मरण स्तवनरूपी उनमें गुण भरे हैं। सो उन गुणों को भक्तजन गाह याने गायन करते हैं। अथवा ग्रहण करते हैं।

मू०—सुणीयैशेखपीरपातसाह ।

टी०—महात्मों से ईश्वर के गुणों को श्रवण करके शेखफरीद और शमशपीर और बड़े-बड़े बादशाह भी महान् पदवियों को प्राप्त हुए हैं ।

मू०—सुणीये अन्धेपावहिराह ।

टी०— संसार में स्त्री, पुत्र, धनादि के मोह से जो अंधे हो रहे हैं वे भी महात्मा से परमेश्वर के गुणों को श्रवण कर राह याने कल्याण के मार्ग को प्राप्त हो गए हैं ।

मू०—सुणीयैहाथहोवै असगाह ।

टी०—परमेश्वर के गुणों को महात्मा से श्रवण करके संसाररूपी अथाह समुद्र भी हाथ भर गहरा हो जाता है । तात्पर्य यह है, जैसे हाथभर जल में पुरुष सुखपूर्वक पार उतर जाता है वैसे वह भी संसार से सुखपूर्वक पार उतर जाता है । दूसरा अर्थ ।

मू०—सुणीयैसरांगुणाकेगाह ।

टी०—शास्त्रों में सुना है संत महात्मा ही संसार में गुणों से भरे हुए सर हैं याने भारी ताल हैं । उनसे अधिकारी पुरुष अनेक प्रकार के गुणों को, विद्याओं को ग्रहण करते हैं ; क्योंकि गुणों से ही पुरुष इस लोक परलोक में पूजा जाता है । लिखा भी है—

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः ।
वासुदेवं नमस्यन्ति वासुदेवंनतेजनाः ॥

गुण ही संसार में सर्वत्र पूजे जाते हैं । पिता का वंश निरर्थक है। देखो, सब पुरुष वासुदेव कृष्ण को ही नमस्कार करते हैं उनके पिता का कोई नाम भी नहीं लेता है ।

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः ।
प्रसादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥

संसार में पुरुष गुणों से ही उत्तमता को प्राप्त होता है । कुछ ऊँचे

आसन पर बैठने से उत्तमता को प्राप्त नहीं होता ; क्योंकि मंदिर के शिखर पर बैठने से क्या कौवा गरुड़ हो जाता है ? कदापि नहीं। इसी तरह अनेक वाक्य ग्रंथों में गुण को ही पूज्य कहनेवाले मिलते हैं।

प्र०—ब्राह्मण लोग तो जाति से ही पूज्य कहते हैं और जहाँ तहाँ अपनी जाति की ही बड़ाई करते हैं। वह तो गुण को पूज्य नहीं मानते हैं ?

उ०—जो ब्राह्मण विद्याहीन हैं वह जाति की बड़ाई करते हैं; क्योंकि उनमें कोई गुण घटता नहीं है। जो विद्वान् हैं, वह जानते हैं कि जाति कोई चीज नहीं है ; परंतु वह लोभग्रस्त होकर जाति की बड़ाई करते हैं। असत्य भाषण करते हैं। इसी से इनका मान कम होता जाता है। शास्त्रों में जाति से ब्राह्मणपना नहीं माना है। गुण से ही माना है॥ सो दिखाते हैं। शुक्रनीति के प्रथम अध्याय में कहा है—

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः॥

इस संसार में जाति से ब्राह्मण नहीं होता है और क्षत्रिय वैश्य भी जाति से नहीं होता और न जाति से शूद्र ही होता और न म्लेच्छ होता ; किंतु गुण और कर्मों से मनुष्य ब्राह्मण क्षत्रियादि भेद को प्राप्त होता है।

ब्रह्मणस्तुसमुत्पन्नाः सर्वे ते किंनु ब्राह्मणाः।
न वर्णतो न जनकाद् ब्रह्मतेजः प्रपद्यते॥

ब्रह्माजी से सभी मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। सभी ब्राह्मण नहीं कहाते हैं। इसी से सिद्ध होता है कि वर्ण से और पिता से ब्रह्मतेज नहीं प्राप्त होता है।

ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः।
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणस्तु गुणैः कृतः॥

किंतु ज्ञान, कर्म, उपासना और वेद परमात्मा के आराधन में प्रीतिवाला और शान्त, दान्त, दयालुता आदि गुणों से ब्राह्मण होता है।

क्षत्रिय लक्षण।

लोकसंरक्षणे दक्षः शूरो दान्तः पराक्रमी।
दुष्टनिग्रहशीलो यः स वै क्षत्रिय उच्यते॥

प्रजा की रक्षा करने में जो चतुर है, शूरवीर और दान्त तथा पराक्रमी है, दुष्टों को दंड देनेवाला है, वही क्षत्रिय कहा जाता है।

क्रयविक्रयकुशला ये नित्यं च पण्यजीविनः।
पशुरक्षाः कृपिकरास्ते वैश्याः कीर्तिता भुवि॥

खरीदने-बेंचने में जो कुशल है और नित्य व्यवहार करके जीविका करता है, पशु-पालन और खेती करता है, उसी का नाम वैश्य है।

द्विजसेवार्चनरताः शूराः शान्ता जितेन्द्रियाः।
सीरकाष्ठतृणवहास्ते नीचाः शूद्रसंज्ञकाः॥

जो शान्त, दान्त होकर द्विजों की सेवा में प्रीतिवाला है, हल जोतना, लकड़ी घास का काटना, ऐसे कामों को जो करता है, वह नीच शूद्र कहाता है।

त्यक्तस्वधर्माचरणा निर्घृणाः परपीडकाः।
चण्डाश्च हिंसका नित्यं म्लेच्छास्ते ह्यविवेकिनः॥

जिसने अपने वर्णाश्रम के धर्म और आचरणों का त्याग कर दिया है, घृणा से जो रहित है, दूसरों को जो पीड़ा देता है, क्रोधी तथा हिंसक है, वही म्लेच्छ कहे जाते हैं। अब विचार करके देख लीजिए जाति आदिकों से वर्णविभाग नहीं लिखा है; किंतु गुण-कर्म से ही

लिखा है । नानक चंद्रोदय में भी गुरु नानकजी ने भाईवाला के प्रति कहा है—

नेपथ्यमात्रेण भवन्ति नार्थाः गुणैर्विहीनस्य कदापि सौम्य।
मौल्यं लभन्ते न पयोविहीना गावःसमन्ताद्गलबद्धघण्टाः॥

हे सौम्य ! नेपथ्यमात्र करके अर्थात् ऊपर के वेष करके याने तिलक, माला, छापे आदि गुणों से हीन पुरुष के मनोरथ कदापि सिद्ध नहीं होवे हैं । दृष्टांत—दुग्ध से हीन गौओं के गले में कितने ही घंटे बाँध दे, तब भी उनका मोल कोई भी नहीं देता है । ऐसे ही गुण-हीन पुरुष का आदर दोनों लोकों में नहीं है ।

वह्निपुराण ।

किं कुलं वृत्तहीनस्य करिष्यति दुरात्मनः ।
कृमयः किं न जायन्ते कुसुमेषु सुगन्धिषु ॥

जो सदाचार से हीन दुष्टात्मा है, उसकी सहायता कुल क्या कर सकता है ? क्या सुगंधिवाले पुष्पों में कृमि नहीं उत्पन्न होते हैं ?

महाभारत ।

शूद्रे तु यच्चवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥

शूद्र में ब्राह्मण का लक्षण घटता है और द्विज में नहीं घटता, तब वह शूद्र शूद्र नहीं हो सका है और द्विज द्विज नहीं हो सका अर्थात् वह शूद्र ब्राह्मण है और वह द्विज शूद्र है । इसी तरह के अनेक वाक्य शास्त्रों में गुण को पूज्य कहनेवाले हैं । इन्हीं वाक्यों से साबित होता है कि जाति पूज्य नहीं है और यदि जाति बड़ी होती तब धर्मशास्त्र में कुकर्मी ब्राह्मण की निंदा और सुकर्मी की स्तुति न होती ।

पराशर ।

एकाहं जपहीनस्तु सन्ध्याहीनो दिनत्रयम् ।
द्वादशाहमनग्निश्च शूद्र एव न संशयः ॥

जो ब्राह्मण एक दिन गायत्री मंत्र का जप नहीं करता, तीन दिन संध्योपासन नहीं करता और बारह दिन अग्निहोत्र को नहीं करता है, वह तुरंत ही शूद्र हो जाता है।

गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ।
गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते जनैर्द्विजाः ॥

जो ब्राह्मण गायत्री मन्त्र से रहित हैं, वह शूद्र से भी अधम हैं। जो गायत्री मन्त्र को नित्य जपते हैं, वही संसार में लोगों करके पूजे जाते हैं। हजारों वाक्य ऐसे लिखे हैं। वह झूठे नहीं हैं। इसलिये जाति कोई वस्तु नहीं है, गुण ही पूज्य है। फिर श्रुति भी कहती है—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते ।
वेदाभ्यासाद्भवेद्विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ॥

जन्म से बालक शूद्र होता है। जब उसको ईश्वरसंबंधी संस्कार होते हैं, तब फिर द्विज कहाता है। वेद का अभ्यास करने से उसका नाम विप्र होता है। जब ब्रह्म को जानता है, तब वह ब्राह्मण कहा जाता है। तात्पर्य यह है, जन्मकाल में यह जीव शूद्र होता है। शु नाम अज्ञान का है सो अज्ञान जिसमें द्रवे उसी का नाम शूद्र है। जो सत्य असत्य को भक्ष्याभक्ष्य को तथा अपने को ईश्वर को जो नहीं जानता है, उसी का नाम शूद्र है। सो ऐसा जन्मकाल में बालक होता है, इसी वास्ते बालक को शूद्र कहा है। जब उस बालक के संस्कार कराए जाते हैं और गायत्री मंत्र का उपदेश किया जाता है तब उसका नाम द्विज होता है; क्योंकि वेद के मंत्र के अर्थ के संस्कार उसके भीतर दिए जाते हैं और उन संस्कारों से वह अपने को और ईश्वर को जानता है। फिर जब ज्ञान द्वारा ब्रह्म को जानता है, तब वह ब्राह्मण होता है। वेद की यह रीति है। यदि हाड़, मांस, चामवाले शरीर का नाम शूद्र हो, या ब्राह्मण हो, तब सभी शूद्र होने चाहिए या सभी ब्राह्मण होने चाहिए। यदि इंद्रियोंवाले का नाम शूद्र हो या ब्राह्मण हो, तब भी सभी शूद्र होने चाहिए या ब्राह्मण होने चाहिए। यदि

चेतन का नाम शूद्र हो या ब्राह्मण हो, तब भी सभी शूद्र होने चाहिए या ब्राह्मण होने चाहिए ; क्योंकि सभी जीव चेतन हैं। ऐसा तो नहीं होता है और न कोई मानता है। इसी से जाना जाता है कि गुणहीन अज्ञानी मूर्ख का नाम शूद्र है और गुणवान् का नाम ब्राह्मण है। तात्पर्य यह है कि इस लोक और परलोक में गुण ही पूज्य है और गुणों से ही बड़े-बड़े नीच जातिवाले भी उत्तम पदवी को प्राप्त हो गए हैं। इसी पर गुरुजी कहते हैं—

मू०—सुणीयैशेखपीरपातशाह।

टी०—महात्मों से सुना है, उत्तम गुणों से शेखरीरद मुसलमानों के पीर याने गुरु हो गए और सब मुसलमानों के पातशाह याने राजा हो गए।

मू०—सुणीयैअन्धेपावहिराह।

टी०—महात्मों से सुना है कि जिनको परमेश्वर की प्राप्ति का मार्ग नहीं दिखाता है, उस मार्ग से अंधे हैं, उनको भी उत्तम गुणों के धारण करने से वह मार्ग दिखाता है अर्थात् उस मार्ग को प्राप्त हो जाते है।

मू०—सुणीयैहाथहोवैअसगाह।

टी०—परमेश्वर के गुणों के श्रवण करने से और धारण करने से पुरुष संसाररूपी समुद्र हाथ भर का लंघने योग्य हो जाता है।

मू०—नानकभक्तां सदा विगासुसुणीयै दूखपापका नास।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं, भक्तों को परमेश्वर सदैव ही विगासं याने अपरोक्ष रहता है। तात्पर्य यह है, जैसे भक्तजन उसको सदैव ही स्मरण करते हैं क्षणमात्र भी उसका विस्मरण नहीं करते हैं वैसे परमेश्वर भी उनका विस्मरण नहीं करता है। जब-जब उन पर भीड़ पड़ती है, तब-तब वह उनकी सहायता करता है। इसी से उनके दुःखों और पापों का नाश हो जाता है। द्रौपदी ने जब सभा में नग्न किए जाते समय उनका स्मरण किया, तो उसके वस्त्र अनंत हो गए। वह नग्न नहीं होने पाई। गजराज को जब मगर ने ग्रसा था, तब उसको

मारकर भगवान् ने गजराज को छुड़ाया था। इसी तरह और भी अपने अनेक भक्तों की सहायता की है।

प्र०—संसार में बहुत से लोग भक्त कहाते हैं और फिर वे दुःखी क्यों रहते हैं ? इसमें क्या कारण है ?

उ०—वह कहने ही को भक्त होते हैं। वे सचे भक्त नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि कोई केवल भक्त कहाने के लिये ही भक्तों के चिह्नों को धारण करता है, कोई लोगों को ठगने के लिये और जीविकार्थ चेले चाटी करने के लिये। इसी तरह अनेक प्रकार की कामना लेकर जो करते हैं, उनका दुःख विना भोगे कदापि दूर नहीं होता है। जो निष्काम होकर और देवतांतर को त्यागकर एक नारायण परमात्मा का दृढ़ विश्वास करके उसकी उपासना करते हैं, भगवान् सदैव उनके अंग में रहते हैं। इसी पर कहा है—उनके त्रिविध दुःखों का नाश हो जाता है।

प्र०—निष्काम भक्त का क्या लक्षण है ?

उ०—देवीभागवत के नवमस्कंध के षष्ठाऽध्याय में भगवान् ने आप ही कहा है—

मद्गुणश्रुतमात्रेण सानन्दपुलकान्वितः।
सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥
न वाञ्छति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्।
ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने ॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम्।
स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वाञ्छति ॥

भगवान् कहते हैं, मेरे गुणों के श्रवणमात्र से उत्पन्न भया जो आनंद है उससे पुलकित अंग और गद्गद वाणी और प्रेम के अश्रुपात में जिसने अपने आपको विस्मरण कर दिया है; जो चारों प्रकार की सालोक्यादि मुक्ति है उसके सुख की भी इच्छा नहीं करता है, और ब्रह्मा होने की तथा अमर होने की और इंद्र होने की भी जो इच्छा नहीं

करता है और केवल मेरी उपासना की ही जो इच्छा करता है, वह निष्काम भक्त है। ऐसे भक्त के दुःखों को भगवान् नाश कर देते हैं।

फल-सात हजार एक दिन में जपे तो घर के सब कष्ट दूर हों।

मू०—मंनैकी गति कही न जाइ। जेको कहे पिछै पछताइ॥
कागद कलम न लिखणहार। मंनै का बहिकरनविचार॥
एसा नाम निरंजन होइ। जेको मन जाणै मन कोइ॥

अब नाम के माहात्म्य को दिखलाते हैं।

मू०—मंनै की गति कही न जाइ।

टी०—जिस पुरुष ने परमेश्वर के नाम को मनन कर लिया है अर्थात् नाम के जपने का ही जिसने दृढ़ विश्वास कर लिया है, उसको जो फल की प्राप्ति होती है वह वाणी करके कही नहीं जाती है। वृहद्विष्णुपुराण में पराशरजी ने कहा है—

रामनाम परा ये च नामकीर्तनतत्पराः।
नाम्नः पूजा परा ये वै ते कृतार्था न संशयः॥

जो पुरुष रामनाम परायण हो गए हैं, नाम के कीर्तन करने में जो तत्पर हैं और नाम की स्मरणरूपी पूजा को जो नित्य ही करते हैं वे कृतार्थ हैं। इसमें संदेह नहीं है।

ते कृतार्थाः सदा शुद्धाः सर्वोपाधिविवर्जिताः।
नाम्नः प्रभावमासाद्य गमिष्यन्ति परं पदम्॥

जो नित्य ही नाम का स्मरण करते हैं, वही कृतार्थ हैं। सदैव वह शुद्ध हैं। सर्व उपाधियों से वह रहित हैं। वे नाम के प्रभाव को प्राप्त होकर परमपद को प्राप्त होते हैं।

दृष्टान्त—एक महात्मा के पास कोई राजा कुछ पूछने को गया। महात्मा ने कहा हमको बताने की फुरसत नहीं है। तब राजा ने कहा आपको कोई काम तो है नहीं, फिर आप कैसे कहते हैं कि हमको फुरसत नहीं? महात्मा ने कहा, जिस परमेश्वर ने हमको मनुष्यशरीर दिया

है, हम उसके नाम के स्मरण करने के नौकर हैं। जितना काल हम आपसे बातचीत करेंगे, उतना काल हम निमकहराम होंगे। सो हम आप लोगों की तरह निमकहरामी नहीं करनी चाहते। तब राजा ने कहा, आप धन्य हैं जिन्होंने इस लोक को लात मारी है। महात्मा ने कहा, आप भी धन्य हैं जिन्होंने परलोक को लात मारी है। ऐसा सुनकर राजा चला गया। जो नाम के मनन करनेवाले हैं, वह किसी राजा बाबू से भी मुलाक़ात नहीं करते हैं। एक परमेश्वर से ही मुलाक़ात रखते हैं।

मू०—जेको कहै पिछै पछिताय।

टी०—नाम के मनन करनेवाले को जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल को यदि कोई इयत्ता करके कहे तो फिर पीछे उसको पछतावा होता है; क्योंकि वह कुछ संख्या करके ही कहेगा और शास्त्रों ने असंख्य फल लिखा है। जब वह सुन पावेगा, तब पीछे पछतावेगा।

प्र०—कागज़, कलम लेकर शास्त्रों से सुन करके भी वह फल की संख्या कर लेवेगा।

उ०—नहीं।

मू०—कागद कलम न लिखणहार।

टी०—नाम के मनन करनेवाले को फल की प्राप्ति लिखने के लिये इतना संसार में न तो काग़ज है, न इतनी कलमें हैं और न कोई लिखनेवाले हैं; क्योंकि अनंत कागज, क़लमों से भी वह लिखा नहीं जाता है।

मू०—मंनैका बह करन विचार।

टी०—यदि नाम को मनन करनेवाले का फल लिखा जाता, तो ऋषि-मुनि सब मिलकर एक जगह बैठकर विचार करते। पर ऐसा तो नहीं है, क्योंकि नारदीयपुराण में कहा है—

सर्वेषां साधनानाञ्च संदृष्टं वैभवं मया।
परन्तु नाममाहात्म्यकला नार्हन्ति षोडशीम्॥

नारदजी कहते हैं-संपूर्ण साधनों के वैभव को याने फल को मैंने देखा है; परंतु रामनाम के माहात्म्य की एक कला को भी वह संपूर्ण साधनों का फल नहीं प्राप्त होता है।

एसा नाम निरंजन होय। जे को मन जाणै मन कोय।

इसी वास्ते गुरुजी कहते हैं, परमेश्वर का नाम ऐसा है जो उसको मनन करता है वही उसके फल को और उसके आनंद को जानता है। दूसरा कोई भी नहीं जानता है। जैसे पातिव्रत धर्म के स्वरूप को और फल को पतिव्रता स्त्री ही जानती हैं। व्यभिचारिणी नहीं जानती हैं। वैसे ही नाम के रसिक ही नाम के फल को और आनंद को जानते हैं।

फल-शुक्रवार ७ दिन में ७ हज़ार पढ़े तो उसकी अकल तेज होवै।

मू०—मंनै सुरत होवै मन बुध। मंनै सगल भवणकी सुध॥
मंनै मुहि चोटां ना खाय। मंनै जमके साथ न जाय॥
एसा नाम निरंजन होय। जे को मन जाणै मन कोय॥

मू०—मंनै सुरत होवै मन बुध।

टी०—नाम के मनन करने से ही सुरत, मन, बुद्धि का ज्ञान भी होता है। तात्पर्य यह कि सुरत नाम चित्त का है, उसका स्वरूप स्मरणात्मक है और मन का स्वरूप संकल्पविकल्परूप है और बुद्धि का स्वरूप निश्चयात्मक है। आगे फिर अनंत इनकी वृत्तियाँ हैं। इन सबके स्वरूप का ज्ञान नाम के स्मरण का अभ्यास करनेवाले को हो जाता है।

मू०—मंनै सगल भवन की सुध।

टी०—परमेश्वर के नाम को मनन करने याने एकाग्रचित्त होके अभ्यास करनेवाले को संपूर्ण भुवनों का और उनके अंतर्वर्ती संपूर्ण पदार्थों का ज्ञान हो जाता है।

दृष्टांत—वाल्मीकिजी प्रथम धाड़ा मारते थे अर्थात् आते जाते मुसाफिर को लूटते थे। एक संत महात्मा मार्ग में चले जाते थे।

उनको लूटने के लिये वह दौड़े आकर उनसे कहा खड़े रहो, खड़े रहो कहाँ जाते हो, इस शब्द को सुनकर वह महात्मा खड़े होगए और पूछा तुम कौन हो ? क्या कहते हो ? तब इसने कहा, मैं डाकू द्विज हूँ। मैं आते-जाते को लूटकर अपने कुटुंब का पालन करता हूँ। तब महात्मा ने कहा, इस तुम्हारे कर्म के फल भोगने में तुम्हारा कुटुंब भी शरीक होगा या नहीं होगा ? तुम पहले जाकर उनसे पूछ आओ और हम तुम्हारे आने तक इसी जगह खड़े रहेंगे। यदि वे कहें हम शरीक होवेंगे तब आकर जो कुछ हमारे पास है वह सब तुम ले लेना। यदि वे कहें हम शरीक नहीं होंगे, तो फिर विचार करके जो करना हो सो करना। तुम्हारे आने तक हम इसी जगह खड़े रहेंगे। तुम सब हाल उनसे पूछकर जल्दी चले आना। महात्मा का वाक्य सुनकर वह घर जाकर अपनी स्त्री लड़कों से कर्मों के फल भोगने में शरीक होना पूछा। उन्होंने कहा, हम तुमको नहीं कहते हैं कि लूटकर हमको खिलावो। हम इसमें कैसे शरीक होंगे, अर्थात् हम तुम्हारे पापकर्मों के फल भोगने में शरीक नहीं होंगे। उनके वाक्य सुनकर उसको बड़ा वैराग्य हुआ और आकर महात्मा के चरणों पर गिर पड़ा। तब महात्मा ने उसको अधम द्विज जान उलटा मरा ऐसा उपदेश किया और कहा इसी जगह बैठकर एकाग्र चित्त करके इसके जपने का अभ्यास कर। उसी जगह बैठकर उन्होंने ऐसा अभ्यास किया कि कई हजार बरस तक जपते रहे। उनके ऊपर गरदे का ढेर हो गया और चींटियों ने उनकी इंद्रियों के छिद्रों में घर बना लिया। तब कुछ काल पीछे महात्मा ने आकर उसको दृढ़ समाधि में स्थित हुए देखकर मट्टी से निकाल कर चेतन किया। वह वाल्मीकिजी ऋषि हुए। उन्होंने नाम के मनन करने से रामावतार होने से पाँच सौ वर्ष पहले ही रामायण रची; क्योंकि नाम के मनन के अभ्यास से उनको प्रथम से रामावतार होने का ज्ञान हो गया था। इसी पर गुरुजी ने भी कहा है—मनन करनेवाले को संपूर्ण भुवनों का ज्ञान हो जाता है।

मू०—मनै मुहचोटा नहीं खाय।

टी०—जो नाम का मनन करता है अर्थात् नाम के चिंतन का अभ्यास करता है, वह मुख पर यमदूतों की चोटों को नहीं खाता है। अथवा संसार में बंधन का हेतु जो स्त्री पुत्रादि में मोह है, उस मोह की चोट जो उनके पापकर्म करने हैं, उनको नहीं करता है। तात्पर्य यह कि संसार में जो पुरुष पापकर्मों को करके स्त्री पुत्रादि के लिये धन को कमाते हैं या अपने आराम के लिये धन को कमाते हैं मरे पीछे उनका धन तो और ही लोग ले लेते हैं और पापकर्म को वे अपने साथ ले जाते हैं। सो नाम का मनन करनेवाले ऐसा नहीं करते हैं।

मू०—मनै यमके साथ न जाय।

टी०—जो पुरुष नाम का मनन करता है, वह यमदूतों के साथ कदापि नहीं जाता है। कालिकी पुराण में यमराज ने अपने दूतों से कहा है—

संसारे नास्ति तत्पापं यद्रामस्मरणे न हि।
न याति संक्षयं सद्यो दढं शृणुतकिङ्कराः॥

यमराज अपने दूतों से कहते हैं—तुम विश्वास करके श्रवण करो कि ऐसा संसार में कोई भी पाप नहीं है, जो रामनाम के स्मरण करने से शीघ्र ही नाश को नहीं प्राप्त होता है।

ये मानवाः प्रतिदिनं रघुनन्दनस्य नामानि घोरदुरितौघविनाशकानि। भक्त्यार्चयन्ति विविधप्रवरार्चितस्य ते पापिनोऽपि हि भटा मम नैव दण्ड्याः॥

जो मनुष्य प्रतिदिन रघुनंदन के घोर पापों के नाश करनेवाले नामों का स्मरण करते हैं, भक्ति करके पूजन करते हैं, हे दूतो! उनको मेरे पास मत लाना; क्योंकि वह दंड देने के योग्य नहीं हैं। इसी पर गुरुजी कहते हैं कि नाम का मनन करनेवाला यमदूतों के साथ भी नहीं जाता।

मू०—एसानामनिरंजनहोय, जेकोमनजाणैमनकोय।

टी०--गुरुजी कहते हैं, मायामल से रहित जो परमात्मा है उसका ऐसा नाम है। जेको अर्थात् यदि कोई पुरुष भी उस नाम का मनन करना अर्थात् पुनः पुनः आवृत्तिरूप अभ्यास के करने को जानता है, एसामनकोय याने ऐसा मनन करनेवाला संसार में कोई एक विरला पुरुष ही है। जैसे कि कलियुग में कबीरजी, दादूजी आदि हुए हैं। ऐसे होनेवाले और लोग बहुत ही कम हैं।

फल--बुधवार को हमेशा पांच सौ दफा अमृतवेला के वखत जपै तो लड़ाई में फते पावै॥

मू०--मनैमार्गठाकनपाय॥ मनैपतस्योंपरगटजाय॥
मनैमगनचलैपंथ॥ मनैधर्मसेतीसनबंध॥
एसानामनिरंजनहोय॥ जेकोमनजाणैमनकोय॥

मू०--मनैमार्गठाकनपाय।

टी०--परमेश्वर के भक्त की वृत्ति ईश्वर के ध्यान-स्मरण में रुकती नहीं है। अथवा नाम के मनन करनेवालों की वृत्ति को काम, क्रोधादि चोर भी मनन के मार्ग से रोक नहीं सक्ते हैं। नृसिंहपुराण में भी कहा है--

सर्वासां चित्तवृत्तीनां निरोधो जायते ध्रुवम्।
रामनामप्रभावेण जप्तव्यं सावधानतः॥

संपूर्ण बाह्य विषयों की ओर से वृत्तियों का निरोध श्रीरामनाम के प्रभाव से शीघ्र ही हो जाता है। इसलिये निश्चय करके रामनाम जपना चाहिए।

दृष्टांत--किसी नगर के समीप वन में एक वैष्णव साधु रामनाम का मनन कर रहे थे। रात्रि के समय उनके पास चोर आए। चोरों ने उनसे [पू]छा, आप उपकारी हैं या अपकारी? उन्होंने कहा, हम तो उपकारी हैं। [च]ोरों ने कहा, यदि आप उपकारी हैं तब हमारे साथ चलिए और हमारा [उ]पकार करिए। उन्होंने कहा, बहुत अच्छा। वह महात्मा अपनी झोली डंडा लेकर चोरों के साथ हो लिये। आगे चोरों ने नगर में जाकर एक महा-

जन के घर में सेंध लगाई और महात्मा से कहा, तुम भीतर जाकर सब कोठरी से माल निकालकर बाहर लाकर हमको दो। वह महात्मा भीतर गए और एक कोठरी खोलकर देखा, तो उसमें बर्तन भरे थे। विचारा ये तो ठाकुरजी को भोग लगाने लायक नहीं हैं। फिर दूसरी कोठरी खोली, तो उसमें अनाज भरा देखा। फिर तीसरी कोठरी खोली, उसमें क्या देखते हैं एक चौकी पर लंप पड़ा जगता है और गगरा पानी का भरा हुआ रक्खा है और एक थाल भरा हुआ मिठाई का धरा है। तब महात्मा ने सोचा ये ठीक, भोग लगाने लायक हैं। तुरंत गगरे को उठा आँगन में बाहर लाकर लेपन देकर उस पर थाल मिठाई को लाकर धर दिया और लंप को एक तरफ धर दिया और झोली से ठाकुरजी को निकाल चौकी पर धरकर भोग लगाया और झोली से शंख निकालकर बड़े जोर से बजाया, तब घरवाले सब जाग उठे। इधर-उधर देखने लगे। फिर महात्मा ने जोर से झाँझ को बजाया। तब उन्होंने देखा कि घर के आँगन में ही महात्मा बैठे बजाते हैं। जब वह नीचे उतरकर आये, तब महात्मा ने कहा, लेओ ठाकुरजी का बालभोग; परंतु पहले उनको देखो, जो बाहर खड़े हैं। जब वह उधर गए, तब चोर भाग गए थे। सेंध देखा। फिर महात्मा ने कहा, लेओ तुम भी प्रसाद को खाओ। उन्होंने कहा, हमारा ही प्रसाद हमको देते हो। महात्मा ने कहा, यदि सभी चोर ले जाते तब तुमको प्रसाद भी न मिलता। उन्होंने कहा ठीक है। घरवालों ने जाना इन्होंने हमारे माल को बचाया है। उनकी बड़ी सेवा करने लगे। इसी पर कहा है—देखो, चोर भी महात्मा की वृत्ति को भजन के मार्ग से न हटा सके।

मू०—मनैपतस्योंपरगटजाय।

टी०—नाम का मनन करनेवाला पतस्यों अर्थात् अपनी इज्जत से परगट संसार समुद्र के परले घाट को

मू०—मनैमगनचलैपंथ।

टी०—नाम का मनन करनेवाला परमेश्वरोक्त वेदमार्ग में मगन करता है याने आनंदित होकर चलता है ।

मू०—मनैधर्मसेतीसनवन्ध ।

टी०—नाम का मनन करनेवाला अपने धर्म से ही संबंध रखता है, इतर स्त्री पुत्रादि से नहीं । क्योंकि इतर सब परलोक में सहायक नहीं होते हैं, धर्म ही केवल सहायक होता है । मनु ने कहा भी है—

नामुत्र सहायार्थं पितामाता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठतिकेवलः ॥

परलोक में सहायता के लिये पिता और माता काम नहीं आते हैं । पुत्र, स्त्री तथा संबंधी भी स्थित नहीं रहते हैं । केवल धर्म ही रहता है, इस वास्ते वह धर्म से ही संबंध रखता है ।

दृष्टान्त—एक व्यापारी ग्रामों में व्यापार के लिये जाता था । रास्ते में उसको बहुत सा जंगल लाँघना पड़ता था । एक दिन उसको जंगल में ही शाम हो गई । थोड़ी दूर पर उसने एक झोपड़ा देखा । उसने चाहा कि आज रात्रि को इसी झोपड़ेवाले के पास रह जायँ । उस झोपड़े में जब वह गया, तो एक जमींदार उसमें अपने बाल-बच्चों के सहित रहता था । उस व्यापारी की जमींदार ने बड़ी खातिर की । रात्रि को भोजन कराकर बिस्तरे पर उसको सुलाया । सवेरे व्यापारी चल दिया । रास्ते में कहीं उसकी एक सौ अशरफी की थैली गिर पड़ी । जब वह बहुत दूर निकल गया, तब उसको याद आई । उसने सोचा, अब उसका मिलना कठिन है । इसलिये वह पीछे को न फिरा और अपने घर को चला गया । उसी जमींदार का लड़का उसी रास्ते से जब गया, तब उसने उस थैली को पड़े हुए देखा । उसने सोचा दूसरे का धन है, छूना धर्म नहीं है । वह अपने पिता को बुला लाया उसके पिता ने देखकर थैली को झाड़ी में से थोड़ी पत्ती लकड़ी लेकर उसको ऊपर से ढाँप दिया । एक साल पीछे फिर वही व्यापारी उसी जंगल के रास्ते से आकर उसी जमींदार के घर ठहरा । जब सवेरे चलने लगा, तब

उसने कहा, आगे इसी रास्ते में मेरा बहुत सा नुक़सान हुआ है। ज़मींदार ने पूछा, वह कैसा ? तब उसने सब हाल कहा। ज़मींदार उसको साथ लेकर उसी जगह पर गया, जहाँ पत्तों के नीचे वह थैली ढाँपी हुई थी। उससे कहा, ये पत्ते हटाओ। उसने जब ऊपर से पत्ते और लकड़ी को हटाया तब उसको नीचे थैली मिल गई। ऐसे पुरुष जो परधन आदि के साथ संबंध नहीं रखते हैं, उनका धर्म से ही संबंध रहता है।

मू०—ऐसा नाम निरंजन होय जे को मन जाणै मन कोय।

उस दयालु कृपालु परमेश्वर का नाम ऐसा शुद्ध है कि कोई ही उसको मनन करना जानता है। ऐसा किसी एक ही पुरुष का मन है।

फल—पांच रोज तक बराबर पढ़ता रहे तो ज्ञानी हो जावे।

मू०—मनै पावहि मोक्ष द्वार। मनै परवारै साधार॥
मनै तरै तारै गुरु सिख। मनै नानक भवहि न भिक्ष॥
ऐसा नाम निरंजन होय। जे को मन जाणै मन कोय॥

मू०—मनै पावहि मोक्ष द्वार।

टी०—नाम के मनन करनेवाले को मोक्ष का द्वार जो सत्संग है उसकी प्राप्ति होती है; क्योंकि विना सत्संग से संशयों का उच्छेदन कदापि नहीं होता है। कहा भी है—

उद्यन्तु शतमादित्या उद्यन्तु शतमिन्दवः।
न विना विदुषां वाक्यैः नश्यत्यभ्यन्तरं तमः॥

यदि सौ सूर्य भी इकट्ठा उदय हों और सौ चंद्रमा भी उदय हों तब भी महात्मों के वाक्यों के विना हृदय के संशय दूर नहीं होते हैं।

कपिलगीतायाम्।

ज्ञानं विरागो नियमो यमश्च स्वाध्यायवर्णाश्रमधर्मकर्म।
भक्तिः परेशस्य सतां प्रसङ्गो मोक्षस्य मार्गं प्रवदन्ति सन्तः॥

परोक्ष ज्ञान वैराग्य और नियम तथा यम वेद का अध्ययन और वर्णाश्रम के धर्म तथा कर्म और ईश्वर की भक्ति महात्मों का संग इनको मोक्ष का मार्ग कहा है। अर्थात् ये मोक्ष की तरफ गमन करने के रास्ते हैं। बिना इन रास्तों के कदापि कोई भी नहीं जा सकता है।

मू०—मनैपरवारैसाधार।

टी०—नाम का मनन करनेवाला अपने परवार को अर्थात् अपने कुटुंब को साधार याने सुधार लेता है और ईश्वरपरायण कर देता है, जैसे कि ध्रुव भक्त और प्रह्लाद भक्त ने किया है।

मू०—मनैतरैतारैगुरुसिख।

टी०—नाम का मनन करनेवाला सिख आप भी संसार से तर जाता है और अपने मूर्ख गुरु को भी तार देता है। मनै तरै गुरु शिष्य तारै अथवा मनन करनेवाला गुरु आप तो तरता है और अपने शिष्य को भी तार देता है।

मू०—मनैनानकभवहि नभिक्ष।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं—नाम का मनन करनेवाला अपनी जीविका के लिये भी घूमता नहीं है; क्योंकि उसका योगक्षेम आप ही करता है।

पद्मपुराणे।

मङ्गलानि गृहे तस्य सर्वसौख्यानि भारत।
अहोरात्रं च येनोक्तं राम इत्यक्षरद्वयम्॥

जो पुरुष रात्रि दिन 'राम' इन दो अक्षरों का अभ्यास करता है, संपूर्ण मंगल उसके गृह में निवास करते हैं। सब सुख उसको प्राप्त होते हैं। ऐसा नाम के मनन का फल है। गीता में भी कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

जो पुरुष अनन्य चित्त होकर मेरी उपासना करता है और जो नित्य ही मेरे में जुड़े हैं, उनका योगक्षेम मैं ही करता हूँ।

मू०—ऐसा नाम निरंजन होय जेको मन जाणै मन कोय।

टी०—गुरुजी कहते हैं उस दयालु और कृपालु परमेश्वर का नाम ऐसा शुद्ध है कि जो पुरुष उसका मनन करना जानता है, वह उसके फल को भी जानता है।

फल—रविवार से दस हजार दिन में जपे तो कुल शरीर का दुःख दूर हो जाय।

मू०—पंच परवाण पंचपरधान। पंचे पावे दरगहि मान॥
पंचे सोहै दर राजान। पंचा का गुरु एकहि ध्यान॥
जे को कहै करै वीचार। करते कै करणै नहीं सुमार॥
धौलधर्म दया का पूत। संतोषथापि राखआजिन सूत॥
जेको बूझै होवो सचिआर। धवलै ऊपर केता भार॥
धरती होर परै होर होर। तिसते भार तलै कौन जोर॥
जीअजाति रंगा के नाव। सभना लिखया वुडी कलाम॥
यहलेखा लिखि जाणै कोय। लेखालिखआकेताहोय॥
केतातानि सुआलिहुरूप। केतीदाति जाणैकौणकूत॥
कीतापसाओ एकोकवाओ। तिसतेहोय लखदरियाओ॥
कुदरत कवण कहावी चार। वारिआन जावा एकवार॥
जोतुधभावे साईभलीकार। तूसदासलामत निरंकार॥

मू०—पंचपरवान।

टी०—सत्य, संतोष, दया, धर्म, शौच इन पाँचों गुणों करके युक्त का नाम पंच है। सो इन गुणों करके युक्त संत महात्मा ही होते हैं। उन्हीं का नाम पंच है। जैसे इस लोक में दो पुरुषों का परस्पर झगड़ा पड़ जाता है, तब उसके मिटाने के लिये याने न्याय कराने के लिये

लोग परस्पर पंच मान लेते हैं। वैसे ही परलोक-संबंधी जो आस्तिक नास्तिकों के झगड़े पड़े हैं कोई जगत् का कर्त्ता ईश्वर को मानता है कोई नहीं मानता है, किंतु स्वभाव को ही कर्ता मानता है, इस तरह के जो अनेक वादियों के परस्पर वाद-विवाद होते हैं, उनको मिटाने-वाले संतजन ही संसार में पंच हैं। वही संतजन परलोक-संबंधी झगड़ों के दूर करने के लिये परवांन याने पवित्र माने जाते हैं। अर्थात् सबको माननीय होते हैं।

मू०—पंच परधान।

टी०—वही संतजन ही इसलोक परलोक में प्रधान हैं। याने मुख्य हैं। अर्थात् सबको मान करने के योग्य हैं। क्योंकि वही सबमें श्रेष्ठ हैं। इसी वार्ता को भगवान् ने भी कहा है—

भगवच्छरणा ये स्युः पुरुषार्थैकभागिनः।
अशोच्याः सन्ति शिष्टास्ते इत्याह भगवान् स्वयम्॥

जो परमेश्वर की शरण को प्राप्त हुए हैं और एक पुरुषार्थ को ही सेवते हैं वही अशोच्य हैं और सबमें श्रेष्ठ हैं।

मू०—पंचेपावहिदरगाहमान।

टी०—और उन्हीं संत महात्मों ने परमेश्वर की दरगाह में याने उसके दरबार में मान पाया है।

मू०—पंचेसोहिदरराजान।

टी०—वही पंच जो सन्तजन हैं परमेश्वर की प्राप्ति का दर जो भक्ति है, उसमें सोहैं, शोभा को पाते हैं। राजान याने वह राजों के दर पर शोभा नहीं पाते हैं। अथवा राजा लोग भक्तिरूपी दर पर शोभते नहीं हैं। क्योंकि वह सकामी और विषयी होते हैं।

मू०—पंचा का गुरु एक ध्यान।

टी०—पंचा का याने उन संतजनों का गुरु एक परमात्मा का ध्यान ही है।

सूतसंहितायाम् ।

स्मिताङ्कितमुखं मेघश्यामं पीताम्वरं विभुम् ।
श्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थः कौस्तुभादिश्रियोज्ज्वलम् ॥
गरुडध्वजमाधारं सर्वस्य जगतःपतिम् ।
आनन्दसान्द्रं श्रीकान्तं करुणार्द्रं निरन्तरम् ॥
शंखचक्रगदापद्मं वनमालाविभूषितम् ।
चिन्तयाविरतं प्रेम्णा द्रवीभूतेन चेतसा ॥

मंद-मंद हँसी से युक्त है मुख जिसका, मेघ के तुल्य श्याम है वर्ण जिसका, पीतांबर को जो धारण किए हुए है, वक्षःस्थल में वत्स का है चिह्न जिसके, कौस्तुभमणि का उज्ज्वल प्रकाश है, गरुड़ का चिह्न है ध्वजा में जिसके, जो संपूर्ण जगत् का आधार रूप है, जो आनंद करके पूर्ण है, कृपालु है, शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला करके जो विभूषित है उसका हम प्रेम करके निरंतर चिंतन करते हैं। अर्थात् ध्यान धरते हैं।

मू०—जे को कहै करै विचार।

टी०-यदि कोई पुरुष कहै अर्थात् संतों की महिमा को कथन करै और उनके गुणों का और उनकी महिमा का विचार करै।

मू०—करतै की करणै का नहीं सुमार।

टी०-कर्त्ता जो परमेश्वर है उसके करणै का अर्थात् संतों में गुणों के भरने का शुमार याने संख्या नहीं है। इसी पर गुरु साहब ने कहा है—साधु की महिमा वेद न जानै, महात्मा की महिमा को वेद भी नहीं संख्या करके जानता है। यदि जानता, तो क्यों न कहता? संत की महिमा अनंत है। अथवा यदि कोई कहै अर्थात् ईश्वर की सृष्टि का निरूपण करने लगे और उसकी उत्पत्ति का विचार करने लगे कि हम इसके भेद को जान जायँ, तो यह उसकी भूल है; क्योंकि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इस विचार को करते २ मर गए। किसी को भी उसका

भेद नहीं मिला है। यदि भेद मिलता, तो सब एक ही तरह से सृष्टि की उत्पत्ति को और प्रलयादि को कहते। ऐसा तो नहीं कहा है, किंतु सबने भिन्न-भिन्न क्रम से ही कहा है। किसी ने माया से, किसी ने प्रकृति से, किसी ने परिमाणुओं से उत्पत्ति कही है। इसी से जाना जाता है कि पूरा हाल किसी को मिला नहीं; क्योंकि करता जो परमेश्वर है, उसका कारणी जो जगत् उसका शुमार कुछ भी नहीं है; क्योंकि वह अनंत है।

मू०—धौल धर्म दया का पूत।

टी०—धौल नाम शुद्ध का है। शुद्ध जो धर्म है, वही दया का पुत्र है; क्योंकि दया से ही धर्म की उत्पत्ति होती है। इस वास्ते दया ही सब धर्मों का मूल कारण है। इसी से दयालु को ही धर्मात्मा और महात्मा भी कहा है।

प्राणायथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपितत्तथा।
आत्मौपम्येनभूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः॥

जैसे पुरुष को अपने प्राण प्यारे हैं वैसे ही सब भूतों को भी अपने प्राण प्यारे हैं। इसलिये अपने तुल्य सब भूतों पर महात्मा दया ही करते हैं। दया से धर्म उत्पन्न होता है और धर्म से सब कामनाएँ पूरी होती हैं।

भविष्यपुराणे।

धर्मात्संजायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते।
धर्ममेवापवर्गोऽयं तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्॥

धर्म से ही संपूर्ण अर्थ और काम उत्पन्न होते हैं। धर्म करने से ही मोक्ष भी होती है। इसलिये पुरुष को उचित है कि धर्म को ही आश्रयण करे। शुद्ध धर्म ने ही संपूर्ण ब्रह्मांड को धारण कर रक्खा है। दया का पुत्र जो धर्म है सो धौल याने आकाशवत् या शुद्ध चेतन की तरह व्यापक होकर अपने में ब्रह्मांड को उसने धारण कर रक्खा है।

मू०—संतोपथापरख्याजिनसूत ।

टी०—सूत का अर्थ मर्यादा है। उसी व्यापक धर्म में भगवान् ने पृथिवी सूर्यादि ग्रहों को अपनी-अपनी मर्यादा में याने हद में संतोप देकर स्थिर कर रक्खा है। अर्थात् सब पृथिवी, सूर्यादि अपने-अपने चक्र में रात-दिन घूमते रहते हैं और अपनी-अपनी हद को न तो छोड़ते हैं और न एक दूसरे से मिलते हैं।

प्र०—इस वार्ता को कौन जानता है जो परमेश्वर ने पृथिवी आदि को अपनी-अपनी मर्यादा में स्थिर कर रक्खा है ?

उ०। मू०—जेकोबूझैहोवैसच्यार ।

टी०—यदि कोई पुरुष ऐसे बूझै याने जान लेवे जो परमेश्वर ने ही सबको संतोप देकर स्थिर कर रक्खा है तब ऐसे जाननेवाला पुरुष भी होवै सच्यार अर्थात् सत्यवादी हो जाय। सत्यवादी होने से ही वह परमेश्वर का प्यारा भक्त होता है।

प्र०—पृथिवी सूर्यादि को जिसने संतोप देकर स्थिर कर रक्खा है उसने यह एक ही धरती बनाई है या दूसरी भी ?

मू०—धरतीहोरपरेहोरहोर ।

टी०—इस धरती से परे होर स्वर्ग की धरती है। उससे परे होर तप-लोक की धरती है। उससे परे होर सत्यलोक की धरती है। इसी तरह अनेक धरतियाँ हैं जिनका कुछ अंत नहीं है। तात्पर्य यह है कि आकाश में तुमको जितने तारे दिखाई पड़ते हैं ये सब लोक ही हैं। अनेक तारे अति ऊँचे हैं, जो दिखाई भी नहीं पड़ते हैं। हरएक तारा हजारों लाखों योजनों जितना बड़ा है अति दूर होने से छोटासा दिखाई पड़ता है। सब तारे गोल हैं। इनमें सब सृष्टियाँ बसती हैं। ये सब एक ब्रह्मांड कहाता है।

प्र०। मू०—तिसके भार तले कोणजोर ।

इतना बड़ा जो ब्रह्मांड है उसके भार के नीचे अर्थात् उसके बोझे के नीचे किसका जोर याने किसके बल से यह खड़ा है ?

उ०—उसी पूर्ववाले शुद्ध धर्म के जोर से सब ब्रह्मांड खड़ा है।

प्र०—पुराणों में तो लिखा है, पृथिवी शेषनाग के शिर पर खड़ी है। यह क्यों लिखा है ?

उ०—पुराणों में ठीक ही लिखा है; परंतु लोक उसके अर्थ को नहीं जानते हैं। शेष नाम बाक़ी का है। अर्थात् संपूर्ण जगत् के नाश होने पर जो बाकी बचे, उसका नाश कदापि न हो, उसी का नाम शेष है। सो ऐसा परमेश्वर ही है। उसी के जोर पर पृथिवी आदि सब खड़े हैं। यदि ऐसा नहीं मानोगे तो फिर पृथिवी को तो तुमने सर्प के शिर पर माना, वह सर्प पृथिवी से अनंत गुणा बड़ा है; क्योंकि सरसों के दाने के तुल्य उसके शिर पर पृथिवी लिखी है, फिर वह सर्प भी देहधारी है। वह भी निराधार नहीं रह सक्ता। वह किस पर है ? बाकी वे लोक फिर किस पर हैं ? इस तरह के अनेक दोष आवेंगे। इस वास्ते संपूर्ण ब्रह्मांड को ही ईश्वर की सत्ता पर मान लो जो कोई भी दोष न आवै। अथवा उसके भार तले अर्थात् उस ब्रह्मांड के भार के नीचे सिवाय परमात्मा के और कौन जोर को याने बल को रख सक्ता है ? कोई भी नहीं।

मू०—जीयाजात रंगाकेनाउ।

हरएक पृथिवी पर जो चंद्रमा आदि गोलों में है ऊपर अनंत जीवों के समूह हैं। उनकी जातियाँ अनंत हैं। अनंत ही उनके नील पीतादिक रंग हैं। अनंत ही उनके नाम हैं। यद्यपि ईश्वर को सब जीवों का और हरएक जीव के कर्मों का ज्ञान है, पृथक्-पृथक् हरएक जीव के कर्मों के अनुसार उसके गमना आगमनादि को भी ईश्वर जानता है, तथापि सब जीवों की संख्या का ज्ञान उसको नहीं है; क्योंकि सब जीवों की संख्या ही नहीं है। जीव अनंत जो ठहरे यदि सबकी गिनती हो जाय तो संख्या में सब आ जायँ सो नहीं हो सक्ता, क्योंकि संख्या अर्ब खर्ब लो ही है यदि कहो आगे भी अर्ब खर्ब की तरह कल्पना कर लेंगे सो नहीं हो सक्ता। जितनी ही तुम कल्पना करोगे सो बुद्धि के अनुसार ही तुम कल्पना करो। जहाँ तक तुम्हारी बुद्धि गम्य होगी वहाँ तक कल्पना करोगे। अधिक नहीं करोगे।

सो जीवों की संख्या बुद्धि की गम्य से बाहर है। एक जल की बूँद में हजारों सूक्ष्म जीव शरीरधारी रहते हैं। अब कौन संपूर्ण पृथिवी पर जलों के जीवों की संख्या कर सका है। इसी तरह वायु के अग्नि के जीवों को भी जान लेना। फिर यदि जीवों की संख्या हो जायगी तब ईश्वररचित सृष्टि की अनंतता नहीं रहेगी। ईश्वर की सृष्टि का अंत होने से ईश्वर भी अंतवाला हो जायगा। ये भी दोष आवेगा। यदि कहो सब जीवों की संख्या के ज्ञान के न होने से ईश्वर की सर्वज्ञता की हानि होगी सो नहीं होती। जो पदार्थ तीनों काल में नहीं है, जैसे कि ससे का शृंग आकाश का पुष्प उसके ज्ञान के अभाव होने से कौनसी हानि होती है; किंतु नहीं होती। वैसे संपूर्ण जीवों की संख्या के ज्ञान के अभाव से ईश्वर की कोई भी हानि नहीं है, और न सर्वज्ञता की हानि है। न ईश्वर के नियम की हानि है। पूर्वोक्त युक्ति और प्रमाणों से साबित होता है जीव अनंत हैं।

मू०—सबनालिखयावुडीकलाम।

टी०—जिस वास्ते जीव अनंत हैं, इसी वास्ते सब बुद्धिमानों ने जीवों की अनंतता में अपनी बड़ी-बड़ी कला में याने वाक्य लिखे हैं। जैसे ईश्वर का अंत किसी को भी नहीं मिला है, वैसे जीवों का अंत भी किसी को नहीं मिला है।

मू०—एहुलेखालिखजाणैकोइ।

टी०—ये जीवों के अंत का लेखा याने हिसाब यदि कोई लिख जानै अर्थात् कुछ लिखे भी अपनी बुद्धि के अनुसार, तो उससे जब पूछा जायगा हिसाब तब।

मू०—लेखालिखयाकेताहो।

टी०—वह जो तुमने लेखा लिखा है वह कितना होगा अर्थात् यावत् ब्रह्मांड भर के जीवों का तुमने हिसाब लिखा है या एक पृथिवीतल के जीवों का, अथवा एक नगर मात्र के जीवों का, या एक मकान मात्र के जीवों का हिसाब तुमने लिखा है तब इसका उत्तर

उससे कुछ भी नहीं बनेगा। उसको लज्जित ही होना पड़ेगा। फिर हम उससे पूछते हैं।

मू०—केतेताणसुहालुरूप।

टी०—ताण नाम बल का है। उस लिखनेवाले की बुद्धि में कितना एक ताण याने बल है और उसका सुहाल याने सुंदर हाल और रूप कैसा है?

मू०—केतीदातजाणै कौणकूत।

टी०—और परमेश्वर की दात को याने उदारता को कौन जानता है और उसकी कूत याने ताकत को कौन जान सक्ता है? कोई नहीं। क्योंकि ईश्वर में अनंत शक्तियाँ, अनंत शक्तियों से अनंत सृष्टियों को वह उत्पन्न कर सक्ता है। वह सर्वज्ञ है। परिपूर्ण है। जीव परिच्छिन्न अल्पज्ञ है। इसमें ईश्वर की सृष्टि आदि के हाल जानने की किसी की भी सामर्थ्य नहीं है। इसी वार्ता को भगवान् ने आप भी कहा है—

न शक्राद्याः सुरगणा न भृग्वाद्या महर्षयः।
सर्वज्ञा अपि मे विष्णोः प्रभावन्ते विदुः परम्॥
यतस्तेषां हि देवानां महर्षीणाञ्च सर्वशः।
अहमादिर्जगत्कर्ता नातो जानन्ति मत्कलाम्॥

इंद्र से लेकर देवतों के गण और भृगु से लेकर महर्षि ये सब सुजान योगी भी हैं तब भी मुझ विष्णु के प्रभाव को वह नहीं जानते हैं। जिस कारण से उन देवतों और महर्षियों का सर्व प्रकार से मैं ही आदि कर्ता हूँ इसी वास्ते वह मेरी एक कला को भी नहीं जानते हैं।

मू०—कीतापसाउ।

टी०—उस परमेश्वर ने अपनी मायाशक्ति करके जगत् का पसाउ याने पसारा अर्थात् फैलाव किया है।

मू०—एकोकावाव ।

टी०—अपने एक संकल्प से ही जगत् को उत्पन्न किया है। जगत् क
उत्पत्ति से पूर्व परमेश्वर में इच्छा हुई, मैं एक से अनेक हो जाऊँ। उ
इच्छा करके वह परमेश्वर अनेक रूप हो गया।

प्र०—जब सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व एक ही परमेश्वर चेतन व्या
पक था और कुछ भी नहीं था तब फिर उस एक से अनेक रूप जग
कैसे हो सक्ता है ? क्योंकि वह परमेश्वर चेतन है और जगत् जड़ है
चेतन शुद्ध से जड़ अशुद्ध की उत्पत्ति कदापि नहीं हो सक्ती है
क्योंकि इसमें कोई दृष्टांत नहीं मिलता है।

उ०—दो ही पदार्थ नित्य हैं। एक चेतन परमेश्वर ; दूसरी जड़
माया। दोनों परस्पर ऐसे मिले हुए हैं जो एक दूसरे का विभाग किसी
प्रकार से भी नहीं हो सक्ता है। उस माया का कार्य इतना जड़ जगत
है। वह दृष्टि का गोचर है ; पर जड़ कार्य में भी वह चेतन मिला है
और अति सूक्ष्म है। वह किसी इंद्रिय का भी विषय नहीं है ; किंतु
कार्य को देखकर उसके कर्ता चेतन का अनुमान होता है। यदि
संपूर्ण पृथिवी आदि जड़ कार्यों में चेतन व्यापक न हो तब सर्वत्र घास
वग़ैरह भी कदापि न हो ; क्योंकि बिना चेतन की सत्ता के कार्य
कदापि उत्पन्न नहीं होता है। कार्य जब नष्ट होता है तब अपने सूक्ष्म
जड़ कारण में ही लय हो जाता है। उसका अभाव कदापि नहीं होता।
यदि अभाव हो जाय, तो फिर अभाव से कदाचित् भी कार्य की उत्पत्ति
नहीं हो सक्ती। जैसे लकड़ी जलाने से लकड़ी नष्ट हो जाती प्रतीत होती
है; पर वह नष्ट नहीं होती; किंतु धुआँ होकर अपने कारण में लय हो
जाती है। जिन चारों तत्त्वों से लकड़ी बनी थी उन चारों ही तत्त्वों की
अंशें अपने-अपने कारण में लय हो जाती हैं। इसी तरह जड़ जगत् नष्ट
होकर अपने कारण माया में सूक्ष्मरूप होकर लय हो जाता है। फिर
सृष्टिकाल में माया से ही चेतन की सत्ता से उत्पन्न हो जाता है। केवल
चेतन से उत्पन्न नहीं होता है और चेतन सदैव ही एकरस ज्यों-का-
त्यों ही रहता है।

मू०—तिसतेहोयलखदरयाउ ।

उसी परमेश्वर की मायारूपी शक्ति करके लाखों दर्याव याने ब्रह्म उत्पन्न हुए हैं और होते हैं।

मू०—कुदरतकवणकहावीचार ।

टी०—उस परमेश्वर की कुदरत जो माया है, याने शक्ति है, उस शक्ति का कौन पुरुष कहाँ लों विचार कर सक्ता है ? कदापि नहीं कर सक्ता है। जितना ब्रह्मांड के आप वाहर देखते हैं इतना ब्रह्मांड शरीर के भीतर है। इसी शरीर के भीतर अनंत सृष्टियाँ हैं। जिनको ये जीव बड़े-बड़े योगादि साधनों करके भी नहीं जान सक्ता। बड़े-बड़े धन्वंतरि आदि वैद्य हुए हैं, जिन्होंने शरीर के एक-एक अवयव के ऊपर एक ग्रंथ बनाया है। फिर भी उनको कुछ पता नहीं लगा है। बड़े-बड़े हकीम हुए हैं जिन्होंने नेत्र के विषय में सात सौ परदा दर्याफ्त करके बड़ी-बड़ी किताब बनादी है फिर भी उनको पूरा हाल नहीं मिला है। बड़े-बड़े डाक्टरों ने एक-एक अंग को फाड़-फाड़ कर हाल लेना चाहा है फिर भी उनकी अक्ल कुंठित होगई है। किसी भी मनुष्य मात्र की गम्य नहीं है जो उसकी शक्ति का विचार कर सके।

मू०—वारिआनजावांएकवार ।

टी०—वारिआ का अर्थ कहा है जब कि उसकी माया शक्ति का भेद कोई नहीं कह सका है तब फिर उस परमेश्वर के भेद को कौन कह सक्ता है ? एक वार भी कोई नहीं जान सक्ता है।

मू०—तूसदासलामतनिरंकार ।

टी०—गुरुजी कहते हैं निरंकार निराकार परमेश्वर जितना जगत् कि तुम्हारे करके उत्पन्न किया हुआ है यह सब नाशी है अनित्य है। तुही एक सदैव सलामत याने ज्यों-का-त्यों स्थित रहनेवाला है।

फल—रविवार से चार घड़ी सूरज निकलने से पहिले ढाई हजार जपै तो आँखों का दर्द दूर हो।

मू०—असंखजप्यअसंखभाउ। असंखपूजा असंखतपताउ॥
असंखगरंथ मुखिवेदपाठ। असंखजोग मनरहिहिउदास॥
असंखभक्त गुणज्ञानवीचार। असंखसती असंखदातार॥
असंख सूर मुँह भप सार। असंख मौन लिवलाय तार॥
कुदरत कवण कहां वीचार। वारिआ न जावां एकवार॥
जोतुधभावेसाई भलीकार। तूंसदासलामतनिरंकार॥

मू०—असंखजप असंखभाव।

टी०—इस तुक में प्रथम असंख पद का अर्थ अनंत करना। जिसका अंत न हो याने कभी भी जिसका नाश न हो ऐसा कौन है? परमेश्वर। सो प्रथम असंख पद परमेश्वर का संबोधन है। दूसरा असंख पद बहुत संख्या का वाची है। उसका जप तथा भाव दोनों के साथ संबंध है। ऐसे ही और तुकों में भी जान लेना। अर्थात् हे अनंत परमेश्वर! इस जगत् में बहुत ही पुरुष तेरे नाम का जप्य करनेवाले हैं।

प्र०—क्यों बहुत पुरुष उसके नाम का जप्य करते हैं?

उ०—संसार से निर्भय होने के लिये। सो इसी वार्ता को आदित्यपुराण में अर्जुन के प्रति भगवान् ने भी कहा है—

श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि।
तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनामप्रसादतः॥

श्रद्धा करके अथवा अनादर करके जो मनुष्य पृथिवी पर नाम को जपते हैं हे पार्थ! उनको राम नाम के प्रभाव से कहीं भी भय नहीं होता है।

कालिकापुराणे।

तावत्तिष्ठन्ति पापानि देहेषु देहिनां वर।
रामरामेति यावद्वै न स्मरन्ति सुखप्रदम्॥

हे देहधारियों में श्रेष्ठ ! तावत्पर्यंत पुरुषों के पाप शरीर में रहते हैं यावत्पर्यंत वह रामनाम का स्मरण नहीं करते हैं। स्मरण करने से सब पाप दूर हो जाते हैं। हे अनंत ! संसार में तेरे असंख्य ही भक्त तुम्हारे साथ भाव याने प्रेम करनेवाले हैं ; क्योंकि तुम प्रेम से ही प्रसन्न होते हो।

दृष्टांत—कोई पुरुष विष्णु की मूर्ति की पूजा करता था। एक दिन एक देवी का उपासक उसके घर गया। उसने देखा कि वह विष्णु की प्रतिमा की पूजा कर रहा है। उसने उससे कहा तुम देवी की पूजा किया करो। उसने कहा मेरे पास देवी की मूर्ति नहीं है। उसने उसको देवी की एक मूर्ति दी। उस दिन से वह देवी की पूजा करने लगा। एक दिन वह देवी को जब धूप देने लगा तब उसके चित्त में आया कि इस धूप की गंधि विष्णु को भी पहुँचेगी। कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जो विष्णु को यह न पहुँचे। तब वह रुई लेकर विष्णु की मूर्ति की नासिका में भरने लगा। विष्णु तुरंत प्रसन्न होकर कहने लगे। वर माँग। उसने कहा पहले मैं इतना काल आपकी पूजा करता रहा तब आप क्यों नहीं प्रसन्न हुए जो आज ढिठाई से प्रसन्न हुए हो ? विष्णु ने कहा पहले तू जड़ जान कर मेरी पूजा करता रहा। इस वास्ते मैं प्रसन्न नहीं हुआ था। अब तू ने चेतन जान कर नासिका में रुई देने लगा ऐसा तेरा प्रेम देख कर मैं प्रसन्न हुआ हूँ। इसी पर गुरुजी भी कहते हैं।

मू०—असंख पूजा।

हे अनंत परमेश्वर ! संसार में असंख्य प्रेमी भक्त तुम्हारी पूजा करते हैं। अथवा अनंत विधियों से भक्त लोग तुम्हारी पूजा को करते हैं। तुम्हारी पूजा के प्रकार भी असंख्य हैं, जिनका कुछ भी अंत नहीं है। पूजा करनेवालों का भी अंत नहीं आता है। एक आजड़ी जंगल में रहता था और नित्य एकांत में बैठकर ऐसा विचार करता था कि यदि परमेश्वर मेरे पास आवें तो मैं अपनी भेड़ियों के दूध से उसका सिर धोकर उसको स्नान करवाकर भेड़ी की खालों को उसके

नीचे बिछाऊँ, उसको उढ़ाऊँ और सुलाऊँ, और उसकी बड़ी सेवा करूँ ; क्योंकि उसका कोई मा-बाप नहीं है उसको कौन खिलाता नहलाता सुलाता होगा। एक दिन एक महात्मा वहाँ जा निकले और उन्होंने उस आजडी को चुपचाप बैठे हुए देख कर कहा—तू क्या करता है ? उसने अपनी पूजा का सब प्रकार कहा कि मैं इस तरह से परमेश्वर की पूजा करता हूँ। महात्मा ने कहा तू ठीक नहीं करता। परमेश्वर क्या शरीरवाला है जो तू उसका सिर धोना चाहता है ? वह आजडी चुप होगया और फिकर में पड़ गया। महात्मा जब जाकर अपना ध्यान करने लगे तब उनका ध्यान न लगा। उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना किया कि मेरे से क्या अवज्ञा हुई है ? आकाशवाणी हुई तूने हमारे भक्त आजडी को हमारी पूजा से हटाया है। हमारी पूजा के प्रकारों का अंत नहीं है। तू जाकर उससे भूल बख़्शा, और उसको उसी की पूजा में लगा तब मेरा ध्यान जुड़ेगा। वह गये और आजडी से माफी माँगी और उसको उसी पूजा में लगाया तब फिर उनका भी ध्यान लगा। परमेश्वर की पूजा अनंत प्रकार से होती हैं। जैसे प्रेम हो वैसे ही उसकी पूजा करे।

मू०—असंखतपताउ।

टी०—हे परमेश्वर ! तेरे तप करने के प्रकार भी असंख्य हैं। कोई तो कृच्छ्रचान्द्रायणादि रूप व्रतों करके तप करते हैं, कोई पंचाग्नि तप करके, कोई जलशायी होकर, कोई उलटे लटक कर तप करते हैं, कोई मंत्रों के जपरूपी तप करते हैं, कोई इंद्रियों के दमनरूपी तप करते हैं, कोई एकांत सेवनरूपी तप करते हैं।

दृष्टांत—एक महात्मा से किसी ने कहा, आप तो आसन पर ही दिन भर बैठे रहते हैं। कहीं जाया आया कीजिए। महात्मा ने कहा जब हम अपने से बड़े के पास चलकर जाते हैं तब हमारा निरादर होता है बिना प्रयोजन चल कर जाना अपमान का हेतु है। जब छोटे के पास जाते हैं तब अहंकार उत्पन्न होता है। जब बराबरवाले के पास जाते हैं तब ईर्षा उत्पन्न होती है। इसी से दुःख होता

है। क्योंकि बहुतों का मिलना और सहवास करना दुःख का ही कारण है। इसलिये हम एकांत ही सेवन करते हैं। इसी पर दत्ता-त्रेयजी ने कहा भी है—

वासो बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि।
एकाकी विचरेद्विद्वान् कुमार्या इव कंकणः॥

दत्तात्रेयजी भिक्षा के लिये एक ब्राह्मण के द्वार पर गये। आगे घर में एक कुमारी कन्या ही थी और कोई नहीं था। उस कन्या ने कहा महाराज खड़े रहो मैं धान कूटकर आपको भिक्षा देती हूँ। जब वह धान कूटने लगी तब उसके हाथ में जो चूड़ी पहिनी थी वह छन २ करने लगी। उसको लज्जा आई। उसने एक २ करके उतार दी। जब एक २ रही तब छन २ का शब्द भी जाता रहा। उसी जगह में दत्तात्रेयजी ने उससे गुण लिया। अकेले रहने का और ऊपरवाले वाक्य को कहा, जो बहुतों के साथ सहवास करने से लड़ाई झगड़ा होता है। दो के साथ रहने से बातें होती हैं। इसलिये विद्वान् को कुमारी कन्या के कंकण की तरह अकेला रहना चाहिये। इसी पर गुरुजी ने भी कहा है—असंख्य तपरूपी भक्ति को यांन उपासना को पदा करते हैं।

मू०—असंखगरंथमुख वेदपाठ।

टी०—हे अनंत परमेश्वर! इस संसार में अनंत पुरुष अनंत ग्रंथों के पाठों करके और अनंत पुरुष कंठाग्र वेद के पाठों करके तुम्हारी उपासना करते हैं।

मू०—असंखयोगमनरहैउदास।

टी०—इस संसार में बहुत से पुरुष हैं जो चित्त की वृत्ति के निरोधरूप योग् को करके संसार से उदास होकर रहते हैं। अथवा हे अनंत परमेश्वर! तेरी प्राप्ति के लिये असंख्य ही जगत् में योगा-भ्यास को करते हैं।

प्र०—योग कितने प्रकार का है?

उ०—योग चार प्रकार के हैं-एक मंत्रयोग, दूसरा हठयोग, तीसरा लययोग, और चौथा राजयोग है ।

सकारेण वहिर्याति हकारेण विशेन्महत् ।
हंसहंसेति मन्त्रोऽयं सर्वे जीवा जपन्ति तम् ॥
गुरुवाक्यात् सुषुम्णायां विपरीतो भवेज्जपः ।
सोऽहंसोऽहमिति प्रोक्तो मन्त्रयोगः स उच्यते ॥

सकार करके श्वास याने प्राणवायु मुख द्वारा बाहर को जाती है और हकार करके फिर भीतर को आती है। हंस हंस इस प्रकार का यह मंत्र है । संपूर्ण जीव इसको दिन रात जपते हैं । इसी का नाम अजपा जाप भी है; क्योंकि विना ही जपने से जपना रहता है; पर सब लोग इसको जानते नहीं । गुरु करके बताई हुई युक्ति से जब यह मंत्र सुषुम्णा नाड़ी में उलटा होकर जपा जाता है, तो सोहं सोहं रूप करके जपा जाता है । तब इसी का नाम मंत्रयोग कहा जाता है । और जब सूर्यनाड़ी और चंद्रनाड़ी को अर्थात् दहिने बायें दोनों नासिका की वायु को बाहर से रोककर भीतर दोनों की हठ से ऐक्यता कर देने का नामही हठयोग है । हठयोग में अनेक प्रकार की वस्ती धोती नेती आदि क्रियाएँ भी करनी पड़ती हैं । खेचरी से आदि ले बहुतसी मुद्रा भी करनी लिखी हैं । इसलिये हठयोग बड़ा कठिन है, क्योंकि इसमें सब क्रियाएँ बड़े हठ से ही होती हैं । इसी वास्ते इसका नाम हठयोग है । अब लययोग को कहते हैं-क्षेत्रज्ञ जीवात्मा का परमात्मा में लय लगाना अर्थात् दोनों की ऐक्यता के चिंतन करने का नाम ही लययोग है । अब राजयोग को कहते हैं-यम नियमादि साधनों से और प्राणायाम करके जो अणिमादिक सिद्धियों को प्राप्त होकर विराजमान होने का नामही राजयोग है । विशेष विस्तार योग के ग्रंथों में देख लेना । संसार में अनंत पुरुष ऐसे भी हैं जो योग से ईश्वर की प्राप्ति की इच्छा करते हैं । बहुत से पुरुष ऐसे भी हैं जो उदासीन वृत्ति को धारण करके परमेश्वर की प्राप्ति की इच्छा करते हैं ।

दृष्टांत—पूर्व देश में एक राजा साल पीछे ठाकुरजी का उत्साह करता था और एक हजार ब्राह्मण को भोजन कराता था। एक समय उसके यहाँ ब्रह्मभोज में बहुत से ब्राह्मण आए। एक उदासीन वृत्तिवाला धूली में लिबड़ा हुआ ब्राह्मण भी कहीं से वहाँ अकस्मात् ही आ निकला और ब्राह्मणों की पंक्ति में बैठ गया। जब राजा सबके चरण धुलाता हुआ उस ब्राह्मण के चरणों को धोने लगा तब राजा ने कहा महाराज और ब्राह्मणों के चरण तो बड़े कोमल हैं और आपके चरण बड़े कड़े और खेरे हैं। तब ब्राह्मण ने कहा राजन् तुमने कभी ब्राह्मणों के चरण नहीं धोए हैं। पतुरियों के चरण धोते रहते हो। तुम क्या जानो ब्राह्मणों के चरण कैसे होते हैं। राजा चुप होगया। जब भोजन होने लगा तब और ब्राह्मणों ने तो कुछ भूख रखकर खाया और उस ब्राह्मण ने पूरण भोजन करके आचमन कर लिया। पीछे राजा ने कहा एक लड्डू के वास्ते एक रुपया दूँगा जो और खावे। ब्राह्मण खाने लगे। राजा ने उस ब्राह्मण की तरफ देखा, तो वह चुपचाप बैठे हैं और कुछ भी नहीं खाते। राजा उनके पास आकर कहने लगा महाराज आप क्यों नहीं खाते हैं ? उन्होंने कहा राजन् हमने तो जितना भोजन करना था सो एकही वार करके आचमन कर लिया। अब तो हम कुछ नहीं खावेंगे। राजा ने कहा आपको मैं पाँच रुपया एक लड्डू खाने का दूँगा। उन्होंने नहीं माना बढ़ते-बढ़ते एक लड्डू खाने का एक हज़ार रुपया राजा ने कहा, तब भी नहीं माना। आखिर राजा ने कहा ऐसा दाता तुमको नहीं मिलेगा जो एक लड्डू खाने का एक हज़ार रुपया देगा। ब्राह्मण ने कहा तुम्हारे ऐसे दाता बहुत मिलते हैं और मिलेंगे; पर तुमको ऐसा त्यागनेवाला नहीं मिलेगा। ऐसा कहकर वह उदासीन वृत्तिवाला ब्राह्मण चला गया।

दृष्टांत—एक महात्मा जंगल में रहते थे। एक दिन उनको बहुत क्षुधा लगी तब नगर में चले आये। एक महाजन बंदरों को चने खाने के लिये डालता था। वह भी बंदरों में बैठकर चने चुग-चुग करके खाने लगे। लोग जमा होगये। उधर से राजा की सवारी आई।

राजा ने पूछा, भीड़ क्यों लगी है ? लोगों ने कहा एक बड़े महात्मा हैं। बंदरों के साथ चने चुगकर खाते हैं। राजा ने दंडवत् करके उनको अपने साथ हाथी पर चढ़ा लिया। लोगों ने कहा अच्छे महात्मा हैं जिनको राजा ने साथ बिठा लिया है। जब राजा अपने घर जाने लगे तब महात्मा ने कहा राजन् हमको हाथी से उतार दे। राजा ने कहा महाराज हमारे गृह में कुछ काल निवास करिये। महात्मा ने कहा, नहीं। हम जायँगे। ऐसा अवसर फिर हमको कब मिलेगा जब कि हमने बंदरों के साथ चने चुगकर खाये तब भी वाह वाह हुई। हाथी पर चढ़े तब भी वाह वाह हुई। अब जो जावेंगे तब भी वाह-वाह होगी। ऐसा न हो जो फिर हाय-हाय होजाय। इसलिये जल्दी उतारो। राजा ने उतरकर कहा फिर कब दर्शन होगा। कहा, पता कोई नहीं। फिर दर्शन हो, न हो। ऐसा कहकर वह जंगल को चले गए। ऐसे-ऐसे उदासीन वृत्तिवाले महात्मा भी संसार में अनंत ही हैं जो कि राजसुख को भी तृण समान जानते हैं।

मू०—असंख भक्त गुण ज्ञान विचार।

टी०—हे अनंत परमेश्वर! संसार में तेरे गुणों का और ज्ञानों का विचार करनेवाले तेरे असंख्य भक्त हैं। अथवा असंख्य ऐसे तेरे भक्त हैं जो तुम्हारे गुणों के निरूपण करने में और तुम्हारे स्वरूप के निरूपण करने का विचार ही करते रहते हैं।

दृष्टांत—एक तपस्वी भक्त एक दिन परमेश्वर के दयालुतादि गुणों का विचार करने लगा। तब उसके चित्त में यह वार्ता फुरी कि परमेश्वर में न्यायकारिता-रूपी गुण नहीं है; क्योंकि जो पापी हैं, वह सुखी हैं; जो पुण्यात्मा हैं वह दुःखी हैं। ऐसा विचार कर अपने आसन से उसने चल दिया। रास्ते में खेत के किनारे एक मनुष्य खड़ा था। उससे उस तपस्वी ने उसी वार्ता को पूछा; क्योंकि परीक्षा करने चले थे। उस मनुष्य ने कहा जहाँ पर पानी की जरूरत है, वहाँ तो बरसाता नहीं और समुद्र में जहाँ जरूरत नहीं है वहाँ बरसाता है। इस वास्ते वह न्यायकारी नहीं है। जब वह आगे गए तो एक युवा

अवस्थावाला पुरुष उसको मिला और तपस्वी के साथ ही चल पड़ा। दोनों का साथ होगया। संध्या के समय ग्राम में एक दोनों पहुँचे। वहाँ एक साहूकार के द्वार पर गए। उसने दोनों की बड़ी खातिर की और रात्रि को सोने चाँदी के बर्तनों में भोजन कराया। सुंदर पलँगों पर सुलाया। सवेरे जब चलने लगे तब उसका एक स्वर्ण का गिलास तपस्वी के साथवाले ने चुरा लिया। जब दूर निकल गए तब तपस्वी को मालूम हुआ। तपस्वी बहुत नाराज हुआ। उससे कहा तू हमारा संग छोड़ दे। परंतु उसने न माना। फिर संध्या के समय एक ग्राम में एक कृपण महाजन के द्वार पर पहुँचे। वह आगे से लठ लेकर उठा। आखिर खुशामद से रात्रि को वहाँ पर रहे। सवेरे चलती दफा उस को वह सोने का गिलास उसने दे दिया। तब भी तपस्वी नाराज हुए फिर वहाँ से चलकर एक ग्राम में एक भक्त के घर में रात्रि को ठहरे। उसने बड़ी सेवा की। सवेरे चलती दफा गिलास चुरानेवाले ने उसके छोटे लड़के की गर्दन दबाकर मार डाला। तपस्वी बड़ा दुःखी हुआ और उसको छोड़कर आगे भागा। आगे एक नदी के किनारे एक टीले पर एक ग्राम बसा था। उस नदी के किनारे तपस्वी जाकर बैठा। पीछे से वह भी पहुँचा। फिर दोनों इकट्ठे हो गए। ऊपर ग्राम मे एक महाजन ने अपने नौकर को भेजा। उसने उस नौकर को नदी में ढकेलकर मार डाला और आप भी गायब हो गया। तपस्वी बड़ी चिंता में पड़ा और विचार करने लगा यह क्या हुआ। थोड़ी देर पीछे उसी जगह एक बड़े वृद्ध महात्मा को तपस्वी ने देखा और उसने तपस्वी से कहा, परमेश्वर अन्यायकारी नहीं है; किंतु न्याय-कारी है। मैं ही आप के साथ था। जिस सेठ का सोने का गिलास मैंने चुराया था वह केवल बड़ाई और नाम के लिये खिलाता था। कुछ प्रेम से नहीं। अब वह नाम के लिये नहीं खिलावेगा। उसका अभिमान दूर हो गया। जिसको गिलास दिया वह कृपण था। खिलाता किसी को नहीं था अब वह खिलावेगा। जिसका लड़का मारा वह पहिले पूर्ण भक्त था। लड़के के होने से उसकी भक्ति छूट

गई थी। ईश्वर का ध्यान भी नहीं करता था। अब करेगा। जिसको नदी में फेंका, उसने मन में रात्रि को मालिक को मारकर लूटने की सलाह की थी उसके मालिक को बचाया। परमेश्वर न्यायकारी है। अन्यायकारी नहीं है। वह वृद्ध तपस्वी निश्चय कराकर अंतर्द्धान हो गया और तपस्वी भी अपने स्थान पर चला गया। इसी पर गुरुजीने भी कहा है अनेक ही भक्त परमेश्वर के गुणों का और ज्ञानों का विचार ही करते रहते हैं।

मू०—असंखसती असंखदातार।

टी०—सतीनाम पतिव्रता स्त्री का है अर्थात् संसार में अनेक ही पतिव्रता स्त्रियाँ हैं। जो पति की सेवा करके ही परमगति को प्राप्त होती हैं।

प्र०—पतिव्रता का लक्षण क्या है ?

उ०—शुक्रनीति के तीसरे अध्याय में पतिव्रता के लक्षण कहे हैं।

पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च।
उत्थाप्य शयनीयानि कृत्वा वेश्म विशोधनम्॥

सवेरे प्रातःकाल पति के उठने से पहले उठकर, शय्या आदि को उठाकर घर में झाड़ू बुहारी देकर प्रथम स्नान करके फिर पति को स्नानादि को करा जो फिर घरके कामों में प्रवृत्त होती हैं।

मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्त्तिनी॥
छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु।
दासीवदिष्टकार्येषु भार्या भर्त्तुः सदा भवेत्॥

जो स्त्री मन वाणी कर्मों से शुद्ध होकर पति की आज्ञा में रहती है। छाया की तरह पति के पीछे चलती है। स्वच्छ होकर सखी की तरह पति के कार्यों को करती है, और दासी की तरह पतिसे दिखाये हुए कामों को करती है, वही पतिव्रता कहलाती है।

नोच्चैर्वदेत्र परुषं न च ह्याह्वातिमप्रियम्।
न केनचिच्च विवदेदप्रलापविवादिनी॥

जो जोर से नहीं बोलती है। न कठोर तथा अप्रिय शब्द को बोलती है। किसी के साथ विवाद भी नहीं करती।

न चास्य व्ययशीलास्यान् न धर्मार्थविरोधिनी।
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्या वचनान्यतिनिन्दिताम् ॥

अति खर्च को भी न करे और धर्म अर्थ का विरोधी भी न होवै और प्रमाद उन्माद रोष ईर्षादि वचनों को कदापि न कहे।

पैशुन्यहिंसाविषयमोहाहंकारदर्पताम्।
नास्तिक्यसाहसस्तेयदंभान् साध्वी विवर्जयेत् ॥

चुगुली हिंसा का विषय और मोह अहंकार तथा दर्प को और नास्तिकपने और साहस तथा दंभों को साध्वी स्त्री सर्वदा त्याग कर देवे।

जपस्तपस्तीर्थसेवां प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम्।
देवपूजां नैव कुर्यात् स्त्रीशूद्रस्तु पतिं विना ॥

पति की सेवा छोड़कर जप, तप, तीर्थ, सेवा और संन्यास तथा मंत्रों का अनुष्ठान और देवता की पूजा इत्यादि कर्मों को स्त्री कदापि न करे। पूर्वोक्त धर्मों से युक्त स्त्री का नाम ही पतिव्रता है। सीता, द्रौपदी, शकुंतला, सत्यवती आदि असंख्य ही संसार में हुई हैं और होवेंगी और विद्यमान भी है। सती नाम सत्यवादी का भी है। जो सदैव सत्य ही भाषण करती है। सत्यवादी भी संसार में असंख्य हैं। सत्यवादी ही इस लोक परलोक को जय कर लेता है। सत्य के आश्रित ही सारा ब्रह्मांड स्थित है। सत्य भाषण की बड़ाई श्रुति भी करती है—

सत्येन वायुर्वाति सत्येनादित्यो रोचते दिवि सत्येन वाचः प्रतिष्ठा सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात्सत्यं परमं वदन्ति ॥

सत्य के आश्रित वायु चलती है, सत्य के आश्रित सूर्य आकाश में प्रकाशमान है, सत्य से ही वाणी की प्रतिष्ठा होती है, सत्य से ही सब स्थित है, इसलिये सत्य भाषण को ही श्रेष्ठ कहा है।

स्मृतिः ।

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यो ज्ञानं हितं भवेत् ।
यद्भूतहितमत्यन्तं तद्वै सत्यं परं मतम् ॥

सत्य वचन ही श्रेयस्कर होता है, सत्य में ज्ञान भी हितकर होता है, जो भूतों का अत्यंत हितकर सत्य है, वही उत्तम माना है ।

दृष्टांत--किसी नगर में एक विधवा स्त्री रहती थी । उसके दो लड़के थे । एक नौ वर्ष का था और दूसरा बारह वर्ष का । बड़े लड़के ने एक दिन अपनी माता से कहा हम विद्या पढ़ने के लिये विदेश जावेंगे। पहले तो उसकी माता ने उजर किया । फिर जब लड़के ने उसकी बहुत विनय की, तब उसने मान लिया । जब वह एक क़ाफ़ले के साथ जाने लगा, तब माता ने कहा, बेटा एक काम करना । झूठ कभी मत बोलना । एकसौ अशरफी मेरे पास हैं । पचास तुम्हारे छोटे भाई के हिस्से की हैं और पचास तुम्हारे हिस्से की । सो तुम अपने हिस्से की लेकर अपनी गुदड़ी में सी डालो । जहाँ पर तुमको सफ़र में काम पड़े एक-एक करके खर्चते रहना । लड़के ने अशरफी लेकर अपनी गुदड़ी में सी डाली और माता की नसीहत को स्वीकार करके क़ाफ़ले के साथ चल दिया । एक दिन जंगल में क़ाफ़ले को लूटने वास्ते चोरों का धाड़ा आया । सबको लूट कर उस लड़के के पास आए । लड़के से पूछने लगे तुम्हारे पास क्या है ? लड़के ने कहा हमारे पास पचास अशरफियाँ हैं । चोरों ने अपने अफ़सर को बुलाकर कहा, लड़का ऐसा कहता है । अफ़सर ने पूछा, वह कहाँ हैं ? लड़के ने कहा इस गुदड़ी में सी हुई हैं । खोल कर जब देखा तब ठीक उसमें से पचास अशरफियाँ निकलीं । चोरों के सरदार ने लड़के से कहा लड़के तुमने अशरफी हमको क्यों बताई ? लड़के ने कहा हमको माता का हुक्म है झूठ कभी मत बोलना । इस वास्ते मैंने बता दी । सरदार ने विचार किया कि छोटा सा लड़का होकर अपनी माता की आज्ञा को इस तरह से मानता है और हम लोग अपकर्म को करते हुए बूढ़े होगए और अपने पिता

परमेश्वर की आज्ञा को नहीं मानते हैं। धिक्कार है इनको। उसी समय से चोरों ने चोरी करने की क़सम खा ली और सब क़ाफ़ले का माल फेर दिया। लड़के की अशरफी फिर उसी तरह सींकर उसको भी साथ जाकर पहुँचा दिया। देखिए सत्य के प्रभाव से सब का माल बच गया और चोर भी साथ होगए। ऐसे-ऐसे भी संसार में असंख्य हैं।

असंखदातार।

दान करनेवाले का नाम दातार है। याने संसार में दान करनेवाले अर्थात् परमेश्वर के निमित्त देनेवाले भी असंख्य हैं। इसी वास्ते सौरपुराण के दशम अध्याय में दान का माहात्म्य भी लिखा है।

न दानादधिकं किञ्चिद् विद्यते भुवनत्रये।
दानेन प्राप्यते स्वर्गः श्रीर्दानेनैव लभ्यते॥

तीनों लोकों में दान से अधिक उत्तम कर्म दूसरा कोई भी नहीं है; क्योंकि दान करने से ही स्वर्ग की और लक्ष्मी की प्राप्ति भी होती है।

दानेन प्राप्नुयात्सौख्यं रूपं कान्तिं यशो बलम्।
दानेन जयमाप्नोति मुक्तिर्दानेन लभ्यते॥

दान से ही सुख, रूप, कांति, यश, बल और जय मिलता है। ज्ञानवानों को दान देने से मुक्ति भी प्राप्त होती है।

दानेन शत्रुञ्जयति व्याधिर्दानेन नश्यति।
दानेन लभते विद्यां दानेन युवतीं जनः॥

दान से पुरुष शत्रु को भी जय कर लेता है। दान से ही विद्या को पाता है। दान से युवती भी प्राप्त होती है। रोग भी दान से नाश होजाता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम्।
दानमेव न चैवान्यदिति देवोऽब्रवीद्रविः॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों का साधन भी दान ही है। दूसरा कोई नहीं है। ऐसा सूर्य भगवान् ने कहा है। अब दान के अधिकारी को दिखाते हैं।

तस्माद्दानाय सत्पात्रं विचार्यैव प्रयत्नतः।
दातव्यमन्यथा सर्वं भस्मनीव हुतं भवेत्॥

इस कारण दान विचार कर यत्न से सत्पात्र को दे। अन्यथा भस्म में हुती की तरह निष्फल हो जायगा।

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः शान्ताश्चैव जितेन्द्रियाः।
श्रौतस्मार्तक्रियानिष्ठाः सत्यनिष्ठाः कुटुम्बिनः॥
तपस्विनस्तीर्थरताः कृतज्ञा मितभाषिणः।
एभ्य एव प्रदातव्यमीहेद्दानफलं यदि॥

वेद और वेद के अंगों के तत्त्व को जानता हो, शांत चित्त और जितेंद्रिय हो, श्रुति स्मृति प्रतिपाद्य क्रिया में जो निष्ठावाला हो, कुटुंबवाला हो या तपस्वी हो, तीर्थवासी हो, कृतज्ञ हो, अल्पभाषण करनेवाला हो, इन्हीं को दान देना चाहिए, जिसको दान के फल की इच्छा हो।

भारत।

दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं निरुजस्य किमौषधम्॥

भीष्मजी युधिष्ठिर से कहते हैं, हे युधिष्ठिर! दरिद्री जो दीन दुःखी हैं उनका तू पालना कर। धनी को दान मत दे, क्योंकि रोगी को ओषधि पथ्य है। रोग रहित को ओषधि से क्या प्रयोजन है?

प्र०—सब दानों में उत्तम दान कौन है? पद का अर्थ क्या है?

उ०—जिस वस्तु की जिसको जरूरत है और जिसके बिना जिस को कष्ट होता है वही वस्तु उसको देनी उत्तम दान है। जैसे कि बालक को विद्या की, रोगी को ओषधि की, भूखे को अन्न की, प्यासे

को जल की, नग्न को वस्त्र की, पाँव से नंगे को जूते की, गरमी के दिनों में जल की, सरदी के दिनों में वस्त्र, लकड़ी और कोइला की अन्न की सदैव ही सबको जरूरत रहती है, विद्यार्थी को पुस्तक की, और पढ़ने की जरूरत रहती है सो इन सबको जरूरतवालों के प्रति अपना स्वत्व छोड़ कर जरूरतवाली वस्तु देने का नाम ही दान है। तथापि तीन दान बड़े भारी हैं। भूखे को अन्न, प्यासे को जल, क्योंकि इनसे बिना प्राण नहीं रह सके हैं, इनका दान मानो प्राणों का दान है, और विद्या दान सबसे अधिक है, क्योंकि विद्या से हीन को पशु लिखा है। मानों पशु से मनुष्य बना देना है। विद्या दान मानों जीवन दान है, क्योंकि जीविका का हेतु भी है। क्षुधातुर को अन्न और प्यासे को जलदान करने में अधिकारी नहीं देखना चाहिए। और दानों में अधिकारी देख कर देना चाहिए। और जीवमात्र को अभयदान देना सब दानों से अधिक दान है इस वास्ते दान ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन है। शास्त्रों में दाता की ही स्तुति की है। सो दिखाते हैं—

दाता नीचोऽपि सेव्यः स्यान्निष्फलो न महानपि।
जलार्थी वारिधिं त्यक्त्वा पश्य कूपं निषेवते॥

नीच जातिवाला दाता भी सेवने योग्य है। उत्तम जातिवाला कृपण सेवने योग्य नहीं है। देखो जल का अर्थी बड़े समुद्र को त्याग कर छोटे से कूप की उपासना करता है।

त्याग एको गुणः श्लाघ्यः किमन्यैर्गुणराशिभिः।
त्यागाज्जगति पूज्यन्ते पशुपाषाणपादपाः॥

संसार में श्लाघा करने के योग्य एक गुण ही त्याग है; क्योंकि त्याग ही जगत् में पशु, पत्थर और वृक्षादिक सब पूजे जाते हैं। भाषा में भी एक कवि ने दाता की बड़ाई की है—

दोहा।

बलि, दधीचि, शिवि, करण की, कीर्ती सुन-सुन कान।
तृण समान तन दान मों, धन को कहा प्रमान॥

जग में दिया अनूप है, दिया करो सब कोय।
करको धरो न पायवो, जो कर दिया न होय ॥

और अदाता कृपण की निंदा भी शास्त्रों में लिखी है—

बोधयन्ति न याचयन्ते भिक्षाद्वारगृहेगृहे।
दीयतां दीयतां नित्यमदातुः फलमीदृशम् ॥

जो ग़रीब द्वार-द्वार पर भीख माँगते हैं, वह भीख नहीं माँगते हैं, किंतु उपदेश करते हैं कि नित्य दान करो। दान न करने का ये ही फल है जो हम भोग रहे हैं।

द्वारंद्वारं रटन्तीह भिक्षुकाः पात्रपाणयः।
दर्शयन्त्येव लोकानामदातुः फलमीदृशम् ॥

द्वार-द्वार पर हाथ फैलाए माँगते हुए जो भिक्षु रटन करते हैं, वह माँगते नहीं हैं, किंतु लोगों को दान करने के फल को दिखा रहे हैं। जो नहीं देता है, उसकी यही दशा होती है। दाता होना ही जगत् में उत्तम है। इसी पर गुरुजी ने भी कहा है, जगत् में असंख्य ही दाता हैं।

यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने।
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषमन्यस्य रक्षसि ॥

जो कुछ कि तू उत्तम पुरुषों को दे और जो आप प्रतिदिन भोगेगा, वही धन तुम्हारा अपना है। बाक़ी का दूसरे के लिये ही जमा करना है। संसार में बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो सैकड़ों अनर्थों से धनको कमाते हैं और न दान करते हैं न आप खाते हैं। वह जब मर जाते हैं तब उनका धन तो उनके संबंधी ले लेते हैं और पाप को वह अपने साथ ले जाते हैं। अथवा असंख्य दाता रहे अनंत परमेश्वर संसार में असंख्य जीवों को कर्मों के अनुसार सब पदार्थों के दाता तुमही हो तुम्हारे तुल्य दूसरा दाता कोई भी नहीं है; क्योंकि आस्तिक नास्तिक सब की पालना करनेवाले तुमही हो।

मू०—असंखसूरमुंहभपसार।

टी०—हे अनंत ! इस संसार में उत्तम लोक की प्राप्ति के लिये असंख्य ही योधे अपने मुख पर शस्त्रों की धारा खाते हैं । याने सराहते हैं । अथवा अनंत पुरुष ऐसे हैं जो मुख से साररूप जो परमेश्वर का नाम है उसी को भष याने भाषण करते रहते हैं ।

मू०—असंख मौन लिव लाय तार ।

टी०—इस संसार में असंख्य ऐसे मौनी हैं जिन्होंने परमेश्वर के ध्यान में वृत्ति को एकाकार करके लगा रक्खा है । मौन रहने की प्रशंसा भी लिखी है—

आत्मनो मुखदोषेण बध्यन्ते शुकसारिकाः ।
बकास्तत्र न बध्यन्ते मौनं सर्वार्थसाधनम् ॥

अपने मुख के दोष से ही तोते और मैना पक्षी पिंजरों में बंधायमान हो जाते हैं ; परंतु बगला मौन रहता है, इस वास्ते वह बंधायमान नहीं होता । इस वास्ते मौन संपूर्ण अर्थों का सिद्ध करनेवाला है । मौन रहने में बहुत से गुण हैं । इस वास्ते बहुत से मौन को धारण करते हैं ।

मू०—कुदरतकौणकहांवीचार ।

टी०—हे अनंत परमेश्वर ! तुम्हारी कुदरत जो मायारूपी शक्ति है उसका कोई कहाँ तक विचार कर सक्ता है, किंतु कोई भी उसका विचार नहीं कर सक्ता है ; क्योंकि माया में अनंत शक्तियाँ हैं । इसी वास्ते अनंत प्रकार की सृष्टि को माया उत्पन्न करती है तथा लय करती है ।

दोहा ।

छाया माया एक सी तुलसी लखी न जाय ।
बिन चाहे पीछे लगे चाहे भागी जाय ॥
जो माया साधन तजी भूप ताहि लपटाय ।
ज्यों नर त्यागत वमन को श्वान स्वाद सों खाय ॥

दुरत्यया हरेर्माया सर्वव्यामोहकारिणी ।
हरिभक्तिं समाश्रित्य तर्तुं शक्या मुमुक्षुभिः ॥

हरि की माया बड़ी दुर्जय है। सबको व्यामोह करनेवाली है। हरि की भक्ति को आश्रयण करके मुमुक्षु लोग उसको तर जाते हैं। परमेश्वर की माया का विचार कोई भी नहीं कर सक्ता है।

मू०—वारिया न जावे एक वार।

हे अनन्त! तुम्हारी शरण लिए विना तुम्हारी माया एक वार भी हटाई नहीं जाती है।

मू०—जो तुदभावे साई भली कार।

टी०—हे अनंत! हम तुम्हारी शरण को अब प्राप्त हुए हैं, जो तुमको भावे याने अच्छा लगे सोई तुम भलाही करोगे और भलाही करते भी हो।

मू०—तू सदा सलामत निरंकार।

टी०—हे निरंकार! याने निराकार परमेश्वर, तुम्हीं सदा सलामत एकरस नित्य ज्यों के त्यों रहनेवाले हो और सब प्रपंच मिथ्या जड़रूप अनित्य है सो कहा भी है—

> अनादौ संसारे जनिमृति भये भ्रान्तिनिविडे।
> निमग्नानां पुंसां क्वचिदपि सुखं नास्ति विमलम्॥
> तपोभिर्वा दानैःक्रतुभिरपि वेदानुवचनैः।
> ऋतेऽत्यन्तप्रेम्णा हरिपदसरोजेऽच्छसुखदे॥

इस जन्म मरणरूपी भ्रांति करके संघने और अनादि संसार में डूबे हुए जो पुरुष हैं वह शुद्ध सुख को कदापि प्राप्त नहीं होसक्ते हैं। तप, दान, यज्ञों करके भी विमल सुख को वह कदापि प्राप्त नहीं होसक्ते हैं विना हरि के शुद्ध चरण कमलों में प्रेम का वह शुद्ध सुख नहीं मिल सक्ता है।

> अतोऽहं ते नाथ श्रुतिविशदकीर्ते मधुरिपो।
> शरण्यं पादाब्जं भ्रमर इव शान्त्यादिनिलयम्॥

हे नाथ! हे मधुदैत्य के नाश करनेवाले! श्रुतियों में तुम्हारी विमल शुद्ध कीर्ति है। इस वास्ते मैं भ्रमर की तरह शांति का आश्रयरूप

जो तुम्हारे चरण कमल हैं उनकी शरण को मैं प्राप्त होता हूँ। एक कवि ने भी भाषा में कहा है--

कवित्त। जाही हाथ धनुष को उठायो है सीतापति, जाही हाथ रावण संहारे लंक जारी है। जाही हाथ तारे औ उबारे हाथ हाथी गह, जाही हाथ सिंधुमथि लक्ष्मी निकारी है॥ जाही हाथ गिरिवर उठाय गिरिधारी भये, जाही हाथ नंद काज नाथे नाग कारी है। हौंतो अति अनाथ, कहौं दीनानाथ, वाही हाथ मेरे हाथ गहिबे की अब पारी है॥

इसी तरह ईश्वर से नित्य ही अपने कल्याण के लिये प्रार्थना करे। इसी पर गुरुजी ने भी कहा है--

पूर्व पौडी करके गुरुजी ने ईश्वर की सृष्टि की विचित्रता दिखलाई है। अब इस पौडी करके भी सृष्टि की विचित्रता को दिखलाते हैं—

मू०--असंख मूर्ख अंधघोर। असंख चोर हरामखोर॥ असंखअमरकरजाहिजोर। असंखगलवडहतिआकमाहि॥ असंख पापी पाप करजाहि। असंखकूडिआरकूडेफिराहि॥ असंखम्लेच्छमलभषखाहि। असंखनिंदकासिरकरहिभार॥ नानकनीचकहे वीचार। वारिआ न जावां एकवार॥ जोतुधभावैसाईभलीकार। तूसदासलामतनिरंकार॥

मू०—असंखमूर्खअंधघोर।

टी०—ईश्वर की सृष्टि में अनंत ही मूर्ख हैं। उन मूर्खों से भी घोर अंधे याने अति मूर्ख भी असंख्य हैं। जैसे बंदर का स्वभाव होता है कि जो उसको चने खिलावे उसी के कपड़ों को वह फाड़ता है। वैसे मूर्ख का भी स्वभाव होता है। जो उसके हित का उपदेश करे उसी का वह बुरा करता है। एक वन में वृक्ष पर एक चिड़िया अपना

घर बनाकर रहती थी और नीचे उस वृक्ष के रात्रि को एक बंदर आकर बैठता था। सर्दी से वह बंदर रात्रि भर काँपता रहता था। एक दिन चिड़िया ने बंदर से कहा, तुम्हारा शरीर तो मनुष्य की तरह है तुम अपना घर बनाकर आराम से क्यों नहीं रहते हो ? बंदर ने कहा तू चिड़िया होकर मेरे को उपदेश करती है। ऐसा कहकर उसके घर को बंदर ने तोड़ डाला इसी पर कहा है—

उपदेशो न दातव्यो यादृशे तादृशे जने।
पश्य वानरमूर्खेण सगृही निगृही कृतः॥

जिस किसी को उपदेश नहीं करना चाहिए। देखो मूर्ख बंदर ने घरवाली चिड़िया को बिना घरवाली बना दिया।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रमणं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभुवनेश्वरैः॥

कठिन पर्वतों में, वनचरों के साथ भ्रमण करना तो अच्छा है परंतु मूर्ख के संग इंद्र का भुवन भी अच्छा नहीं है। योगवाशिष्ठ में भी कहा है—

वरं शरावहस्तस्य चाण्डालागारवीथिषु।
भिक्षार्थमटनं राम न मूर्खहतजीवितम्॥

हे राम! हाथ में ठीकरा लेकर चांडालों के घरों में भिक्षा माँगकर खाना अच्छा है, परंतु संसार में मूर्ख होकर जीना अच्छा नहीं है।

न दुर्जनः साधु दशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः।
आमूलसिक्तःपयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति॥

जो अति मूर्ख है उसी का नाम दुर्जन है। उस दुर्जन को कितना ही शिक्षा करो वह कभी भी साधु दशा को प्राप्त नहीं होता है। यदि दुग्ध और घृत करके भी नीम के वृक्ष को सिंचन करो तब भी वह मधुर कदापि नहीं होता है। वैसे ही दुर्जन मूर्ख को जानो।

सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात्क्रूरतरः खलः।
मन्त्रौषधैर्वशःसर्पः खलः केनोपशाम्यति॥

संसार में सर्प का स्वभाव बड़ा क्रूर है, परंतु सर्प से भी खल मूर्ख क्रूर है ; क्योंकि मंत्र, औषध करके सर्प वश्य हो जाता है, परंतु खल मूर्ख वश में नहीं होता।

दोहा।

मूरख को समझायवो, ज्ञान गाँठ को जाय।
कैला कबहुँ न ऊजलै, सौ मन साबुन लाय॥

सोरठा।

फूलै फलै न वेत, यदपि सुधा बर्षहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलैं विरंचि सम॥

दोहा।

अनघर सुघर समाज में, आय बिगारै रंग।
जैसे हौज गुलाब का, बिगरै श्वान प्रसंग॥

दोहा।

गुन में औगुन खोजहीं, हिये न समझै नीच।
ज्यों जूही के खेत में, सूकर खोजत कीच॥

अनेक ग्रंथों में मूर्खों की निंदा कवियों ने भी लिखी है। अब मूर्खों के दृष्टांतों को दिखाते हैं। एक आदमी ने रसोई बनाई। जब वह तैयार हुई, तब एक आदमी से कहा, ज़रा देखना मैं जल ले आऊँ। वह तो जल लेने गया और इधर एक कुत्ता आया। उसने कुछ रोटी तो खा ली और बाक़ी के चावल दाल को गिरा दिया और चला गया। जब वह पानी भर कर आया, तो क्या देखता है चौका सब भ्रष्ट हुआ पड़ा है। उस आदमी से कहा यह क्या हुआ? उसने कहा, कुत्ते ने सब किया है। कहा, तुमने हटाया क्यों नहीं? कहा हटाने को तो आप नहीं कह गये थे। जरा सा देखने को कह गए थे, सो मैं जरा सा देखता रहा। दृष्टांत—एक आदमी ने अपने नौकर

से कहा दर्पण उठा लाओ और दूसरे हाथ से अतर की शीशी को उठा लाना उसने एक हाथ में दर्पण को उठाया और दूसरे हाथ में अतर की शीशी को उठा कर जब चला तब दर्पण हाथ से छूट कर टूट गया। जब मालिक के पास गया तब मालिक ने पूछा दर्पण कैसे टूटा। उसने दूसरे हाथ से अतर की शीशी को छोड़ कर कहा ऐसे टूटा वह भी टूट गई।

दृष्टांत—एक आदमी ने एक नौकर रक्खा और उससे कहा जब हम काम करने को हुक्म दें तभी करना होगा। उसने कहा, बहुत अच्छा। एक दिन मालिक बाज़ार में किसी काम को निकले। पीछे २ नौकर चला। रास्ते में मालिक के कंधे पर से दुशाला गिर पड़ा। जब बहुत दूर चला गया तब याद आया। नौकर से पूछा, दुशाला क्या हुआ? उसने कहा वह तो पीछे ही गिर पड़ा था। कहा, तुमने उठाया क्यों नहीं? कहा आपने उसके उठाने के लिये हुक्म नहीं दिया था।

दृष्टांत—एक ने पंडित से पूछा महाराज पेड़ फल कैसे देता है? पंडित ने कहा, पेड़ को लगा उसको नित्य जल से सींचने से फल देता है। उसने एक बबूर के पेड़ को लगाया और नित्य उसको जल से सींचने लगा। कुछ काल में वह बड़ा हो गया। एक दिन एक भैंस उससे खुजवाने लगी। उसके सींग उस पेड़ में फँस गए। ऊपर से वह मूर्ख आ गया। उसने देख कर कहा आज पंडित जी का कथन ठीक हुआ है। पेड़ में फल तो बड़ा भारी लग गया है। उसने भैंस को घर में ले जाकर अपनी मान कर बाँध दिया। ऐसे २ मूर्ख भी संसार में असंख्य ही हैं।

दृष्टांत—एक ग्राम में एक चौबेजी रहते थे। वहाँ पर चौबेजी के पड़ोस में एक जाट का मकान था। जाट के घर में एक बड़ी अच्छी भैंस थी। चौबेजी उस भैंस को देख कर नित्य जाट की स्त्री से कहैं, जजमाननी जब तेरी भैंस ब्यावे तब एक दिन हमको इसके दूध की तस्मई जिमाना। दैव योग से भैंस ब्याई। तब चौबे नित्य ही कहैं

हमारा नेवता कब होगा। एक दिन जाटनी दूध को धर कर पानी लेने गई। पीछे से कुत्ता आकर दूध को चाटने लगा। इतने में जाटनी भी आगई। उसने देखा कूकर दूध को पी रहा है। उसने कूकर को हटा कर विचार किया आज चौवेजी को तस्मई बना कर खिला देनी चाहिए। वह जाकर चौवेजी को नेवता दे आई और उसी दूध की बड़ी सुंदर तस्मई बनाई। उसमें बहुत सा घृत और मीठा भी छोड़ दिया। जब तस्मई तैयार हुई और चौवेजी आकर खाने लगे। जब थोड़ी सी बाक़ी रही, तब चौवेजी ने कहा, तस्मई क्या बनी है मानों अमृत है। तब जाटनी ने कहा चौबेजी कूकर की जीभ में अमृत रहता है ? चौवे ने पूछा यह कैसे ? उसने कहा आज कूकर हमारी भैंस के दूध को अपनी जीभ से चाटता रहा है। उसी दूध की तस्मई बनाई है। इसी वास्ते अमृत की तरह स्वादु है। चौवे को जो गुस्सा आया उठा कर थाली को पटकने लगा। तब जाटिनी ने कहा थाली मत फोड़ना ये तो चमार के घर से माँग लाई हूँ। चौवे को और क्रोध आया और भागा रास्ते में उसका पति मिला। चौवे ने उससे हाल कहा। उसने एक सुपारी चौवे को दी इससे मुख शुद्ध कर लो। जब सुपारी को चौवेजी दाँत के नीचे तोड़ने लगे तब जाट ने कहा चौवेजी इसको तोड़ना मत ये हमारे नित्य ही मुख की सफाई करने की है। चौवेजी सुपारी को फेंक कर भाग गए।

दृष्टांत—एक जाट ब्राह्मण जब भोजन करने लगा तब उसको पाखाने की हाजत हुई वह तुरंत पाखाने फिरने चला गया और पाखाना फिर कर फिर जल्दी आकर चौके में रोटी खाने लगा। जब आधा भोजन कर चुका तब उसने स्त्री से कहा जल्दी हमको जल देओ; क्योंकि मैं शौच करना भूल गया हूँ। पहले शौच कर आवें तब पीछे बाक़ी का भोजन करेंगे। स्त्री ने कहा महाराज आप तो अपनी क्रिया का निर्वाह करते हैं; परन्तु हम लोगों से तो ऐसा निर्वाह होना कठिन है। ऐसे २ अंध घोर मूर्ख याने अति मूर्ख संसार में बहुत ही हैं।

मू०—असंखचोरहरामखोर।

टी०—इस संसार में चोर भी असंख्य हैं और हरामखोर अर्थात् हराम का खानेवाले भी असंख्य हैं। जिनके हाथ पाँव सब दुरुस्त हैं और काम कुछ नहीं करते यानी ठगी करके या भीख माँग कर खाते हैं वही हरामखोर कहलाते हैं। जो जिस मालिक के नौकर हैं उसका काम अच्छी तरह से नहीं करते हैं, मालिक के धन को भी चुरा लेते हैं, वही हरामखोर कहाते हैं। जो उपकार को नहीं मानते हैं वह भी हरामखोर कहलाते हैं।

दृष्टांत—एक वैष्णव साधु ने अपने चेले से कहा तू खेत में जाकर फली को तोड़कर चुरा ला। चेले ने कहा, जब कोई आ जायगा, तब मैं पकड़ा जाऊँगा। गुरु ने कहा, जब कोई आता हमको नज़र पड़ेगा तब मैं तुमको राग में समझा दूँगा। गुरु तो सड़क के किनारे पर बैठे और चेला साहिब खेत में फलियों को तोड़ने लगे। गुरु ने दो आदमियों को सामने से आते देखा, तब प्रभाती राग में चेले को बताते हैं।

वडजा साधु दुरांडे वडजा आय गया संसारी।

जब देखा कि और चार पाँच आदमी चले आते हैं, और एक तरफ से खेतवाला भी चला आता है और वह बीच में फँसा है, तब उसको समझाता है।

पेट पलणिया ह्वेजा साधू पडी जीव पर भारी।
पूर्व पश्चिम उत्तर रुक रहे दक्षिण दिशा तुम्हारी॥

चेला समझ गया दक्षिण दिशा खाली है। वह दक्षिण की तरफ से निकल आया। फलियों को लेकर दोनों चल दिए। ऐसे २ चोर और हरामखोर भी संसार में अनंत हैं।

मू०—असंख अमर कर जाय जोर।

टी०—इस संसार में असंख्य ही पुरुष अपने को अमर मानकर गरीबों पर जोर करके चले जाते हैं। तात्पर्य यह है, रावण जरासंध, कंसादि हजारों ही अपने को अमर मानकर बड़े २ जोरों को दिखला कर काल का ग्रास हो गए हैं।

मू०—असंख गलवड हत्या कमाइ ।

असंख्य ही संसार में ऐसे २ भी हैं, जो लोगों के गले काटकर हत्यारूपी कमाई को संसार से ले जाते हैं ।

मू०—असंख पापी पाप कर जाय ।

टी०—इस संसार में असंख्य ही पापी हैं, जो पापों को करके चले जाते हैं ।

दृष्टांत—एक रास्ते में चार ठग रहते थे । जब कोई मुसाफिर उस रास्ते से आ जाता और उसके पास कुछ द्रव्य होता, और जब वे जान जाते कि इसके पास द्रव्य है, वे भी चारों तिलक छापे करके रास्ते में थोड़ी २ दूर पर बैठ जाते थे । पहला ठग तो कहे, दामोदर याने इसकी कमर में दाम हैं । दूसरा कहे, हरे २ याने हर लो, छीन लो । तीसरा कहे, नारायण २, इसको नारे में याने कस में आने दो । चौथा कहे, वासुदेव २, अपने वस में कर लो । जब मुसाफिर कस में आता, तब उसको अपने आधीन करके वे चारों पापी उसे लूट लेते ।

संसार में अनेक जीव अपने स्वाद के लिये जीवों को मारते हैं । विचार करो, उन बेचारे जीवों ने उनका क्या कसूर किया है जो मृग और बकरे आदि को अपने हाथ से मारते हैं या अपने नौकरों से मरवा कर खाते हैं । ऐसे २ भी संसार में असंख्य पापी हैं कोई देवी की मूर्ति बनाकर उसके आगे बकरे वगैरह जीवों को काटकर पापों को करते हैं और कहते हैं बलि करने से देवता प्रसन्न होता है यह उनकी भूल है । दूसरे जीवों की बलि देवता की प्रसन्नता के वास्ते करते हैं, अपनी बलि क्यों नहीं करते । यदि एक दिन भी देवी बलि को खा ले, तब दूसरे दिन कोई भी बलि का नाम न ले । कबीरजी ने कहा है—

सरजीव काटै निरजीव पूजै अंतकाल को भारी ।
राम नाम की गति नहीं जानी भय डूबे संसारी ॥

और भी संसार में अनेक प्रकार के पापों को पापी करते २ मर-जाते हैं।

मू०—असंख कूड आर कूडेफिराहि।

कूड नाम झूठ का है और कूडआर नाम झूठ बोलनेवाले का है। इस संसार में असंख्य पुरुष झूठे हैं जो प्रतिदिन झूठ बोलते फिरते हैं।

दृष्टांत—एक ग्राम में एक जाट का बाप मर गया। पुरोहित ने आकर क्रियाकर्म कराया। सत्रहवें के दिन, शुद्धों में, जाट से सब वस्तु उसके बाप के नाम से संकल्प कराकर लेगया। तब भी पुरोहित की तृष्णा पूरी न हुई। दूसरे दिन पुरोहित ने जाट के द्वारपर एक घोड़ी बँधी हुई देखी। घर में जाकर विचार करने लगा, किसी प्रकार से घोड़ी लेनी चाहिए। ऐसा विचार कर तीसरे दिन सवेरे ही जाट के द्वारपर आकर पुरोहित रोने लगा। जाट ने पूछा, तुम रोते क्यों हो? पुरोहित ने कहा, तुम्हारा बाप रात्रि को स्वप्न में मुझसे कहता था सब वस्तु तो मेरे को मिली; परंतु यमपुरी के मार्ग में मेरे को पैदल चलना पड़ता है। मैं बड़ा दुःखी हूँ। अगर घोड़ी मेरे पीछे दो, तब सवार होकर चलूँ। जाट की माता ने कहा बापू के पीछे घोड़ी भी दे डालो। जाट के लड़के ने पुरोहित को घोड़ी भी दे दी। पुरोहित घोड़ी लेकर बड़े चैन से उस पर चढ़ कर फिरने लगे। एक दिन जाट के लड़के ने पुरोहित से कहा, आज मेरे को स्वप्न आया है। बापू घोड़ी से गिरा है, उसके चूतड़ों पर चोट लगी है, वह बड़ा दुःखी है। उसने कहा है पुरोहित के चूतड़ों पर जब तक नहीं दगवावोगे, तब तक मैं अच्छा नहीं होऊँगा। सो पुरोहितजी चलो हम तुम्हारे चूतड़ों पर दगवावें। ऐसा कहकर जाट ने पुरोहित को पकड़ लिया। पुरोहित छुड़ाए, जाट छोड़े नहीं। आख़िर पुरोहित ने हाथ जोड़कर जाट को घोड़ी देकर अपनी जान छुड़ाई। ऐसे २ कूड बोलनेवाले भी संसार में हैं।

दृष्टांत—एक आदमी खजूर के वृक्ष पर फल खाने के लिये चढ़ा। जब खाचुका, तब गिरनेलगा। उसने कहा, पीरजी यदि मैं राज़ी ख़ुशी

से उतर जाऊँगा, तब सौ रुपया तुम्हारी नजर दूँगा। जब आधा उतर आया, तब कहने लगा, जो सौ नहीं बनेगा, तब पचास तो जरूर दूँगा। जब चौथा हिस्सा रह गया, तब कहने लगा, पचीस तो दूँगा। जब नीचे उतर आया तब कहने लगा, जो चढ़ेगा वह देगा। न मैं फिर चढ़ता हूँ न दूँगा। ऐसे भी झूठ और कूड़ही बोलनेवाले संसार में असंख्य पड़े फिरते हैं। शास्त्रों में झूठ बोलनेवाले को अति नीच लिखा है सो दिखाते हैं--

आत्मपुराणे।

अकारणं हि यो वाक्यं मृषा ब्रूयान्नराधमः।
तस्य जिह्वां निकृन्तति सन्दंशैर्यमकिङ्कराः॥

जो अधम पुरुष विना कारण ही असत्य भाषण करता है उसकी जिह्वा को यमदूत अपने हथियारों से छेदते हैं।

अपि प्रसिद्धा लोकेऽस्मिन्नधमाः पुरुषा हि ये।
अधमः प्रथमस्तेषु योऽनृतं वक्ति मानवः॥

इस लोक में जितने अधम पुरुष प्रसिद्ध हैं उन सबमें वह अति अधम है जो नित्यही झूठ बोलता है। तात्पर्य यह है जो नित्य ही झूठ बोलनेवाले हैं वे भी संसार में असंख्य हैं।

मू०—असंख म्लेच्छ मलभष पाहि।

टी०—इस संसार में असंख्य म्लेच्छ हैं, जो मलीन याने अभक्ष मांसादि का भोजन करते हैं।

प्र०—म्लेच्छ किसी जातिविशेष का नाम है या कि मलीन याने निंदित कर्मों के करनेवाले का है?

उ०—पूर्व युगों में वेद शास्त्र के विरुद्ध कर्मों के करनेवाले का नाम म्लेच्छ होता था। अर्थात् जो अपने वर्णाश्रम के धर्मों को त्याग कर घृणा से रहित होकर दूसरों को पीड़ा पहुँचाता था, अति क्रोधी स्वभाववाला, जीवों की नित्यही हिंसा करता था, वही म्लेच्छ कहा

जाता था, पर कलियुग में वैसेही कर्मों के करनेवाले भारतखंड से बाह्य खंडों में कई एक हुए हैं, जिन्होंने जाती म्लेच्छ बना दिए हैं और अपनी किताबों में भी हिंसा आदि अधर्मों को अपनी जातियों के लिये धर्म बनाकर अपने २ उन्होंने पृथक् २ मत बना दिए हैं। सो इस काल में वही म्लेच्छ कहलाते हैं।

प्र०—उनके कितने एक मत हैं और उनके मतों के उसूल कैसे हैं?

उ०—म्लेच्छों के मतों के बहुत से भेद हैं, परंतु तेरह सौ बरस से जो मुहम्मद से म्लेच्छ मत बड़ा है वह इस काल में बहुत है। इसी के मत में हिंसादि सब दोष पूरे घटते हैं। अरब देश में इसका जन्म हुआ है। एक किसान के घर में। जब यह बड़ा हुआ तब इसने लोगों में अपने को मशहूर किया कि मैं पैग़म्बर हूँ याने परमेश्वर ने मेरे को लोगों को उपदेश करने के लिये भेजा है। उस देश के लोग सीधे थे। वे उसको वैसे ही मानने लगे। फिर वह रात्रि को एक किताब का एक अध्याय बनाता था और सवेरे लोगों से कहता था, परमेश्वर मेरे पास देवता के हाथ में नित्य ही अपना हुक्म लिख कर भेजता है। लोग उसके कहे को वैसे ही मान लेते; क्योंकि ऐसा नियम है जहाँ पर बहुत से लोग विद्याहीन मूर्ख होते हैं। वहाँ पर जो एक आदमी चतुर पैदा हो जाता है, वह सबको अपना पशु बना लेता है। वह बड़ा चतुर था। उसने पूरे अरब देश को धीरे २ अपना सेवक बना लिया और वहाँ के राजा को भी अपना सेवक बना लिया। अपनी किताब में सब चतुराई की बातें लिखीं। उसने उस किताब में लिखा है यदि कोई जीवात्मा या ईश्वरात्मा के स्वरूप को पूछे तो कह दो ऐसा सवाल करने से गुनाह होता है। ख़ुदा आप ही इस बात को जानता है। इतर मज़हबवालों को मारो। उनका धन-माल लूटो तुमको पुण्य होगा। बिहिश्त मिलेगा। ऐसी २ बातें उस किताब में लिखी हैं, जो केवल अधर्म रूप ही हैं। भला परमेश्वर तो न्यायकारी है, वह ऐसी किताब क्यों बनावेगा। जब सबको वही पैदा करनेवाला और पालनेवाला है। वह

न्यायकारी है और सब जगह हाज़िर है। तब फिर उसकी बनाई हुई या भेजी हुई वह किताब कदापि साबित नहीं हो सकती है। किताब वगैरह वह वहाँ भेज सकता है जहाँ पर वह नहीं होता है। पर परमेश्वर तो वहाँ पर भी मौजूद था। सब के सामने उसने अपना हुक्म ज़ुबानी क्यों न सुना दिया? यदि डर के मारे सब के सामने हुक्म सुनाने की उसमें ताक़त न थी, तब किताब बनाने की उसमें ताक़त कहाँ से आई? यह भी उसने लोगों को फँसाने के वास्ते मशहूर कर दिया था जो ख़ुदा ने भेजी है। फिर परमेश्वर को दयालु कहते हैं। जिसकी सब जीवों पर दया है वह कैसे अपनी किताब में लिख सकता है कि दूसरों की स्त्रियों को और धन को छीनो और उनको मारो, ऐसा तो निर्दयी हिंसक ही लिखता है। इससे भी साबित होता है, ख़ुदा की बनाई वह किताब नहीं है केवल लोगों के ठगने के लिये उसने उसे आप बनाई है। फिर उसने इस वार्ता को अपने मतवालों से कहा था कि मैं ख़ुदा का प्यारा हूँ। जो मेरे मतवाला होगा उसको मैं ख़ुदा से सिफारिश करके बख़्शा दूँगा। यह भी वंचन करनेवाली बात है। यदि वह ख़ुदा को प्यारा होता तब मरता क्यों? जैसे और मनुष्य अपनी आयु भोग कर मर जाते हैं वैसे वह भी मर गया। औरों से किसी तरह की भी अधिकता उसमें साबित नहीं होती। फिर औरों का तो वंश चला है उसका वंश भी नहीं चला। इसीसे जाना जाता है कि उसका सब कहना झूठा है। फिर उसके मरने के पीछे उसके मतवाले करोड़ों मर गए किसी ने भी आज तक नहीं आकर कहा है कि हमको पैग़म्बर ने पापों से छुड़ा दिया। वह ख़ुद ही पापों से छूटा है। इसवास्ते पापों से छुड़ा देना कथन भी मिथ्या है। फिर संसार में हजारों और मतोंवाले हैं उनसे जब म्लेच्छों की लड़ाई होती है और म्लेच्छों को वह बुरी २ तरह से मारते हैं तब उस काल में न तो उनको पैग़म्बर बचाता है और न उनका ख़ुदा बचाता है, तब आगे क्या उनको बचावेगा? उनका मत भी दिन बदिन दबता चला जाता है। यदि उन्हींका मत ख़ुदा को प्यारा

होता, तब उसकी मदद न करता ? इसीसे साबित होता है कि उनकी सब बातें स्वकपोलकल्पित हैं। म्लेच्छ जीवों की उत्पत्ति मानते हैं। कहते हैं, सब जीवों को याने जीवात्माओं को खुदा ने एक बार पैदा कर दिया है। उन्हीं में से जन्मते रहते हैं। जो मरता है वह फिर नहीं जन्मता। प्रलय तक वह कबर में पड़ा रहेगा। प्रलय में हिसाब होगा। ऐसे २ बकड़ मोर हैं। हम पूछते हैं पूर्वजन्म तो ये मानते नहीं हैं। किसी को राजा, किसी को गरीब, किसी को जन्म से दुःखी, किसी को जन्म से सुखी, ऐसा इनके खुदा ने क्यों बनाया। जिसको राजा बनाया उसने खुदा पर कौन सा एहसान किया था ? जिसको दुःखी बनाया, उसने खुदा का क्या नुकसान किया था ? बिना कुसूर किसी को जन्म से अंधा, किसी को रोगी बनाया, इस वास्ते इनका खुदा भी अन्यायकारी है। जीव की उत्पत्ति मानने से इनके खुदा में दोष आता है और भी जितनी बातें इनके मत की हैं वह सब हिंसामयुक्त औरदयारहित तथा आचार से भ्रष्ट हैं। इसी वास्ते ये म्लेच्छ कहे जाते हैं। सो कहा भी है—

चाण्डालानां सहस्रैस्तु सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः ॥

विवेकी पुरुषों ने हजारों चांडालों के तुल्य एक यवन को कहा है। यवन से परे और कोई भी नीच नहीं है जो ईसाई मत का आचार्य ईसा हुआ है, वह बड़ा क्षमाशील और दयावाला हुआ है इसी वास्ते ईसाइयों में मनुष्यमात्र पर दया रहती है। ये लोग ईसा को खुदा का पुत्र मानते हैं और कहते हैं हमको ईसा पापों से छुड़ावेगा। हमारे पापों का बोझ ईसा ने अपने सिर पर लिया है। जो ईसा पर ईमान लावेगा उसको खुदा बख़्श देगा अर्थात् उसको पापों से छुड़ा देगा ऐसा इनका मत है। फिर यह भी कहते हैं, जो नेक काम करेगा, उसी को ईसा बख़्शावेगा। इनका मानना भी ठीक नहीं है; क्योंकि यदि ईसा के कहे पर खुदा पापियों को बख़्श देगा तब न्यायकारी

नहीं साबित होगा। न्यायकारी वही कहाता है जो जैसा कर्म करे वैसा ही उसको फल देवे। चोर को क़ैद, ख़ूनी को फाँसी, जो दूसरे की सिफ़ारिश से चोर और ख़ूनी को छोड़ देगा वह कैसे न्यायकारी हो सकता है, कदापि नहीं। ये ही दोष म्लेच्छों के भी ख़ुदा में आवेगा। यदि उनके पैग़म्बर के कहने पर पापियों को छोड़ेगा तब कैसे न्यायकारी होगा। फिर जब कि सब जीवों को उसने एक बार ही पैदा किया है और जीव सब नादान हैं, तब किसी से वह पापों को कराता है और किसी से पुण्यों को कराता है। तब भी न्यायकारी वह नहीं हो सकता है। यदि कहैं पाप शैतान कराता है तब इनके ख़ुदा से शैतान बली हुआ, जो सबको ख़ुदा की तरफ से हटा कर अपनी तरफ कर लेता है। फिर इन म्लेच्छों की जातियोंवाले कहते हैं हमारे ही मतवाले बख़्शे जायँगे, दूसरे नहीं। तब एक दूसरे की दृष्टि से कोई भी बख़्शा नहीं जायगा। फिर मुहम्मदी कहते हैं मुहम्मद ही उसको प्यारा है, दूसरा नहीं। ईसाई कहते हैं, ईसाई उसको प्यारा है, दूसरा नहीं। बस, इसीसे सिद्ध होता है, कोई भी उसको प्यारा नहीं है। जो उससे प्रेम करता है, वह किसी जाति का हो, वही उसको प्यारा है। वह न्यायकारी है इस वास्ते वह किसी की भी सिफारिश नहीं मानता है। सिफारिशवाली बातें सब गप्पें झूठी हैं। खाना वगैरह म्लेच्छों का अति मलिन है। इसी वास्ते गुरुजी ने कहा है, संसार में अनेक म्लेच्छ मल को ही खाते हैं।

मू०—असंख निंदिक सिर करै भार।

टी०—इस संसार में असंख्य पुरुष ऐसे हैं, जो रात्रि दिन दूसरों की निंदा करके पाप के भार को अपने सिर पर करते रहते हैं। निंदा करनेवाले को चांडाल के तुल्य लिखा है।

पक्षिणां काकचाण्डालः पशुचाण्डालकुक्कुरः।
मुनीनां पापचाण्डालः सर्वचाण्डालनिन्दकः॥

पक्षियों में कौवा चांडाल है, पशुओं में कूकर चाण्डाल है, मुनियों में पाप चाण्डाल। सबसे बड़ा चांडाल निंदा करनेवाला है।

निंदा कोई वस्तु साबित नहीं हो सकती है। यदि कोई पुरुष मद्यपान करता है, या चोरी करता है, और दूसरा कहता है जो यह मद्यपान और यह चोरी करता है तब तो वह सत्य कहता है और जो वह चोरी नहीं करता, मद्यपान नहीं करता और जो कोई उसको मद्यपान कर्ता और चोरी कर्ता कहता है, तब तो वह झूठ कहता है। सत्य और झूठ दो ही बात साबित होती हैं। तीसरी निंदा तो कोई भी साबित नहीं होती है ? तब फिर निंदा क्या वस्तु ठहरी ?

उ०—जिसमें एक या दो दोष हैं उसके साथ द्वेष करके जो उसमें बहुत से दोषों को ठहराता है, उसीका नाम निंदा है। जिसमें एक दो गुण हैं और उसके साथ राग करके जो उसके बहुत से गुणों का निरुपण करता है, उसीका नाम स्तुति है। जो दुर्जन पुरुष हैं, उनकी सदैव ही दूसरों के दोषों की तरफ दृष्टि रहती है और जो सज्जन पुरुष हैं, उनकी सदैव ही गुणों की तरफ दृष्टि रहती है। सो कहा भी है—

गुणायन्ते दोषाः स्वजनवदने दुर्जनमुखे
गुणा दोषायन्ते किमिति जगतां विस्मयपदम्।
यथा जीमूतोऽयं लवणजलधेर्वारि मधुरम्
फणी पीत्वा क्षीरं वमति गरलं दुःसहतरम्॥

सज्जन पुरुषों के मुख में जाकर दूसरों के दोष भी गुणरूप हो जाते हैं और दुर्जन के मुख में जाकर गुण भी दोषरूप हो जाते हैं। जैसे समुद्र का खारी जल बादल में जाकर मधुर हो जाता है और सर्प के मुख में जाकर दुग्ध भी विष हो जाता है। निंदक पुरुषों का सज्जन पुरुषों से इतना ही फर्क है। भारत में भी कहा है—

यथा हि निपुणः सम्यक् परदोषे क्षणं प्रति।
तथा चेन्निपुणः स्वेषु को न मुच्येत बन्धनात्॥

जैसे पुरुष दूसरों के दोषों के देखने में क्षण २ में बड़ा निपुण होता है, वैसे यदि अपने दोषों के देखने में भी निपुण हो तब कौन पुरुष है जो संसाररूपी बंधन से न छूटे ? तात्पर्य यह है संसार में निंदक पुरुष भी बहुत हैं।

मू०——नानकनीचकहांवीचार।

टी०——गुरुनानकजी कहते हैं हम नीचों का कहांतक विचार करैं अर्थात् ईश्वर की मायिक सृष्टि में अनंत ही नीच हैं।

मू०——वारिआनजावांएक वार।

टी०—जिस परमेश्वर की माया में इतनी शक्ति है जो इस संसार में अनेक प्रकार के उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और अति नीचों को उत्पन्न करती है फिर प्रलयकाल में लय कर देती है, वह माया बिना ईश्वर की प्रेमाभक्ति के किसी प्रकार से भी हटाई नहीं जाती है इस वास्ते ईश्वर के आगे नित्य ही ऐसी प्रार्थना करै।

मू०——जो तुभ भावै साही भलीकार। तू सदा सला-मत निरंकार।

टी०—हे ईश्वर ! हमारे लिये जो तुमको भावै याने अच्छा लगै उसी भलीकार को अर्थात् उसी उत्तम काम को तुम करो; क्योंकि आप सदाही सलामत याने नित्य ज्योंके त्यों एकरस रहते हो।

मू०—असंखनाव असंखथाव। अगम अगम असंख लोअ॥
असंखकहहि सिरभारहोइ। अखरीनाम अखरी सालाह॥
अखरीगिआनगीतगुणगाह। अखरीलिखणु बोलणुबाणि॥
अखरासिरसंयोगाविषाण। जिनिएहुलिखेतिससिरनाहि॥
जिव फुरमाये तिव तिव पाहि। जेता कीता तेता नाव॥
वेणुनावै नाही को थाउ। कुदरत कवन कहा वीचार॥
वारिआनजावा एकवार। जो तुदभावै साई भलीकार॥
तू सदा सलामत निरंकार॥

मू०—असंखनाव असंखथाव।

टी०—हे अनंत परमेश्वर ! तुम्हारे असंख्यही नाम याने राम कृष्णादि नाम हैं।

दृष्टांत—एक नदी के किनारे कोई पंडित पूजा करता था। एक जाटने उस पंडित से कहा पंडितजी हमको भी कोई भजन करने का मंत्र बतावो। पंडितने कहा गोपाल २, जाकर एकांत में बैठकर जपकर। वह जब वन में जाकर एक पेड़ के नीचे गोपाल नाम को जपने लगा तब उसको गोपाल तो भूलगया डपाल याद आगया। तब वह डपाल २ जपने लगा। भगवान् ने लक्ष्मी से कहा एक नये भक्त ने मेरा नया नाम रक्खा है और बड़े प्रेम से उसको जप रहा है। चलो, तुमको दिखलावें। भगवान् लक्ष्मी को लेकर उस वन में आए। आप उस वृक्ष के पीछे खड़े हुए और लक्ष्मी को भेजा परीक्षा करने के लिये। लक्ष्मी ने आकर उससे पूछा, तू किसको जपता है ? उसने कहा मैं तेरे खसम को जपता हूँ। लक्ष्मी चुप हो गई। भगवान् ने प्रसन्न होकर उसको अपने लोककी प्राप्ति दी। तात्पर्य यह है, परमेश्वर के अनंत नाम हैं। किसी नाम से जपे उसी से वह प्रसन्न होते हैं और असंख्य ही बदरिकाश्रम, काशी, मथुरा आदि उसके विशेष करके स्थान हैं और सामान्यरूप से तो सभी उस परमात्मा के स्थान हैं; क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।

मू०—अगम अगम असंग लोह।

टी०—जो चक्षुरादि इंद्रियों से न जाना जाय उसका नाम अगम है और दूसरे अगम का अर्थ कठिन है अर्थात् चक्षुरादि इंद्रियों के अविषय और कठिन साधनों करके प्राप्त होने के योग्य उस परमात्मा के क्रीड़ा करने के लोक भी असंख्य हैं सो पुराणों में गोलोकादि लोक उसके असंख्य ही लिखे हैं। गर्गसंहिता में लिखा है, जब पृथिवी पर पापों का भार अधिक होगया, तब पृथिवी ब्रह्मा के पास गई। ब्रह्मा महादेव के पास गए। महादेव विष्णु केपास गए। विष्णु ने कहा चलो गोलोकपति के पास चलकर प्रार्थना करें। जो वह आकर पृथिवी केभारको दूर करें तब,

तीनों देवता इस ब्रह्मांड के ऊपर के छिद्र से निकलकर ऊपर आकाशमार्ग को गए। जब वामन अवतार हुआ था। उन्होंने पृथिवी नापने के लिये एक चरण बढ़ाकर पाताल में रक्खा और दूसरा ऊपर ब्रह्मांड के मस्तक पर लगाया था उस काल में वामन भगवान् के बाएँ चरण के अँगूठे से ब्रह्मांड में छिद्र होगया था। उसी छिद्र के रास्ते से तीनों देवता बाहर को गए। जब वे बहुत ऊपर को गए तब आगे गोलोक आगया। उस गोलोक के द्वार पर सखियों का पहरा था। उस गोलोक में एक कृष्ण ही पुरुष रहते हैं और सब स्त्रियाँ अति सुंदर कृष्ण की सखियाँ रहती हैं। स्वर्ण की उसकी भूमि है। पारिजातादि उसमें वृक्ष हैं। अतिही वह रमणीक है उसके द्वार पर जाकर तीनों देवतों ने सखी से कहा तू जाकर गोलोक निवासी कृष्णजी से कहो, तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश तुमसे मिलने आए हैं। सखी ने कहा, तुम किस ब्रह्मांड के देवता हो? तब तीनों चुप रह गए। सखी ने कहा, मालूम होता है तुम कभी अपने घर से बाहर नहीं निकले हो जो तुमको अपने घर का भी ठीक पता मालूम नहीं है। तब विष्णु ने कहा, उस ब्रह्मांड के हम देवता हैं, जिसका मस्तक वामन भगवान् ने अपने बाएं अँगूठे के नख से भेदन किया है। सखी ने कहा, तुम्हारे में यह कुछ बुद्धिमान् है। सखी ने जाकर कहा, फिर तीनों की गोलोक के स्वामी से मुलाकात हुई उन्होंने अपना प्रयोजन कहा। गोलोक के स्वामी ने अवतार लेने को कहा, इस तरह गर्गसंहिता में एक गोलोक लिखा है। शिवपुराण में शिवलोक, विष्णुपुराण में विष्णुलोक, देवीभागवत में मणिद्वीप द्वीप लिखा है। अर्थात् अनंत ही उसके लोक लिखे हैं जो कि किसी की दृष्टिगोचर नहीं है और बड़े कठिन साधनों से प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है जितने आकाश में सूर्य चंद्रमा आदि ग्रह हैं और जितने ध्रुवादि तारे हैं ये सब लोक हैं और जो आकाश में सुफेद सी लकीर अँधेरी रात्रि में दिखाई पड़ती है, उसी को अनजान लोग स्वर्ग का मार्ग कहते हैं। उस लकीर के अनंत तारे अति सूक्ष्म हैं, जो दिखाई भी नहीं पड़ते हैं; क्योंकि वे अति ऊँचे है। लाखों

कोसों के विस्तारवाले हैं। वे सब लोक हैं और अगम हैं। याने इंद्रियादि की भी उनके जानने में गम याने सामर्थ्य नहीं है। इसीसे अगम २ कहा है।

मू०—असंख्यकहै सिरभारहोय।

टी०—असंख्य लोक ईश्वर-के कहते भी शिर पर झूठ का बोझ होता है; क्योंकि उसकी माया-शक्ति को कोई जान नहीं सकता। वह ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। तब असंख्य लोक उसके कहने नहीं बनते हैं किंतु सभी लोक उसी के कहने चाहिए।

मू०—अखरीनामअखरीसालाहि।

टी०—विधाता ने जन्मकाल में ही जीवों के मस्तकों पर प्रारब्ध के अक्षर लिख दिए हैं। उनके अनुसार ही संसार में पुरुष का शुभ अशुभ कर्म करने में नाम होता है। उनके अनुसारही सालाहि याने श्लाघा अर्थात् यश भी होता है। वह अक्षर किसी से भी हटाए नहीं जाते हैं। शुक्र-नीति में कहा है—

> नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम्
> विद्यापि नैव न च यत्नकृताऽपि सेवा।
> भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि
> काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः॥

न तो जाति फल देती है और न कुल तथा शील स्वभाव, न विद्या, न यत्नकृत सेवा फल देती है। पूर्वजन्मों के तप से संचित जो कर्म हैं, वही फल देते हैं। जैसे काल पाकर वृक्ष फलते हैं।

दृष्टांत—भास्करजी प्रथम एक ब्राह्मण के बालक थे। जन्मते ही इनका पिता मर गया। माता ने पाला। जब सात-आठ बरस के हुए तब माता ने इनको एक विद्वान् पंडित के पास पढ़ने के लिए भेजा। इनकी बुद्धि ऐसी स्थूल थी जो दिनभर ॐनमः सिद्धम् को घोकते रहे फिर रात्रि में उसको भूल जाते। फिर दूसरे दिन उसी को घोकते। दो चार

बरस में इनको केवल ॐनमःसिद्धम् ही याद हुआ। परंतु वह गुरुभक्त बड़े थे। दैवयोग से -लीलावती के स्वयंवर का पत्र आया, तब उनके गुरु जो पंडित थे वह भास्कर को और भी दो चार विद्यार्थियों को लेकर लीलावती के स्वयंवर में गए। और विद्यार्थी तो इधर उधर ताकते, परंतु भास्कर का ध्यान गुरु के चरणों में ही लगा हुआ था। लीलावती ने भास्कर की सूरत देखकर और उसके चित्त को गुरु के चरणों में देखके जाना, यह लड़का पंडित है। तब उसने भास्कर से पूछा।

शास्त्रेषु कःसारः ?

शास्त्रों में सार क्या है ?

उसने कहा, ॐ। तब वह समझी ठीक उत्तर है; क्योंकि सारा जगत् ॐकार में व्याप्त है। विश्व, तैजस, प्राज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ॐकार में ही व्याप्त हैं। फिर लीलावती ने कहा—

इदं जगत्सदसद्वा ?

यह जगत् सत् है या असत् है।

उ०—'न' वह समझी सत्य असत्य से विलक्षण कहता है।

प्र०—तर्हि इदं किम् ?

तब फिर यह क्या है ?

उ०—'मः' वह समझी, मायासहित चेतन को ही कहता है।

प्र०—किमायातमनेन ?

इतना कहने से क्या आया ?

उ०—सिद्धम्।

वह समझी, यह सिद्ध मंत्र है, ऐसा कहता है। तुरंत लीलावती ने उसके गले में जयमाला डाल दी। उसी काल में भास्कर का लीलावती के साथ विवाह हो गया। जब रात्रि को भास्कर लीलावती के पास गया तब बोलचाल से उसको मालूम हुआ कि यह मूर्ख है। तब उसने भास्कर को नीचे ढकेल दिया। नीचे देवी की मूर्ति थी।

उस पर उसका जब शिर पड़ा, उससे रुधिर निकलकर देवी पर पड़ा। तब देवी ने प्रसन्न होकर कहा "वर माँग"। उसने कहा, विद्या दे। देवी ने कहा, तथास्तु। उसी काल में वह बड़ा भारी पंडित हो गया। महाभाष्यादि को उच्चारण करने लगा। तब लीलावती ने किवाड़ खोल कर उसको भीतर लेकर उसकी बड़ी खातिर की और भूल बखशाई। यह भास्कराचार्य बड़े पंडित हुए। इन्होंने ही फिर लीलावती के नाम से ज्योतिष में गणित का ग्रंथ बनाया। अब देखिए, कहाँ वह स्थूल बुद्धि और कहाँ फिर इतना भारी पंडित हो जाना और विद्वानों में नाम होना और कीर्ति होनी, यह सब प्रारब्ध ही से होता है।

मू०—अखरीज्ञान गीतगुणगाहि।

टी०—प्रारब्ध से शास्त्र का ज्ञान होता है। गायनविद्या तथा और भी अनेक प्रकार के गुणों को प्राप्त करता है।

मू०—अखीरीलिखणबोलनबाण।

टी०—प्रारब्ध के अक्षरों से याने कर्मों से ही लिखने में और बोलने में याने वार्त्तालाप करने में बल याने शक्ति होती है। संसार में जो मूर्ख हैं, उनको बोलना-बतलाना नहीं आता है; पर मूर्ख लोग मूर्खों को और पागल को सिद्ध मान लेते हैं; क्योंकि संसार में ऐसी मूर्खता फैली है जो पागल को ही सिद्ध मानते हैं। यह नहीं जानते, जो इसके कर्मों में बोलना-चालना और विद्या आदि गुण नहीं हैं।

मू०—अखरांसिरसंयोग विपाए।

टी०—प्रारब्ध के अक्षरों के अनुसार ही संयोग वियोग विपाण याने कथन किया है। तात्पर्य यह है, पदार्थों का संयोग और वियोग तथा संबंधियों का संयोग प्रारब्धकर्मों के अनुसार ही होता है। सो कहा भी है।

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगो विप्रयोगान्तो मरणान्तं हि जीवितम्॥

जितने वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, वह क्षयपर्यंत ही वृद्धि है। ऊँचा होना भी पतनपर्यंत है। संयोग वियोगपर्यंत है। जीवन मरणपर्यंत ही है। तात्पर्य यह है, संयोगादि अवश्य ही होते रहते हैं, पर अज्ञानी जीवों को संयोग सुख का हेतु है और वियोग दुःख का हेतु। ज्ञानियों को उलटा है। वियोग ही सुख का हेतु है। सो कहा भी है—

निःसारे खलु संसारे वियोगो ज्ञानिनां वरः।
भवेद्वैराग्यहेतुः स शान्तिसौख्यं तनोति च॥

'निःसार संसार में ज्ञानियों को वियोग ही श्रेष्ठ है; क्योंकि वह वैराग्य का हेतु होता है और शांतिरूपी सुख का विस्तार करता है।

संगमविरहे वितर्के वरं मे विरहो न संगमो नार्यः।
संगे सैव यदेका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥

जिस समय वन में सीता का हरण हुआ था, उस समय सीता के वियोग में रामचंद्रजी विचार करते हैं। सीता का संयोग अच्छा था या वियोग अच्छा है? संयोग से वियोग अच्छा है; क्योंकि जब सीता का संयोग था, तब तो एक ही सीता प्रतीत होती थी, अब वियोग के होने पर तीनों लोक सीतारूप दिखाई पड़ते हैं। तात्पर्य यह है, संयोग वियोग भी प्रारब्ध से ही होते हैं।

मू०—जिन इह लिखे तिस सिरनाहि।

टी०—जिस परमेश्वर ने जीवों के मस्तक पर संयोग वियोगादि लिखे हैं, उस परमेश्वर के मस्तक पर संयोग वियोगादि प्रारब्ध-रूपी कर्म नहीं हैं। वह कर्मबंधन से रहित है। उसका वियोग किसी काल में भी किसी से नहीं होता है; किंतु सदा उसका संयोग सब पदार्थों से बना रहता है; क्योंकि वह सर्वव्यापक है और कर्मबंधन से रहित है। नित्य मुक्त है। जो कर्मबंधन में है, उसीके मस्तक पर कर्मरेखा लिखी जाती है। ईश्वर अविद्या और कर्मादि से रहित है। इतना ही फर्क है।

मू०—जिव फुरमाहि तिवतिव पाहि ।

टी०—जैसी उस परमेश्वर की आज्ञा होती है वैसी ही जीव को कर्मों के अनुसार फल की प्राप्ति होती है । जीवों के कर्म स्वतः जड़ हैं । आप वह फल देने को समर्थ नहीं हो सकते हैं । फलप्रदाता इसलिये ईश्वर को ही माना है ।

मू०—जेता कीता तेता नाउ ।

जितना जगत् परमेश्वर ने उत्पन्न किया है, वह सब नाम से ही किया है । गीता में भी कहा है—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥

ॐ तत् सत् इन ब्रह्म के नामों का पूर्व निर्देश याने उपदेश किया है । ब्रह्मा ने इन्हीं नामों का उच्चारण करके ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञों को उत्पन्न किया था । अथवा जितना जगत् ईश्वर ने उत्पन्न किया है । वह सब नाम मात्र ही है । नाम रूप से विना जगत् का और कोई स्वरूप नहीं है । पंचदशी में कहा भी है—

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् ।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥

अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप ये पाँच अंश संपूर्ण जगत् के पदार्थों में विद्यमान हैं । आदि की जो अस्ति, भाति, प्रिय तीन अंश हैं, सो ब्रह्म की सब पदार्थों में हैं । नाम और रूप ये दो अंश जगत् की अपनी हैं ।

मू०—विणनावै नाहींकोइथांउ ।

विना नाम के जगत् में कोई भी पदार्थ नहीं है । और न कोई नाम से विना स्थान ही है । अर्थात् संपूर्ण जगत् नाम रूप से ही व्याप्त हो रहा है ।

मू०—कुदरतकवणकहांवीचार ।

टी०—उस परमेश्वर की जो कुदरत याने माया शक्ति है उसको हम कहाँ तक विचार करें; क्योंकि वह माया शक्ति बलवाली है। एक क्षणमात्र में हजारों ब्रह्मांडों को उत्पन्न करती है और लय करती है। उस माया के बल का कोई भी विचार नहीं कर सकता है। बड़े २ ब्रह्मादि देवतों को उसने मोहित कर लिया है।

मू०—वारिआनजावै एकवार।

टी०—वह मायारूपी शक्ति जीव से एक वार भी हटाई नहीं जाती है। उसी माया के भय से शुकदेवजी बारह बरस गर्भ में ही रहे। माया के डर से बाहर ही नहीं निकले। तब देवतों ने आकर प्रार्थना की कि आप जन्म लें और व्यास भगवान् ने भी बहुत सा कहा, तब शुकदेवजी ने कहा परमेश्वर की माया बड़ी प्रबल है। जब तक जीव गर्भ में रहता है तब तक इसको वैराग्य बना रहता है; क्योंकि पुर्वले जन्मों के दुःखों का इसको स्मरण होता है। जब वह जन्म लेता है, तब माया इसको मोहित कर लेती है। पुर्वले जन्मों की विस्मृति हो जाती है। हे पिता! मैं कभी भी जन्म नहीं लूँगा; क्योंकि मेरे को बहुत से जन्मों के दुःख याद हैं। उनमें से थोड़े जन्मोंके दुःखों को मैं तुमसे कहता हूँ। एक जन्म में मैं धोबी का गर्दभ था। धोबी सवेरे ही मेरी पीठ पर गरम २ लादी को लाद लेता। जब मेरी पीठ जलती और मैं दुःख से कूदता तब अपने लड़के को उस लादी पर बैठा देता। एक दिन मैं लादी लादे हुए जाता था। वर्षा से बड़ा कीच हो गया था। उस कीच में कमर तक मैं धँस गया। कितना ही निकलने को चाहा; पर निकल नहीं सका। धोबी अपनी लादी को उतार कर ले गया और मुझे उसी कीच में फँसा हुआ छोड़ गया। लोगों ने मेरी पीठ को पुल बना लिया। जो आवै मेरी पीठ पर पाँव रख कर कीच से पार उतर जाय। आखिर में अत्यन्त दुःखी होकर उसी कीच में मर गया। फिर एक जन्म कूकर का हुआ। जहाँ जाऊँ लोग लाठियाँ मारें। एक दिन एक बड़े कूकरने आकर मेरा कान काट डाला। उसमें घाव हो गया। उसमें कृमि पड़ गए। आखिर उसी दुःख से मरा।

फिर एक जन्म चिचड़ी का हुआ । एक कुत्ते के कान पर चिपट गया। दूसरे कुत्ते ने आकर जो उसको काटा, तो मेरा आधा शरीर कट गया। बड़े खेद से मरा । फिर बिलार का जन्म हुआ । अभी बच्चा ही था, जो बड़े बिलार ने आकर फाड़ खाया । उसी दुःख से मरा । फिर एक जन्म पिस्सू का हुआ । एक को काटा । उसने पकड़ कर मींज २ कर गर्म रेते में फेंक दिया । बड़े कष्ट से मरा । फिर एक जन्म घोड़े का हुआ । मिरासी ने खरीदा । वह दिन भर मेरी पीठ पर असबाब लाद कर सवार होकर माँगता फिरता और मेरे को कूटता रहता । बुरी हालत से मरा । इस तरह कई एक जन्मों के दुःख मुझे याद हैं । अब मैं माया के डरसे जन्म न लूँगा; क्योंकि जिस क्षण मैंने जन्म लिया उसी क्षण माया मुझे घेरेगी । उसके आवरण करने से मेरेको सब जन्मान्तरों का दुःख विस्मरण होजायगा । इसलिये मैं बाहर जन्म नहीं लूँगा । यदि एक मुहूर्त्तमात्र भगवान् अपनी माया को समेट लेवें तब मैं जन्म लूँगा । माया के समेट जाने से मेरे को जन्मांतरों का स्मरण बना रहेगा । भगवान् ने एक मुहूर्त्तमात्र माया को समेट लिया । तब शुकदेवजी ने जन्म लिया । जन्म लेते ही वह वनको चल पड़े । तब पीछे व्यासजी दौड़े । उन्होंने कहा, हे पुत्र ! हमने वंशके चलाने के लिये तुमको उत्पन्न किया है । तुम प्रथम विवाह करो, फिर चतुर्थ आश्रम में वनको जाना । तब शुकदेवजी व्यासजी के प्रति कहते हैं, ये कथा देवीभागवत के प्रथम स्कंध के चौदहवें अध्याय में है ।

कदाचिदपि मुच्येत लोहकाष्ठादियन्त्रितः ।
पुत्रदारैर्निबद्धस्तु न विमुच्येत कर्हिचित् ॥

शुकदेवजी कहते हैं लोहे और काष्ठकी बेड़ियों से बँधा हुआ पुरुष कदाचित् छूट भी सकता है; परंतु पुत्र, स्त्री आदि के मोहरूपी बेड़ी से बँधा हुआ पुरुष कदापि छूट नहीं सक्ता । हे पिता ! विष्ठा मूत्रसे भरा हुआ जो स्त्रियों का शरीर है कौन बुद्धिमान् उसमें प्रीति करता है ? बुद्धिमान् तो नहीं करता मूर्खही करता है । हे पिता ! आत्मसुख को त्याग कर

विष्ठा के सुख को मैं कैसे इच्छा करूं । जो आत्माराम पुरुष है वह विषय सुख में लोलुप नहीं होता है । जो देवतों के गुरु बृहस्पति हैं वह गृहस्थाश्रम में मग्न हो गए हैं। अज्ञान से उनका हृदय भी ग्रसा हुआ है । वह कैसे औरों को तार सके हैं। जैसे रोग से ग्रस्त रोगी वैद्य दूसरे की चिकित्सा करता है और उसकी चिकित्सा ठीक नहीं होती है। वैसेही गृहस्थाश्रमी गुरु-शिष्य-व्यवहार भी ठीक नहीं हैं। हे पिता! इस संसार में चक्र की तरह भ्रमण करने की तरह विश्रांति कदापि नहीं होती। हे तात ! इस गृहस्थाश्रमरूपी संसार में विचार करने से तो कोई सुख नहीं है; किंतु मूर्खोंको इसमें सुखबुद्धि हो रही है। शुकदेवजी कहते हैं, हे पिता ! वेदशास्त्रों को अध्ययन करके भी जो पुरुष संसार में ही रागवाले हैं उनसे परे और कोई भी मूर्ख नहीं है। हे तात ! इंद्र भी सुखी नहीं है; क्योंकि तप करनेवालों को देखकर उनके तप में विघ्न करता है। ब्रह्मा और विष्णु भी सुखी नहीं हैं; क्योंकि उनको भी नित्य ही असुरों के साथ संग्राम करना पड़ता है । महादेव भी सुखी नहीं हैं, क्योंकि उनको भी नित्य ही दैत्यों के साथ युद्ध करना पड़ता है। हे पिता ! जब कि विवाह करके इतने २ बड़े देवता सब दुःखी हुए हैं, तब मुझ को उस गृहस्थाश्रम में फँसाकर क्यों दुःखी करते हो ? तब व्यासजी ने उत्तर दिया—

न गृहं बन्धनागारं बंधने न च कारणम् ।
मनसा यो विनिर्मुक्तो गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥

व्यासजी कहते हैं—गृह बंधन का घर नहीं है और बंधनका कारण भी नहीं है। जो गृहस्थ मन से मुक्त है वह मुक्त हो जाता है ।

ब्रह्मचारी यतिश्चैव वानप्रस्थो व्रतस्थितः ।
गृहस्थं समुपासन्ते मध्याह्नातिक्रमे सदा ॥

ब्रह्मचारी यती और वानप्रस्थ ये सब मध्याह्न काल में गृहस्थ के द्वार पर ही स्थित होते हैं ।

गृहाश्रमात्परो धर्मो न दृष्टो न च वै श्रुतः ।
वशिष्ठादिभिराचार्यैर्ज्ञानिभिः समुपाश्रितः ॥

गृहस्थाश्रम से परे न कोई धर्म देखा है न सुना है; क्योंकि वशिष्ठादि ज्ञानियों ने भी इसको आश्रयण किया है ।

इन्द्रियाणि महाभाग मादकानि सुनिश्चितम् ।
अदारस्य दुरन्तानि पञ्चैव मनसा सह ॥

हे महाभाग ! इंद्रियग्राम बड़ा मदका करनेवाला है । मनके सहित सब इंद्रियाँ स्त्रीरहित पुरुष को दुःखी करती हैं ।

तस्माद्दारान्प्रकुर्वीत तज्जयाय महामते ।
वार्द्धके तप आतिष्ठेदिति शास्त्रोदितं वचः ॥

उस कारण से विवाह करो । इन्द्रियों के जीतने के लिये और वृद्धावस्था में तप में स्थित होवे, ऐसी शास्त्र की आज्ञा है ।

इसी तरह के अनेक वाक्य सुनाकर व्यास भगवान् ने शुकदेवजी का विवाह कराकर गृहस्थाश्रम में फँसा दिया । तात्पर्य यह है, जिस गृहस्थाश्रम से डरता हुआ शुकदेव उसकी निंदा करता था, परमेश्वर की माया ने उसको फिर उसी में डाल दिया । इसी पर गुरुजी ने कहा है—उस परमेश्वर की कुदरत जो माया है उसके बल का कौन विचार कर सका है कि उसमें कितना बल है । अर्थात् कोई भी नहीं कर सका है ।

मू०—वारियानजावांएकवार ।

टी०—विना परमेश्वर की शरण लेने के वह माया एक बार भी याने एक क्षणमात्र भी हटाई नहीं जाती है ।

मू०—जोतुधभावैसाइभलीकार ।

टी०—परमेश्वर के आगे नित्य ही इस तरह की प्रार्थना करे, हे ईश्वर ! हमारे लिये जो तुझको भावै याने अच्छा लगे वही हमारे वास्ते भलीकार याने उत्तम कार अर्थात् श्रेष्ठ काम को तुम करो; क्योंकि हम निपट अज्ञानी हैं । जिस काल में ध्रुव भक्त ने बाल्यावस्था में तप से परमेश्वर

को प्रसन्न किया और परमेश्वरने चतुर्भुज होकर दर्शन दिया तब ध्रुव भक्त हाथ जोड़कर उनके सामने चुपचाप खड़ा होगया; क्योंकि वह बालक था और कुछ जानता नहीं था। तब भगवान् ने जाना, यह तो बालक है। इसको स्तुति करने का भी ज्ञान नहीं है। अपना शंख उसके गाल में लगा दिया। तुरंत ही ध्रुव में स्तुति करने की शक्ति उत्पन्न हो गई और भगवान् की स्तुति करने लगा। जैसे ध्रुव के लिये भगवान् ने स्तुति भली जानकर उसमें स्तुति करने की शक्ति को उत्पन्न कर दिया था। वैसे ही हमारे लिये भी जो उसको भला जान पड़े, वही हम से करावे।

मू०—तू सदा सलामत निरंकार।

टी०—क्योंकि तुम्हीं तीनों काल में नित्य एक रस ज्यों के त्यों रहनेवाले हो। तुम्हारे से भिन्न सब नाशवान् है।

इति श्रीस्वामिहंसदासशिष्येण परमानन्दसमाख्याधरेण पिशावरनगरनिवासिना विरचिता जपजीसाहब परमानन्दी नाम टीकापूर्वार्द्धः समाप्तः।

मू०—भरीयै हथ पै हरत न देह। पाणी धोतै उतरत खेह॥
मूतपलीती कपड होहि। देह साबण लईयै उह धोई॥
भरीयै मत पापा के संग। उह धोपै नावै कै रंग॥
पुनीपापी आखण नाहि। करकर करणा लिखलैजाहु॥
आपे बीज आपेही खाहु। नानकहुकमी आवहु जाहु॥

मू०—भरीयै हथपै हरतन देह।

टी०—यदि कीचादि मलिन पदार्थों के साथ हाथ, पाँव और तन, देह याने स्थूल शरीर भर जाय अर्थात् लिबड़ जाय तब ?

मू०—पाणीधोतेउतरतखेह।

जल के साथ धोने से वह खेह जो मल है सो उतर जाता है।

अथवा कुकर्मरूपी मल करके शरीर और कर्मेंद्रियादि सब भरे हैं; क्योंकि इंद्रियादि सब विषयों की तरफ ही नित्य दौड़ते हैं। नित्य ही

दूसरों के अवगुणों को ही देखते हैं। परके धनादि की इच्छा करते हैं। सो सत्संगरूपी जल करके देहादि को धोने से वह मल सब उतर जाता है। सो भर्तृहरि ने कहा भी है—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्॥

सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरती है; वाणी में सत् का सिंचन करती है, मान को बढ़ाती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है, दिशों में कीर्ति को विस्तार करती है, सत्संगति पुरुषों को क्या फल नहीं देती, किंतु सब फल को देती है।

मलयाचलगन्धेन त्विन्धनं चन्दनायते।
तथा सज्जनसङ्गेन दुर्जनः सज्जनायते॥

मलयागिरि चंदन की सुगंधि से इतर वृक्ष भी सब चंदन होजाते हैं, वैसे सज्जनों के संग से दुर्जन पुरुष भी सज्जन होजाते हैं। इसी में एक दृष्टांत को कहते हैं—किसी लूट में एक सिपाही के हाथ में दो तोते आगए। एक तो ब्राह्मण का पाला हुआ था और दूसरा मुसलमान का। सिपाही ने दोनों तोतों को ले जाकर राजा की नजर कर दी। राजा ने ब्राह्मणवाले तोते से कहा पढ़ो। तब गीत गोविंदादि पढ़ने लगा। फिर मुसलमानवाले तोत से कहा पढ़ो, तब उसने कहा, क्या बकता है ? फिर कहा, तब उसने कहा हरामजादे चुप नहीं रहता। तोते की वार्ता को सुनकर राजा को बड़ा क्रोध आया। तब ब्राह्मण के तोते ने कहा—राजन्! इसका क़ुसूर नहीं है। संगदोष का फल है।

श्लोक।

अहं मुनीनां वचनं शृणोमि शृणोत्ययं वै यवनस्य वाक्यम्।
नचास्य दोषो न च मे गुणो वा संसर्गतो दोषगुणा भवन्ति॥

ब्राह्मण का तोता कहता है, हे राजन्! मैं तो मुनियों के वचनों को सुनता रहा हूँ और यह यवन के वाक्य को ही सुनता रहा है। न तो इसमें इसका कुछ दोष है और न मेरा कुछ इसमें गुण है। संग से ही दोष और गुण होते हैं। राजा ने कहा ठीक है। तात्पर्य यह है सत्संग से पक्षी आदि भी गुणों से युक्त हो जाते हैं।

दृष्टांत—एक जहाज़ समुद्र में जाता था। चलते २ वह घुमरघेर याने एक गिरदाव में फँस गया। बहुत से उपाय किए गए, वह नहीं निकल सका। तब जहाज़वाले कप्तान ने देखा, एक तरफ से लहरें उठती थीं और उन लहरों के रास्ते से बड़ी २ मछली गिरदाव से बाहर को निकल जाती थीं। तब कप्तान ने चावलों की बोरियों को रस्सों से बाँध कर लहरों में फेंकना शुरू किया। उन बोरियों को मछलियाँ खींचने लगीं। उनके साथ ही जहाज़ भी खींचा चला गया। वह मछलियाँ जहाज को गिरदाव से बाहर निकाल ले गईं। जहाज़ बच गया। यह तो दृष्टांत है। दार्ष्टान्त में संसाररूपी समुद्र है। कर्मरूपी गिरदाव है। जीवरूपी जहाज उसमें फँसा है। संतरूपी मछलियाँ हैं। सेवारूपी चावलों की बोरियाँ हैं। सेवारूपी बोरियों द्वारा संतरूपी मछलियाँ इस जीवरूपी जहाज़ को कर्मरूपी गिरदाव से निकाल कर ले जाती हैं। भाषा में भी एक कवि ने कहा है—

जेहि जैसी संगति करी, तेहि तैसो फल लीन।
कदली सीप भुजंग मुख, एक बूंद गुण तीन॥

सवैया॥

ज्ञानबढ़ै गुणवान की संगति, ध्यानबढ़ै तपसी संग कीन्हे।
मोहबढ़ै परिवार की संगति, लोभबढ़ै धनमें चित दीन्हें॥
क्रोधबढ़ै नरमूढ़ की संगति, काम बढ़ै तिय के संग कीन्हे।
बुद्धि विवेक विचार बढ़ै, कवि दीन सुसज्जन संगति कीन्हे॥

सत्संगरूपी जल करके सब कुकर्मरूपी मल धोए जाते हैं।

मू०—देसाबुणलईयेओहधोय।

टी०—जैसे अपवित्र वस्त्र को साबुन लगाकर धोने से साफ हो जाता है। वैसे ही महात्मा के वाक्यरूपी साबुन से कुसंगरूपी मल धो जाते हैं।

मू०—भरीयेमतपपाकेसंग।

टी०—जिन पुरुषों की बुद्धि पापों के साथ भरी हुई है।

मू०—ओहधोपेनामा के रंग।

टी०—रंग का अर्थ संबंध है अर्थात् बुद्धि के पाप सब नाम के संबंध से धो जाते हैं। कहा भी है—

सर्वेषामेव शौचानामान्तःशौचं परं स्मृतम्।

योऽन्तःशुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः॥

सब शौचों में अंतर का शौच ही परम शौच माना है। जिसका अंतःकरण अशुद्ध है, वह शुद्ध मृत्तिका और जल से कदापि शुद्ध नहीं हो सकता है। अंतर की शुद्धि नाम के जपने से होती है।

पद्मपुराणे॥

सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम्।

शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति॥

जो पुरुष एक बार भी उत्तम से उत्तम राम नाम का उच्चारण करता है, वह शुद्ध चित्तवाला होकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

मू०—पुनी पापी आखण नाहि।

टी०—जो परमेश्वर का निष्काम भक्त है, उसको कोई भी पुण्य-पापवाला नहीं कहता है। जो सकामी हैं, उनको ही शास्त्र और लोक भी पुण्य-पापवाला कहते हैं। देवीपुराण के नवम स्कंध के छठे अध्याय में भगवान् ने भी अपने निष्काम भक्त के महत्त्व को कहा है—

इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम्।

स्वर्गराज्यादिभोगश्च स्वप्नेऽपि च न वाञ्छति॥

भगवान् कहते हैं, मेरा निष्काम भक्त इंद्रपदवी, मनुपदवी, ब्रह्मपदवी जो अत्यंत दुर्लभ हैं और स्वर्गराज के भोगों की स्वप्न में भी इच्छा नहीं करता है।

मद्‌गुणश्रवणश्राव्यगानैर्नित्यं मुदान्विताः।
ते यान्ति च महीं पूत्वा नरः शीघ्रं ममालयम्॥

मेरे भक्त, जो मेरे गुणों के श्रवण करने में और सुनाने में नित्य ही हर्ष से युक्त हैं, वह पृथ्वी को पवित्र करके मेरे धाम को प्राप्त होते हैं; ऐसा फल निष्काम भक्तों का कहा है। अब सकाम भक्तों के फल को गुरुजी दिखाते हैं—

मू०—कर कर करणा लिख लै जाहु।

टी०—जो सकामी हैं, वे इस लोक में कर्मों को करके उन कर्मों के संस्कारों को अपनी बुद्धि में पुनः २ लिखकर जन्मांतर में अपने साथ ले जाते हैं। फिर उस जन्म में भी पूर्व-जन्म के कर्मों के अनुसार ही कर्मों को करते हैं। घटीयंत्र की तरह पुनः कर्म पुनः जन्म संसाररूपी चक्र में भ्रमते ही रहते हैं।

मू०—आपे बीज आपेहीं खाहु।

टी०—जैसे किसान खेत में आप ही बीज को बोकर आप ही उसके फल को खाता है—पहले बोता है, फिर काटता है—वैसे ही कर्मी भी आप ही कर्मों द्वारा संस्काररूपी बीज को बोता है, फिर जन्मांतर में उसके फल को खाता है। कर्मों का प्रवाह चला ही जाता है।

मू०—नानक हुकमी आवो जाहु।

टी०—गुरुजी कहते हैं, परमेश्वर के हुक्म से ही जीव आता-जाता है। अर्थात् परमेश्वर के हुक्म से कर्मों के अनुसार जीव एक योनि से दूसरी योनि को, फिर दूसरी से तीसरी को घूमता ही रहता है। बिना परमेश्वर के नाम के जपने के कभी भी जीव आवागमन से नहीं छूटता है। इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि आवागमन से छूटने के लिये परमेश्वर की भक्ति करें।

मू०—तीर्थ तप दया दत्त दान। जेको पावै तिलका मान॥
सुण आमन आमन कीता भाऊ। अंतरगत तीर्थमल नाउ॥
सभ गुण तेरे मैं नाहीं कोइ। विण गुणकीते भक्त न होइ॥
सुअ सत आथ वाणी वरमाउ। सतिसुहाणसदा मन चाऊ॥
कवण सुवेला वखत कवण कवण थित कवण वार।
कवणसि रुती माहु कवण जित होआ आकार॥
वेल न पाइआ पंडिती जिहोवै लेख पुराण।
वपत न पाइउो का दिया जि लखन लेख कुरान॥
थित वार न थोगी जाणै रुति माहु न कोई।
जा करता सिरठीको साजे आपे जाणै सोई॥
किवकरआखा किवसालाही किउवरनी किवजाणा।
नानक आखण सभको आखे इकदूइकु स्याणा॥
वडा साहिव वडी नाई कीता जाका होवै।
नानक जेको आपो जाणै अगे गइआ न सोहे॥

मू०—तीर्थ तप दया दत्त दान।

टी०—तीर्थ जो गंगा आदि हैं, तप जो कृच्छ्रचान्द्रायणादि हैं, दया जो कृपा है, दत्त जो इंद्रियों का दमन है और दान जो है।

मू०—जेको पावै तिलकामान।

यदि कोई पुरुष तीर्थादि पाँचों में से एक को भी शास्त्र-प्रमाण द्वारा प्राप्त हो जाय याने धारण कर ले, जो तीर्थादि भी ईश्वर की प्राप्ति के साधन हैं।

मू०—सुणआ मनआ मन कीता भाऊ।

टी०—गुरु और शास्त्र द्वारा तीर्थादि के माहात्म्य को श्रवण करके फिर उनका मनन करके अर्थात् उनके माहात्म्य में पूरा विश्वास करके

फिर मन में ईश्वर में प्रेम करके जो पुरुष उन पाँचों में एक का भी विधिपूर्वक सेवन करता है, वह अवश्य ही परम गति को प्राप्त होता है।

प्र०—बहुत से पुरुष नित्य ही गंगा आदि तीर्थों में स्नान करते हैं और उनको कोई भी फल नहीं मिलता है?

क्योंकि उनके चित्त की कुटिलता ही नहीं छूटती और बहुत से पुरुष पंचाग्नि आदि तप को तपते हैं उनके चित्त की कुटिलता भी छूटी नहीं देखते हैं। किसी-किसी दयावान् मन को दमन करनेवाले और दान करनेवालों के चित्तों की कुटिलता भी नहीं छूटती है। क्या इनके माहात्म्य अर्थ वादरूप हैं या यथार्थ हैं?

उ०—वैद्यक-ग्रन्थों में हरएक रोग की जुदा २ ओषधि लिखी है; परंतु साथ ही उसके अनुपान, पान और पथ्य भी लिखा है। यदि रोगी औषध को अनुपान और पथ्य के साथ सेवन करेगा, तब जरूर उसके रोग की निवृत्ति हो जायगी। जो अनुपान और पथ्य से नहीं सेवन करेगा, उसकी रोग-निवृत्ति कदापि नहीं होगी। जो बीच में कुपथ्य करेगा, उसके रोग की और वृद्धि होगी। वैसे ही जो विधिपूर्वक तीर्थों का स्नान करते हैं, उनको पूरा २ फल मिलता है। जो विधिपूर्वक नहीं करते हैं, उनको पूरा २ फल नहीं मिलता। सो दिखाते हैं—

व्यासस्मृतिः।

यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम्॥

जिस पुरुष के हाथ-पाँव और मन अपने वश में हैं और सत्य, विद्या, तप तथा कीर्ति से युक्त है, वही तीर्थ के फल को प्राप्त करता है। पापी पुरुषों के पाप भी तीर्थों में दूर होते हैं। पर जो शुद्ध चित्तवाले हैं, उन्हीं को तीर्थों का यथोक्त फल मिलता है। देवीभागवत के तृतीय स्कंध के आठवें अध्याय में लिखा है—जिस पुरुष ने तीर्थों को पवित्र सुना

और राजसी श्रद्धा उसकी तीर्थों में उत्पन्न हुई है, वह यदि तीर्थों में गया और जैसे उसने सुना था वैसे ही जाकर तीर्थों को देखा तथा वहाँ पर स्नान, दान आदि किया, कुछ काल रजोगुण से युक्त होकर वहाँ पर रहा, राग-द्वेष काम, क्रोध आदि से रहित न हुआ, वह घर आने पर जैसे पूर्व राग-द्वेषादिवाला था, वैसे ही फिर भी रहा।

लोभो मोहस्तथा तृष्णा द्वेषो रागस्तथा मदः।
असूयेर्ष्या क्षमा शान्तिः पापान्येतानि नारद॥
कृते तीर्थे यदैतानि देहान्न निर्गतानि चेत्।
निष्फलः श्रम एवैकः कर्षकस्य यथा तथा॥

ब्रह्माजी कहते हैं, हे नारद! लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, धखीली, अक्षमा, अशांति ये सब पाप तीर्थ के करने से भी यदि देह से न निकलें तो तीर्थ करने का श्रम व्यर्थ ही है। जैसे किसान ने बीज बोए पर उसकी रक्षा नहीं की, तो वन के जीव उसको खा गये, तो उस किसान का परिश्रम जैसे निरर्थक है, वैसे रजोगुण से युक्त तीर्थ करनेवालों का परिश्रम भी निरर्थक है। फिर उसी देवीभागवत के प्रथम स्कंध के अठारहवें अध्याय में जनकजी ने भी कहा है—

भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनःपुनः।
निर्मलं न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम्॥

जो पुरुष संपूर्ण तीर्थों में भ्रमण करता है और पुनः २ स्नान भी करता है, जब तक उसका मन निर्मल याने शुद्ध नहीं होता, तावत् पर्यंत उसका सब निरर्थक है। फिर उसी देवीभागवत के चतुर्थ स्कंध के आठवें अध्याय में बलि राजा ने कहा है—

प्रथमं चेन्मनः शुद्धं जातं पापविवर्जितम्।
तदा तीर्थानि सर्वाणि पावनानि भवन्ति वै॥

पहले यदि मन पाप से रहित होकर शुद्ध हो जाय, तब पीछे सब तीर्थ उसको पवित्र करनेवाले होते हैं।

गङ्गातीरे हि सर्वत्र वसन्ति नगराणि च ।
निषादानां निवासश्च कैवर्तानां तथा परे ॥
स्नानं कुर्वन्ति दैत्येन्द्र त्रिकालं स्वेच्छया जनाः ।
तत्रैकोऽपि विशुद्धात्मा न भवत्येव मारिष: ॥

गंगा के तीर पर सर्वत्र नगर बसते हैं और निषाद तथा मल्लाह आदि नीच जातिवालों के भी बहुत से ग्राम बसते हैं । वे त्रिकाल स्नान भी करते हैं, पर हे दैत्येन्द्र ! उनमें से एक भी शुद्ध चित्तवाला नहीं होता है; क्योंकि वे सब विधि से हीन होकर स्नान करते हैं ।

तीर्थवासी महापापी भवेत्तत्रान्यवञ्चनात् ।
तत्रैवाचरितं पापमानन्त्याय प्रकल्पते ॥
यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते ।
भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुध्यति ॥

जो तीर्थों में वास करके वहाँ पर दूसरों को वंचन करते हैं, वे महापापी कहे जाते हैं; क्योंकि तीर्थों में किए हुए पाप भी अनंत हो जाते हैं । जैसे कड़वी तूँबी का पका हुआ फल भी कदापि मीठा नहीं होता है, वैसे ही दुष्ट चित्तवाला तीर्थों में स्नान करने से भी कदापि शुद्ध नहीं होता है । तात्पर्य यह कि विना विधि से और विना चित्त की शुद्धि याने सफाई से तीर्थ कदापि फल को नहीं दे सकते हैं । जो तप दंभ से लोगों को फँसाने के लिये किया जाता है, जैसे कि चौरस्ते में पंचाग्नि तापना, या नग्न होकर फिरना, या वहुत सी पूजा करके लोगों को दिखलाना, जब लोगों को श्रद्धा आ गई, तब सेवक बनाकर उनसे द्रव्य वंचन करके अपना मठ बना लेना, नाम के लिये तपस्वी बनकर प्रपंच फैलाना, ऐसा तप दांभिक कहा जाता है । इसका फल जन्मांतर में दुःख ही है, सुख नहीं होता । जो अपने शरीर पर या स्त्री पुत्रादि पर दया करनी है, वह दया नहीं कहाती है । जो प्राणीमात्र पर दया करनी है, उसी का नाम दया है । जो असमर्थ

होकर या लोभ से इंद्रियों का दमन है, वह दमन नहीं है। जो सामर्थ्यवान् होकर, लोभ से रहित होकर जो मनादि इंद्रियों का दमन करना है, उसी का नाम दमन है। जो उपकार करनेवाले के प्रति देता है या नाम के लिये देता है, उसका देना दान नहीं है। जो अनुपकारी के प्रति देता है और नाम की इच्छा से रहित अधिकारी के प्रति देता है, उसी का देना दान है। सो गुरुजी कहते हैं कि तीर्थ, तप, दया, दत्त, दान, इन पाँचों का फल तब प्राप्त होता है, जब कोई शास्त्रों की विधि को तिल-भर याने थोड़ा सा भी पा जाय अर्थात् विधि-पूर्वक इनको करे अथवा इन पाँचों के फल को वह पुरुप प्राप्त करता है, जो एक तिल-भर भी याने थोड़ा सा भी परमेश्वर में प्रेम-रूपी भक्ति को पा जाय; क्योंकि विना भक्ति के कोई भी तीर्थादि पूरे फल को नहीं दे सकते हैं। इसी वास्ते बाह्य तीर्थ मंद अधिकारियों के बनाये गये हैं। उत्तम अधिकारियों के लिये अंतर-तीर्थ कहे हैं। उनको भी गुरुजी कहते हैं--

मू०—अन्तरगत तीर्थमलनाउ।

टी०—उत्तम अधिकारी जो परमेश्वर का भक्त है, वह अंतगत याने शरीर के अंतर जो तीर्थ हैं, उन्हीं में स्नान करता है।

भारत।

तपस्तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थं ध्यानतीर्थमनुत्तमम्॥
एतानि पञ्च तीर्थानि सत्यं षष्ठं प्रकीर्त्तितम्।
देहे तिष्ठन्ति सर्वस्य तेषु स्नानं समाचरेत्॥

तप करना तीर्थ है। क्षमा करनी तीर्थ है। इंद्रियों का निग्रह करना तीर्थ है। संपूर्ण भूतों पर दया करनी तीर्थ है। ईश्वर का ध्यान करना तीर्थ है। ये पाँच और छठा सत्यभाषण करना तीर्थ है। सब मनुष्यों के शरीर में ही ये छहों तीर्थ नित्य ही स्थिर रहते हैं। उनमें ही स्नान करे।

दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्यपरं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥

दान करना तीर्थ है, इंद्रियों का दमन करना तीर्थ है, संतोष करना तीर्थ है, ब्रह्मचर्य रखना परम तीर्थ है, प्रियभाषण तीर्थ है, ईश्वर का ज्ञान होना तीर्थ है, धैर्यता होनी तीर्थ है, सब तीर्थों का तीर्थ मन की शुद्धि है । तीर्थ का लक्षण भी किया है —

तरन्ति जना दुःखेभ्यो यैस्तानि तीर्थानि ।

जिससे पुरुष दुःखों से तर जाय, उसी का नाम तीर्थ है । ऊपर कहे हुए तीर्थों में स्नान करने से लोग सांसारिक दुःखों से तर जाते हैं । बाह्य जलरूपी तीर्थों में स्नान करने से दुःखों से नहीं तरते हैं । सो काशीखंड में कहा भी है—

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः ।
सर्वतीर्थेष्वभिस्नातः पापो मलिन एव सः ॥

जो पुरुष लोभी, चुगुलखोर, क्रूर स्वभाववाला और दंभी तथा विषयी है, वह यदि सब तीर्थों में स्नान भी करे, तब भी वह पापी मलिन ही रहता है—

न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः ।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तस्सुनिर्मलः ॥

शरीर के मल के त्यागकरने से पुरुष शुद्ध नहीं होता है । मन का मल त्यागने से पुरुष शुद्ध होता है ।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु स सर्वमलवर्जितः ।
तेन क्रतुशतैरिष्टं चेतो यस्य हि निर्मलम् ॥

उस पुरुष ने सब तीर्थों में स्नान कर लिया है और वही संपूर्ण

मलों से रहित है, जिसका चित्त निर्मल है। तात्पर्य यह है, विना मन की शुद्धि के बाह्य तीर्थादि भी फल नहीं दे सके हैं। विना अंतर के तीर्थों में स्नान किए से मन की शुद्धि नहीं होती है। इसी वास्ते गुरुजी कहते हैं, अंतर में प्राप्त जो सत्भाषणादिरूप तीर्थ हैं, उन्हीं में मल मल करके स्नान करो।

प्र०—जब हम भीतर के तीर्थों में स्नान करेंगे तब भी तो परमेश्वर की प्राप्ति होनी कठिन है; क्योंकि हमारे में कोई गुण तो नहीं है और विना गुण के ईश्वर कैसे प्रसन्न होंगे?

उ०—मू०—सब गुण तेरे में नाहिं कोय।

टी०—जब कि तुम अंतरवाले तीर्थों में स्नान करोगे, तब तुम्हारे में संपूर्ण दैवीसंपद् के गुण आ जायँगे और नाहीं को अर्थात् तेरे से बाहर कोई भी गुण फिर नहीं रहेगा। अथवा जो पुरुष अंतर तीर्थों में स्नान करे, उसको ऐसी ईश्वर के आगे प्रार्थना करनी चाहिए। हे ईश्वर! *तेरे में ही सर्वज्ञादि सब गुण हैं। मैं कोई नहीं, मेरे में कोई भी गुण* नहीं है। अथवा ऐसी प्रार्थना करे, हे ईश्वर! सर्वज्ञत्वादि गुण तेरे में माया ने आरोपण किए हैं।

नाहीं कोय।

वास्तव में तेरे में कोई भी गुण नहीं है, क्योंकि तेरा स्वरूप निर्गुण शुद्ध है।

निष्फलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।

श्रुति कहती है, वह परमेश्वर निरवयव क्रिया से रहित शांतरूप इंद्रियों का अविषय और माया-मल से रहित है। गीता में भी कहा है—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।

परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥

जो बुद्धिहीन अज्ञानी पुरुष हैं, अव्यक्तरूप को व्यक्ति को प्राप्त हुआ मानते हैं। भगवान् कहते हैं, वह मेरे परम निर्गुण-स्वरूप को नहीं जानते। वह मेरा स्वरूप अव्यय है और सबसे उत्तम है।

प्र०—जब आप जानते हैं कि परमेश्वर का स्वरूप निर्गुण है, तब फिर उसमें मिथ्या सर्वज्ञत्वादि गुणों का आरोप्य क्यों करते हो ?

उ०। मू०—विणुगुणकीतेभकनहोइ।

टी०—विना गुणों के आरोप्य किए उसकी भक्ति कदापि नहीं हो सक्ती है। इसवास्ते उसमें गुणों का आरोप्य किया जाता है।

मू०—सुअसतआथवाणीब्रह्म।

उ०-टी०—सुअ का अर्थ स्वस्त याने कल्याणरूप और सत् याने सद्रूप ब्रह्म ने माया को आश्रयण करके बरमाउ ब्रह्मद्वारा वाणी अर्थात् वेदरूपी वाणी को आथ कहा है। फिर उसी वेदरूपी वाणी में अपना स्वरूप भी कहा है। सो दिखाते हैं—

मू०—सतसुहाणसदामनचाउ।

टी०—सुहाण का अर्थ चेतन है। मनचाउ का अर्थ आनंद है। सदा का अर्थ सत् है। अर्थात् वह ईश्वर चेतनरूप, आनंदरूप, सद्रूप है। जो सद्रूप, आनंदरूप, चेतनरूप है, वह अर्थ से ही क्रिया से रहित व्यापकरूप सिद्ध होता है।

प्र०। मू०—कवणसुवेला।

निराकार व्यापक चेतनरूप ईश्वर ने उस काल में जगत् को उत्पन्न किया था।

कवणसुवेला।

वह कौन समय याने समंत था।

मू०—वखतकवण।

कौन वक्त था ? सवेरा, दुपहर, या तीसरा पहर था ?

मू०—कवणथिति कवणवारु।

प्रतिपदादि तिथियों में कौन तिथि थी ? रवि आदि वारों में कौन वार था ?

मू०—कवणसिरुति माहुकवण।

षट्ऋतुओं में से कौन ऋतु थी ? चैत्रादिक बारह मासों में से कौन मास था ?

मू०—जितुहो आ आकारु।

टी०—जिस समय निराकार से आकारवाला जगत् उत्पन्न हुआ है

उ०। मू०—वेलनपाईआ पंडिती जिह्नोवे लेखुपुराणु।

टी०—जगत् की उत्पत्ति का काल यानी समय पंडितों को भी नहीं मिला है। यदि पंडितों के जगत् की उत्पत्ति का समय मिल जाता है सो पुराणों में उसका लेख भी होता। पुराणों में उसका लेख नहीं इसी से साबित होता है, पंडितों को भी उसका पता नहीं लगा है

प्र०—पुराणों में जगत् की उत्पत्ति ब्रह्मा के दिन से लिखी है औ ब्रह्मा की रात्रि में प्रलय लिखी है। ब्रह्मा के दिन का प्रमाण भी लिखा है। एक हज़ार युगों की जब चौकड़ी व्यतीत होती है, तब ब्रह्मा का दिन कहा जाता है। फिर इतने ही काल का नाम ब्रह्मा की रात्रि है। तीन सौ साठ दिन का वर्ष और सौ वर्ष की ब्रह्मा की आयु है। महाप्रलय में ब्रह्मा भी मर जाता है। ऐसा पुराणों में लिखा है।

उ०—जो आप कहते हैं सो ठीक लिखा है। तब भी ब्रह्मा की और जगत् की उत्पत्ति की कोई तारीख यानी संवत् मिती तो नहीं लिखी है, क्योंकि संवत् मिती भी ब्रह्मा की उत्पत्ति से पीछे उत्पन्न हुए हैं। पुराण के बनानेवाले तो बहुत ही पीछे हुए हैं। उनको तो उत्पत्ति का हाल पूरा मालूम नहीं है। इस वास्ते उन्होंने जगत् की उत्पत्ति का काल पुराणों में नहीं लिखा है। यदि कहो पुराणादि के बनानेवाले ऋषि मुनि सर्वज्ञ हुए हैं, उन्होंने अपनी सर्वज्ञता के बल से पुराणों में जगत् की उत्पत्ति का हाल लिखा है, ऐसा कथन भी तुम्हारा नहीं बन सकता है, क्योंकि दो प्रकार के योगी लिखे हैं। एक युक्त योगी, दूसरा युंजान योगी। जिसको सर्वदा काल ब्रह्मांड भर के पदार्थों का ज्ञान बना रहे, उसका नाम युक्त योगी है। वही ईश्वर है। दूसरा जो समाधि में स्थित होकर किसी देश के पदार्थ को जाकर कहे, वह युंजान योगी कहा जाता है। दोनों युक्त योगी ईश्वर के पुराणादि बनाए हुए माने नहीं जाते हैं, किंतु ऋषियों के ही बनाए हुए माने जाते हैं। सो युंजान योगी हैं। युंजान योगी सर्वज्ञ कदापि नहीं हो सकता है।

यदि कहो उनको भी सर्वज्ञ लिखा है, सो उनकी स्तुतिमात्र है। सर्वज्ञ वह कदापि नहीं हो सकते हैं। यदि हठ से मानोगे, तब हम पूछते हैं जगत् की उत्पत्ति तो एक ही तरह से हुई है। उन्होंने जुदा-जुदा तरह से क्यों लिखा है। देवीपुराण में देवी से, विष्णुपुराण में विष्णु से, गणेशपुराण में गणेश से, शिवपुराण में शिव से, इसी तरह और पुराणों में औरों से लिखी है। फिर गौतम ने परमाणुओं से, कपिलजी ने प्रकृति से, वेदांत में माया से उत्पत्ति मानी है, इसी से साबित होता है किसी को भी पूरा उत्पत्ति का हाल नहीं मिला है। जैसे एक मणि रास्ते में पड़ी है और बहुत पुरुषों ने उसको देखा और पृथक् २ तरह का सबको ज्ञान हुआ। यह सबका भ्रम ज्ञान है। वैसे ही जगत् की उत्पत्तिविषयक सबका पृथक् २ ज्ञान होने से भ्रम ज्ञान है। यदि समाधि के बल से भी उनको मालूम होता, तब भी एक ही तरह का होता-और एक ही तरह का लिखते, ऐसा तो नहीं हुआ है। न लिखा है। इसी से उन सबका भ्रम ज्ञान है। यथार्थ नहीं है। यदि सबको यथार्थ ज्ञान होता, तब सब एक ही तरह से सृष्टि की उत्पत्ति को कहते। ऐसा तो नहीं है। इसी से सिद्ध होता है सबका भ्रम ज्ञान ही है। यदि कहो कल्पभेद करके ऋषियों ने सृष्टि का भेद कहा है, सो भी नहीं बनता; क्योंकि इसमें कोई श्रुति स्मृति प्रमाण नहीं मिलते हैं। फिर पुराणों का कर्त्ता सब व्यास को ही मानते है और व्यास ने किसी पुराण में भी यह वार्त्ता नहीं लिखी है। जो फलाने कल्प में विष्णु से सृष्टि हुई है और अमुक कल्प में शिव से, अमुक में देवी से, गणेश से हुई है। फिर अनंत कल्प हुए हैं और पुराणों में आठ दश से ही सृष्टि हुई लिखी है। बाकी के कल्पों में कैसे हुई थी, इस उत्तर में कुछ नहीं। फिर पुराणों में एक दूसरे की निंदा भी लिखी है। वेद में जो सृष्टि कर्म है, उससे पुराणों में विरुद्ध है। जो वेदविरुद्ध हो, वह मानने योग्य नहीं होता है। बस इसी से सिद्ध होता है, जगत् की उत्पत्ति और प्रलयादि का-पुराणों के बनानेवालों को पूरा नहीं मिला है। यदि मिलता, तब वह लिखते। सो गुरुजी का कथन ठीक है।

प्र०—म्लेच्छों के आचार्य जो क़ाजी वगैरह हुए हैं, उनको जगत् का उत्पत्ति का कुछ मिला होगा ?

उ०। मू०—वखतुन पायोकादीयांजिलिखणलेखकुरान।

टी०—म्लेच्छों के आचार्य जो पैग़म्बर आदि हुए हैं, उनको तो कुछ भी सृष्टि की उत्पत्ति का हाल नहीं मिला है; क्योंकि योगविद्या और आत्मिकविद्या से शून्य और स्थूलबुद्धिवाले दया से रहित हुए हैं। यदि उनको कुछ हाल मिल जाता, तब अपने क़ुरान में न लिखते ! उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा है। इसीसे साबित होता है, जो उनको कुछ भी हाल नहीं मिला। फिर वह अतिस्थूलबुद्धिवाले हुए हैं उन्होंने अपनी किताबों में सब पँचपाँच की बातें लिखी हैं। इसीसे जाना जाता है, उनको कुछ भी सृष्टि की उत्पत्ति की ख़बर नहीं थी।

प्र०—योगी तो योगाभ्यास के बल से जगत् की उत्पत्ति के काल को जानता होगा ?

उ०। मू०—तिथि वार ना जोगी जाणे रुतमाहु न कोई।

टी०—योगी भी जगत् की उत्पत्तिकाल के तिथि, वार और ऋतु तथा महीने को नहीं जानता है; क्योंकि जगत् की उत्पत्तिकाल में तिथि, वार आदिक उत्पन्न ही नहीं हुए थे। तात्पर्य यह है, जगत् की उत्पत्ति से पूर्वकाल में सूर्य ही उत्पन्न नहीं हुआ था और सूर्य की क्रिया के आधीन हैं सब तिथि वारादि। इसलिये योगी भी उसके काल को नहीं जान सकता है।

प्र०—कोई मनुष्य तो जगत् की उत्पत्ति और प्रलय का हाल जानता होगा ?

उ०। मू०—जा करता सृठी को साजे आपे जाणे सोई।

टी०—गुरुजी कहते हैं, मनुष्यमात्र ही जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के हाल को नहीं जानता है; किंतु जो ईश्वर जगत् का कर्ता, सृष्टि को साजता है याने उत्पन्न करता है, वह आप ही उसके हाल को जानता है।

प्र०—जो ईश्वर जगत् की उत्पत्ति और प्रलयादि को करता है और अपनी शक्ति से उसके हाल को जानता है, उसका स्वरूप क्या है ? इदंता का विषय और वाणी आदि का विषय है या नहीं है ?

उ० । मू०—किवकरि आखां किवसालाही किव वरणी किव जाणा ।

टी०—यदि कोई दूसरा उसके तुल्य का हो, तब तो उसकी मिसाल देकर हम उसके स्वरूप को कहें । ऐसा तो नहीं है । तब फिर कैसे आखां । कैसे हम उसके स्वरूप को कहें ? श्रुति भी इसी अर्थ को कहती है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

जिस परमात्मा को मन के सहित वाणी भी न प्राप्त होकर हट आती है अर्थात् जो मन वाणी का भी विषय नहीं है, वह कैसे कहा जाय ? वह किसी से भी नहीं कहा जासक्ता है । और किव सालाही । सालाई नाम स्तुति का है । हम उसकी स्तुति कैसे करें । स्तुति वाणी से होती है । वाणी जड़ है । वह चेतन की कैसे स्तुति कर सकती है । फिर स्तुति गुणों से होती है । गुण सब उसमें माया ने आरोपण किए हैं । वह माया मिथ्या है । उसके कार्य गुण भी सब मिथ्या हैं । मिथ्या गुणों करके स्तुति करनी सद्रूप चेतन की बनती नहीं ; क्योंकि वास्तव स्वरूप उसका निर्गुण है । इसलिये वाणी से उसकी स्तुति करनी भी नहीं बनती है । किव करनी अर्थात् किस प्रकार उसकी करणी है ? वह जीवों के लिये क्या-क्या करता है ? उसको हम किव जाणा कैसे जान सकें; किंतु किसी तरह से भी हम नहीं जानते हैं । तात्पर्य यह है, ईश्वर के सब काम अलौकिक हैं । जीवों की बुद्धि उसके कामों में दखल नहीं दे सकती है ।

प्र०—तब फिर शास्त्रकारों ने अपने ग्रंथों में उसके स्वरूप को और उसके गुणों और उसकी करणी को कैसे निरूपण किया है ?

उ०।मू०—नानकआखणसवको आखे इक दूइकु स्याण।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं, कथन तो उसका सब शास्त्रकारों ने अपनी २ बुद्धि के अनुसार किया भी है और एक से एक शास्त्रकार बुद्धिमान् भी हुए हैं। तब भी इदन्ता करके वह नहीं कहसके हैं; किंतु भक्ति के और उपासना के लिये उसमें गुणों का आरोप्य करके उन्होंने भी कहा है।

मू०—वडा साहिब वडी नाई कीता जाका होवै।

टी०—गुरुजी कहते हैं, परमेश्वर सबसे बड़ा है अर्थात् आकाशादि से भी बड़ा है; क्योंकि देशकाल वस्तु परिच्छेद से रहित है। वड़ी नाई उसका नाम भी बड़ा पवित्र है; क्योंकि वह जन्म-मरणरूपी संसार से छुड़ा देता है। वह सत्य-संकल्प भी है, इसी वास्ते उसका किया हुआ संकल्प सिद्ध होता है। जो वह चाहता है, वही होता है। अन्यथा कदापि नहीं होता। इसलिये सदैव ईश्वर से प्रार्थना करे कि हमारे काम, क्रोधादि दूर हो जायँ; क्योंकि अहंकार ही दुःख का कारण है। अहंकार की निवृत्ति ही सुख का कारण है।

मू०—नानकजेको आपेजाणै आगेगया न सोहै।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं, जेको याने जो पुरुष आपै जाणै अहंकार करके अपने को ही बड़ा मानता है, वह आगे भक्ति के मार्ग में कभी भी शोभा नहीं पासक्ता है।

अतिमानं सुरापानं गौरवं घोररौरवम्।
प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

अतिमान को, सुरापान के तुल्य गौरवता को, घोर नरक के तुल्य प्रतिष्ठा को, शूकर के विष्ठा के तुल्य त्याग देना चाहिए।

भागवत एकादश।

न तस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः।
सज्जतेऽस्मिन्नहम्भावो देहे स तु हरेः प्रियः॥

जो जन्म, कर्म, वर्णाश्रम, जाति और देह में अहंभाव नहीं रखता है, वही हरि का प्यारा भक्त है। इसी पर गुरुजी ने कहा है, जो अहंकारादि का त्याग कर देता है; वही आगे परमेश्वर के दरबार में जाकर शोभा पाता है।

मू०—पाताला पाताला लख आगासा आगासा।
उडुक उडुक भालिथके वेद कहनि इकवात।
सहस अठारह कहनि कतेवा असलू इकंधात।
लेखा होयत लिखीयै लेखै होय विणास।
नानक वडा आखीयै आपे जाणै आपु।

मू०—पाताला पाताला लख आगासा आगासा।

टी०—अब गुरुजी परमेश्वर की सृष्टि की अनंतता दिखलाते हैं।

प्र०—पुराणों में तो सात सृष्टि दिखाई है। सात पाताल नीचे के और सात लोक ऊपर के कहे हैं।

उ०—परमेश्वर की सृष्टि का अंत नहीं है; क्योंकि पाताल के नीचे और पाताल है, उसके नीचे और है। इसी तरह लाखों पाताल हैं। ऊपर के आकाश जो लोक हैं, वह भी लाखों ही हैं। एक के ऊपर और उस पर और इसी तरह लाखों ही हैं। अर्थात् नीचे लोक भी अनंत हैं और ऊपर के लोक भी अनंत हैं। ईश्वर की सृष्टि का अंत किसी को नहीं मिला है।

प्र०—किसी ऋषि मुनि ने अंत पाया भी है, या किसी ने भी नहीं पाया है?

उ०—किसी ने भी नहीं पाया है।

मू०—उडुक उडुक भालिथके वेदकहनि इकवात।

टी०—उडुक का अर्थ अंत है। सब ऋषि मुनि सृष्टि के उडुक को याने अंत को भालि थके. खोज २ करके थक गए; परंतु किसी को भी अंत न मिला। तात्पर्य यह है, ऋषि मुनि सब जीव कोटि

में अलग हुए हैं। वह सर्व परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि का अंत कैसे पा सकते हैं; किंतु कदापि नहीं पा सकते हैं। बल्कि ब्रह्मा आदि को भी कुछ नहीं अंत मिला है; क्योंकि वह भी जीवकोटि में ही कहे जाते हैं। देवीभागवत में लिखा है; प्रथम जब ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों देवता उत्पन्न हुए, तब बड़ी चिंता करने लगे कि हम कहाँ से उत्पन्न हुए हैं? क्यों उत्पन्न हुए हैं? हमको क्या करना चाहिए? हम तो कुछ भी नहीं जानते हैं। ऐसा विचार वे तीनों देवता करते ही थे। इतने में एक पुष्पविमान आ गया। वह तीनों देवता उस पर सवार हो गए। तब वह विमान तीनों देवतों को उड़ा कर मणिबंध द्वीप में ले गया। वहाँ पर सब स्त्रियाँ ही रहती थीं। वह ब्रह्मादिक तीनों देवता भी स्त्रियाँ हो गई। जब वह आगे बढ़े, तब क्या देखते हैं, भुवनेश्वरी देवी एक सिंहासन पर बैठी है और उस सिंहासन को दूसरे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों ने उठाया हुआ है। तब इन देवतों ने भुवनेश्वरी से कहा, हम बड़े अज्ञानी हैं। हमको कुछ करने के लिये उपदेश करो। तब देवी ने कहा, जाओ तुम्हारे में सृष्टि करने की सामर्थ्य हो जायगी। दूसरे द्वीप में जाकर तुम भी सृष्टि करो। वे फिर उसी विमान पर बैठकर दूसरे ब्रह्मांड में चले आए। अब विचार किया जाय, तब ब्रह्मा आदि को भी असली पता कुछ भी नहीं लगा है। इसी तरह की बहुत सी कथाएँ पुराणों में आती हैं, जिनसे साबित होता है कि ब्रह्मा आदि देवतों को भी ईश्वर का अंत नहीं मिला है। अंत को खोज २ कर हारकर थक गए।

प्र०—वेदों को तो अंत मिला होगा; क्योंकि वेद तो ईश्वर के बनाये हुए हैं? उनमें तो ईश्वर ने अपना अंत लिखा होगा?

उ०—प्रथम तो वेदों के ईश्वर-कृत्य होने में जीवों का वादाविवाद है। फिर वेद के दो भाग हैं। मंत्र भाग और ब्राह्मण भाग। कोई तो कहते हैं, मंत्र भाग ईश्वर का बनाया हुआ है और ब्राह्मण भाग ऋषियों का। कोई कहते हैं, मंत्र भाग ही ऋषियों का बनाया हुआ है;

क्योंकि मंत्रभाग के जितने मंत्र हैं, वे सब देवतों की स्तुति को कहते हैं। यदि ईश्वर का बनाया होता तब ईश्वर को देवतों की स्तुति करने की क्या जरूरत थी ? जो ऋषि जिस देवता का उपासक हुआ है उसने अपने उपास्य देवता की स्तुति का मंत्र बनाया है । इसीसे साबित होता है, मंत्रभाग ऋषियों का बनाया हुआ है । जो ईश्वर का बनाया हुआ मंत्रभाग मानते हैं, वह उन मंत्रों के अर्थ को ईश्वर की स्तुति पर कब लगाते हैं अर्थात् मंत्रों का अर्थ ईश्वर की स्तुति करते हैं । ऐसा भी नहीं बनता है । यदि ईश्वर के बनाए मंत्र होते, तब ईश्वर को अपनी स्तुति करनी बनती नहीं; क्योंकि जो जीव अपनी स्तुति को आप करता है वह अच्छा नहीं समझा जाता है । तब ईश्वर कैसे अपनी स्तुति को आप करेगा ? जिसको प्रतिष्ठा कराने की जरूरत होती है, वह मूर्खों से अपनी झूठी स्तुति कराता है, ईश्वर में तो यह बात घटती नहीं ; क्योंकि वह आप्तकाम है । यदि कहो जीवों के उद्धार के लिये मंत्रों में स्तुति करी है अर्थात् जीवों को उपदेश किया है । मंत्रों द्वारा तुम स्तुति करोगे तब तुम्हारा कल्याण होगा, ऐसा मानने से भी ईश्वर की आप्तकामता जाती है । बस इन्हीं दोषों के आने से साबित होता है कि मंत्रभाग ऋषियों का बनाया हुआ है और ब्राह्मणभाग ईश्वर का बनाया हुआ है; क्योंकि उस में वेदांत का निरूपण है। किसी की स्तुति का निरूपण नहीं है। मंत्रभाग जो ईश्वर का बनाया हुआ मानते हैं, वह कहते हैं । ब्राह्मणभाग ऋषियों का बनाया हुआ है; क्योंकि उसमें याज्ञवल्क्य आदि ने कहे हैं । यदि ईश्वर का बनाया हुआ होता, तो ईश्वर को जीवों की कथा लिखने की कौन सी जरूरत थी ? इस वास्ते ब्राह्मणभाग ऋषियों का बनाया हुआ है । मंत्रभाग ईश्वर का बनाया हुआ है । वेद ईश्वर का ज्ञानरूप है । ऐसा कथन भी नहीं बनता है; क्योंकि सृष्टि आदि काल में वेद की उत्पत्ति मानी है । ईश्वर का ज्ञान नित्य माना । उसकी उत्पत्ति बन नहीं सकी । फिर वेद-शब्दात्मक माना है । पढ़ना-पढ़ाना वाणी करके शब्द का ही होता है । ज्ञान का नहीं होता है । फिर कोई मीमांसक वेदको अनादि

मानते हैं और दूसरे सादि मानते हैं । कोई मंत्र और ब्राह्मण दोनों भागों को ऋषियों के बनाए हुए मानते हैं। तात्पर्य यह है वादाविवाद को छोड़ कर देखा जाय । यदि हम ऋषिप्रणीत ग्रंथों को भी मानते हैं फिर वेद भी यदि ऋषियों का बनाया हुआ भी माना जाय, तो भी कोई हर्ज की बात नहीं है; परंतु वेदों को भी ईश्वर का अंत नहीं मिला है; क्योंकि वेद कहनि इकवात॥ वेद भी सब एक ही ईश्वर को अनंत-ही कहते हैं ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

वह ब्रह्म सद्रूप ज्ञानरूप अनंतरूप है । ऐसा वेद कहता है । यदि उसका अंत कोई ऋषि मुनि पा जाता, तो वह अनंत भी नहीं कहाता और अनंतता उसकी प्रत्यक्ष प्रमाण से और युक्ति से भी साबित होती है ।

मू०—सहसअठारह कहनिकतेवाअसलूइकधात ।

टी०—सहस पद को किताबों के साथ जोड़ना और अठारह पद करके अठारहपुराण लेने अर्थात् अठारहपुराण और हज़ारों किताबें भी कहती हैं ।

असलूइकधात ।

अर्थात् वास्तव से एक चेतन वस्तु ही सत्य है। जिसकी सत्ता से सारा जगत् व्यवहार कर रहा है । वही चेतन ईश्वर है । उससे भिन्न सारा जगत् असद्रूप है ।

प्र०—पुराणादि में जीवों की कुछ संख्या लिखी है या नहीं ?

उ० । मू०—लेखाहोइ त लिखिये लेखैहोय विणास ।

टी०—यदि जीवों की सृष्टि का कुछ लेखा याने हिसाब होता, तो वह भी लिखते । जिस वास्ते संख्या नहीं है इसी वास्ते पुराणादि में भी लिखा नहीं है । देखो एक छोटीसी कोठरी में जितने मच्छर हैं उनकी गिनती कोई भी नहीं कर सका । फिर हजारों कोसों के जंगलों के मच्छरों की कौन संख्या कर सका है । फिर इसी तरह लाखों योनियों के जीवों

की संख्या कैसे होसकी है ? कदापि नहीं होसकी है । इसी से साबित होता है, जीवों की सृष्टि अनंत है । इसी पर गुरुजी कहते हैं, यदि संख्या होती, तो पुराणों में भी लिखते । उनकी संख्या नहीं है, इसीसे उन्होंने भी नहीं लिखा है । लेखे होय विणास जो वस्तु संख्या में होती है उसका विणास याने अंत भी होता हैं । जो लिखने से बाहर है, वह अनंत है ।

मू०—नानकवड़ाआखीऐआपेजाणैआपु ।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं वह परमेश्वर ही सब से बड़ा कहा जाता है । वह आपही अपनी सृष्टि को आप जानता है । दूसरा ऋषि, मुनि, देवता और मनुष्यादि कोई भी उसकी सृष्टि की रचना नहीं जानता है ।

मू०—सालांही सालाहि एती सुरति न पाईआ ।
नदीआ अतैवाह पवहि समुंदिन जाणी अहि ॥
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु ।
कीडी तुल्य न होवनी जेतिस मनहु न वीसरहि ॥

फल—पानी के बीच खड़ा होकर सूरज निकलने से पहिले उन्नीस हजार वार जपै, तो राजा का वज़ीर हो और अगर मकान पर पढ़े तो मीरगी की बीमारी दूर हो ।

मू०—सालाहीसालाहि एतीसुरतिनपाईआ ।

टी०—जो स्तुति करने के योग्य हो, उसी का नाम सालाही है । सालाहि नाम स्तुति का है । स्तुति करने के योग्य जो परमेश्वर है उसकी स्तुति को करै । एति याने इतनी उसकी स्तुति करै ।

सुरतन पाईआ ।

जब तक सुरत जो बुद्धि उस परमेश्वर के प्रेम में मग्न न हो जाय, तब तक उसकी स्तुति करै । जब बुद्धि उसके प्रेम में मग्न हो जाय तब जाने कि सच्ची भक्ति है ।

दृष्टांत—लीलां अरण्य नाम करके एक जाती के ब्राह्मण बड़े भक्त

थे। रामलीला में उनको राजा दशरथ का स्वांग बनाया और रामचंद्र को वनवास हुआ और सुमंत रथ पर बिठा कर उनको वनमें छोड़ आया। दशरथजी से उनके वन जाने का हाल कहा। उस हालको सुन कर तुरंत ही जो दशरथ बने, उन्होंने रामजी के वियोग में प्राणों का त्याग कर दिया। इसी का नाम सच्चा प्रेम है। ऐसा ही प्रेम करे। जो बुद्धि उसी में लीन हो जाय।

मू०—नदियाअतेवाहपवहिसमुंदनजांणीअहि।

टी०—नदियाँ स्थानापन्न ब्रह्मा आदि सब देवता हैं। वाहस्थानक मनुष्यादिक सब जीव हैं। जब इन देवतों और मनुष्यों का अंत नहीं मिलता है तब फिर समुद्र स्थानक ईश्वर का अंत कैसे मिल सक्ता है? कदापि नहीं मिल सकता है।

मू०—समुंदसाहसुलतानगिरहासेतीमालुधनु।

टी०—जगत् का स्वामी जो ईश्वर है वह समुद्ररूप है और गुणों की खान है। शाह सुलतान याने राजों का भी राजा है। अर्थात् ब्रह्मा आदि का भी नियंता है। जैसे किसी पुरुष की गाँठ में धन बँधा हो और उसको विस्मरण हो जाय वैसे ही जीवों के अंतःकरणरूपी गाँठ में वह ईश्वर विराजमान और प्रकाशमान है। जीवों को वह भूल गया है। इस वास्ते उसको पर्वतों में और तीर्थों में खोजते फिरते हैं।

मू०—कीडीतुल्यनहोवनी जेतिसमनोहुनवीसराहि।

टी०—जो पुरुष अपने हृदय में विराजमान परमेश्वर को नहीं जानता है वह कीडी के याने चींटी के तुल्य भी नहीं होता है। अथवा जो पुरुष उस परमेश्वर को अपने हृदय से नहीं विसारता याने भुलाता है, वह चींटी के तुल्य याने छोटे दरजेवाला कदापि नहीं होता; किंतु बड़े दर्जेवाला ही होता है। जो उसको विसार देता है वह व्यर्थ ही जन्म को खोता है। इसी वार्ता को भाषा में एक कवि ने भी कहा है—

कवित्त

पेटमें पौढ़के पौढ़े मही, जननी सँग पौढ़के बाल कहाये।
योंहीं त्रियासँग पौढ़न लागे, तो सारी निशा हँसपौढ़ गँवाये॥
क्षीर समुद्रके पौढ़नहारको, ध्यान कियो न कवौं चितलाये।
पौढ़त पौढ़त पौढ़ रहे, तो चितापर पौढ़नके दिन आये॥

गर्भचढ़्यो, पुन सूपचढ़्यो, पलनापैचढ़्यो, चढ़्यो गोद धनाके, हाथीचढ़्यो, पुन अश्वचढ़्यो, सुखपालचढ़्यो, चढ़्यो जोगधनाके। वैरी औ मित्र के चित्त चढ़्यो, कवि तोष कहे दिन वीते पनाके, ईशकृपालको जान्यो नहीं अव काँधे चढ़्यो चढ़ चार जनाके॥

सोरठ। मं०—प्रीतम जानि लेहु मनमाहीं अपने सुख सिउही जग फांदियो को काहूको नाहीं॥

रहाउ।

सुख में आन बहुत मिलि बैठत रहित चहूदिशि घेरे।
विपति परी सव ही सँग छोड़त कोउ न आवत नेरे॥
घरकी नारि बहुत हित जासिउ सदा रहित सँगलागी।
जवहीं हंस तजी यह काया प्रेत प्रेतकर भागी॥
यह विधिको व्योहार बन्यो है जां सिव नेहु लगायो।
अंतवार नानक बिन हरजी कोऊ काम न आयो॥

तात्पर्य यह है, परमेश्वर के प्रेम की दोनों लोकों में प्रतिष्ठा होती है।

मू०—अन्तु न सिफती कहणि न अन्तु।
अन्तु न करणै देण न अन्तु॥
अन्तु न वेषणि सुणन न अन्तु।
अन्तु न जापै क्या मनि मन्तु॥

अन्तु न जापै कीता आकारु।
अन्तु न जापै पारावारु॥
अन्तु कारणि केते बिललाहि।
ताके अन्त न पाये जाहि॥
एहु अन्तु न जाणै कोय।
बहुता कहीऐ बहुता होय॥
वडा साहिब ऊचा थाउ।
ऊचे ऊपर ऊचा नाउ॥
एवड ऊचा होवै कोय।
तिस ऊचेको जाणै सोय॥
जेवडु आप जाणै आपआप।
नानक नदरी कर्मी दात॥

फल—मंगलवार से सूरज निकलने से पहिले उनतीस दिन में साठ हज़ार वार जपै आधे सर का दरद दूर हो।

मू०—अन्तु न सिफती कहणि न अन्तु।

टी०—उस परमेश्वर की सिफतों का भी अंत नहीं है। सिफतों के करनेवालों का भी अंत नहीं है; क्योंकि अनंत ही उसकी सिफतें हैं। और अनंत ही सिफतों के करनेवाले उसके भक्त भी हैं।

मू०—अन्तु न करणै देण न अन्तु।

टी०—उस परमेश्वर की करनी का भी अंत नहीं है और उसके दान का भी अंत नहीं है।

मू०—अन्तु न वेखण सुणण न अन्तु।

टी०—उस परमेश्वर के देखने और सुनने का भी अंत नहीं है। श्रुति भी कहती है—

सर्वतः पाणिपादन्तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।

उस परमात्मा के सर्व ओर हाथ और पांव हैं। सब ओर उसके नेत्र और शिर तथा मुख हैं।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।

लोक में सर्व ओर उसके श्रोत्र हैं और सर्व को व्याप्त करके स्थित हैं।

मू०—अन्तु न जापै क्या मनिमन्तु।

टी०—मन मंत का अर्थ तात्पर्य है। अर्थात् परमेश्वर के तात्पर्यों का भी अन्त नहीं है। आज उसने क्या किया है और कल क्या करेगा, इसको कोई भी ऋषि-मुनि नहीं जान सक्ता है। वह आपही अपने तात्पर्य को जानता है।

मू०—अन्तु न जापै कीता आकार।

टी०—जो उसने अपनी माया शक्ति सूक्ष्म रूप से स्थूलरूप जगत् को उत्पन्न किया है अर्थात् निराकार से साकार जगत् को उत्पन्न किया है। उसका भी अंत किसी को नहीं मिलता है। नैयायिक कहते हैं परमाणुवों से जगत् को बनाता है। वेदांती कहते हैं अनिर्वचनीय माया से बनाता है। सांख्यसेश्वरवादी कहता है, प्रकृति से बनाता है। निरीश्वरसांख्य कहता है प्रकृति ही बनाती है। मीमांसक कहता है, कर्म बनाते हैं। बौद्ध कहता है, बुद्धि बनाती है। सब अपनी २ बुद्धि के अनुसार कल्पना करके मर गए परंतु किसी को भी पूरा अंत नहीं मिला। जैसे जगत् को उत्पन्न करता है और जैसे फिर प्रलयकाल में अपने में लय कर लेता है वह आपही जानता है।

मू०—अन्तु न जापै पारावार।

टी०—उस परमेश्वर की रचना का पारावार यानी आदि अंत किसी को भी प्रतीत नहीं होता है।

मू०—अन्तु कारण केते बिललाहि।

टी०—उस परमेश्वर की रचना के अंत लेने के वास्ते कितने

ही बड़े-बड़े बुद्धिमान पड़े व्याकुल होते हैं । तात्पर्य यह है कि बड़े २ हमारे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तथा इंद्र अग्नि वायु आदि देवता उसकी रचना के अंत को नहीं पासके और जो बड़े २ ज्योतिपशास्त्र के आचार्य हुए हैं, वैद्यक विद्या के धन्वंतरि आदि आचार्य हुए हैं और जो योगविद्या के तथा इतर अनेक प्रकार की विद्या के आचार्य हुए हैं किसी को भी उसकी रचना का अंत नहीं मिला । सब अपनी २ बुद्धि को दौड़ाकर मरगए; परंतु किसी को भी अंत न मिला ।

मू०—ताके अन्तु न पाये जाहि ।

उस परमेश्वर की रचना का अंत कोई भी नहीं पासका । तात्पर्य यह है, परमेश्वर की माया शक्ति अनंत है । बड़ी बलवाली है । जब कि कोई मायाका अंत पाजाय तब तो सृष्टि का अंत भी पासकै ? ऐसा तो नहीं हो सकता है । एक राजा ने अग्नि की उपासना की । जब अग्निदेवता प्रसन्न हुआ; तब उस राजा से उसने कहा, वर मांग । राजा ने कहा, मैं चार मूर्तियों को धारण करके, चारों दिशों में ईश्वर की सृष्टि को देखकर उसका अन्त लेऊँ । अग्नि ने कहा, तथास्तु । वह चारों दिशों में चार मूर्तियों को धारण करके अनन्तकाल तक फिरता रहा । करोड़ों बरस उसको बीत गए । तब भी उसको कुछ भी अंत न मिला । यह कथा योगवाशिष्ठ में विस्तार से लिखी है ।

मू०—एहु अंत न जाणै कोय ।

टी०—उस परमेश्वर की सृष्टि के अंत को कोई भी जीव नहीं जान सकता है । सब मतवाले और मज़हबवाले अपनी २ मिथ्या कल्पना ही करते हैं । अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ ईश्वर का और उसकी रचना का अंत कैसे पा सकता है ? किंतु कदापि नहीं पा सकता है ।

मू०—बहुता कहिये बहुता होय ।

टी०—उस परमेश्वर का बहुत सारा किया हुआ जगत् बहुतही होता है अर्थात् अनंत ही है । उसका अंत किसी को भी नहीं मिलता है ।

मू०—वड़ा साहिव ऊचा थाउ।

टी०—वह परमेश्वर सवसे वड़ा है और उसका स्थान ऊँचा है। जितने कि उत्पत्तिवाले पदार्थ हैं सब देशकाल वस्तु परिच्छेद-वाले हैं अर्थात् किसी देश में हैं किसी देश में नहीं हैं, किसी काल में होते हैं, किसी काल में नहीं होते हैं और परस्पर एक दूसरे पदार्थ से भी दूसरे पदार्थ का भेद है। जो सब पदार्थों का पैदा करनेवाला परमेश्वर है वह ऐसा नहीं है; किंतु देश काल वस्तु परिच्छेद से वह रहित है। वह सब देश में है। सब काल में है। सब वस्तुओं में है। इसी से वह परमेश्वर सवसे वड़ा है। जितने उपासक हैं, सबने अपने २ उपास्य को परमेश्वर माना है। सबने सवसे ऊँचा उसका एक लोक माना है। रामचंद्र के उपासक कहते हैं सब लोकों से ऊपर अयोध्या है। उसीमें रामचंद्रजी रहते हैं। वह उनकी क्रीड़ा का स्थान है। जो नीचे पृथ्वी पर अयोध्या है यह उसकी छाया है। कृष्णजी के उपासक कहते हैं सवसे ऊपर गोलोक है। उसी में कृष्णजी रहते हैं। वही उनकी क्रीड़ा का स्थान है। शिव के उपासक कहते हैं, सवसे ऊपर शिवलोक ही है। वही महाशिव के निवास का स्थान है। देवी के उपासक कहते हैं, सवसे ऊपर मणिवंध द्वीप है। उसी में भगवती महाराणी रहती हैं। और सब उपासक मर करके अपने उपास्य के लोक-प्राप्ति को ही मोक्ष मानते हैं। जैनमतवाले अलोक-आकाश में परमेश्वर को बैठा हुआ मानते हैं। ईसाई और मुहम्मदी मतवाले चौथे आसमान पर खुदा को बैठा हुआ मानते हैं। और भी अनेक मत हैं, जो अपने २ परमेश्वर का लोक सवसे ऊँचा मानते हैं। उन लोकों से भी उसका ऊँचा थाउ याने स्थान है; क्योंकि लोकों से भी वह परे हैं। व्यापक होने से लोक तो मूर्तिमान् हैं। जहाँ तक लोक हैं वहाँ से परे भी वह है। गुरुजी का कथन ठीक है, वह परमेश्वर सवसे वड़ा है और सवसे ऊँचे स्थानवाला है।

मू०—ऊचे ऊपर ऊचा नाउ।

टी०—जितने ऊँचे याने बड़े २ नामवाले ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि हैं इन सबसे व्यापक चेतन परमेश्वर का जो ॐकार नाम है वह सब से ऊँचा याने बड़ा है सो दिखाते हैं। याज्ञवल्क्य संहिता में कहा है—

मांगल्यं पावनं धर्मं सर्वकामप्रसादनम्।
ॐकारं परमं ब्रह्म सर्वमंत्रेषु नायकः॥

ॐकार मंगलरूप है। पवित्र करनेवाला है। संपूर्ण कामनाओं को देने वाला है। ॐकाररूप ही ब्रह्म है। संपूर्ण मंत्रों में वह बड़ा है।

जपेन दहते पापं प्राणायामैस्तथा मलम्।
ध्यानेन जन्मनिर्जातं धारणाभिश्च मुच्यते॥

ॐकार के जप करने से सब पाप दग्ध हो जाते हैं। प्राणायाम से चित्त के सब मल दग्ध हो जाते हैं। ध्यान और धारणा से जन्म मरण से छूट जाता है। इत्यादि वाक्यों से साबित होता है जो ॐकार नाम परमात्मा का है वह सबसे बड़ा है। इसीमें युक्ति को भी दिखाते हैं। जितने वैदिक लौकिक मंत्र हैं सबके आदि में ॐकार शब्द जोड़ा जाता है; क्योंकि बिना ॐकार शब्द के जोड़े वह जपे हुए फल को नहीं दे सकते हैं। ॐकार बिना जोड़े किसी मंत्र के जपने से वह महान् फल को नहीं दे सकता है। इसी से साबित होता है, उस परमेश्वर का ॐकार नाम सबसे ऊंचा है।

मू०—ऐ वडु ऊचा होवै कोइ।

टी०—यदि कोई परमेश्वर से ऊँचा याने बड़ा कोई दूसरा हो या उसके बराबर का कोई हो।

मू०—तिस ऊँचे को जाणै सोय।

टी०—तब उस सबसे ऊँचे याने बड़े परमेश्वर को वह जान लेवे। अर्थात् उसके अंत को भी वह जान लेवे। ऐसा तो नहीं है।

मू०—जे वडु आप जाणै आप आप।

टी०—जितना बड़ा वह परमेश्वर आप है, वह आपही अपनी महिमा को जानता है। दूसरा जीव कोई भी नहीं जान सका है।

मू०—नानक नदरी कर्मी दात ।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं, वह परमेश्वर अपनी नदर यानी दृष्टि से ही सब जीवों को कर्मानुसार भोग को देता है। इसवास्ते परमेश्वर में कोई भी दोष नहीं आता है । एक ग्राम में एक निर्धन बनिया रहता था। एक दिन एक महात्मा उस ग्राम में आए। बनिये ने उनको भोजन कराया। महात्मा को उस पर दया उपजी। महात्मा ने एक पारस उस बनिये को देकर कहा, इसके साथ लोहा छुआने से सोना हो जाता है। इसको तुम छः महीने तक रक्खो और जितना सोना तुमसे बनाया जाय बना लेना। छः महीना के पीछे हम आकर अपना पारस ले लेंगे। ऐसा कहकर और उसको पारस देकर महात्मा चले गए। दूसरे दिन वह बनिया बाजार में लोहा लेने गया। तब लोहे का भाव कुछ तेज हो गया यानी आठ सेर का सात सेर हो गया। उसने कहा कुछ सस्ता हो जायगा तब खरीदेंगे। फिर तीसरे दिन जो खरीदने गया तब और कुछ तेज हो गया। फिर उसने कहा कल खरीदेंगे। इसी तरह लोहा नित्य ही तेज होता गया और वह सस्ते होने की उम्मेद पर ही रहा। इसी तरह छः महीने बीत गए इतने में महात्मा आ पहुँचे। उस बनिये से कहा हमारा पारस दे। उसने निकाल कर दे दिया। तब पूछा, कितना सोना तुमने बनाया है ? उसने कहा लोहा महँगा होता चला गया और मैं उसके सस्ते होने की उम्मेद पर ही रह गया। महात्मा ने कहा अब तुम्हारे घर में कुछ लोहा है ? जब उसने खोजा तो एक लोहे की सुई निकली उसको ले आया। महात्मा ने उसके साथ पारस को छुआया। वह सोने की हो गई। तब कहा देख अगर एक रुपये का तोला भर भी लोहा हो जाता तब भी तुमको नफा था। परंतु तुम्हारे भाग्य में द्रव्य नहीं लिखा है। कैसे तुमको मिले। इसी पर भर्तृहरिजी ने कहा भी है—

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।

धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥

करीर के वृक्ष में यदि वसंतऋतु में पत्ते नहीं निकलते हैं तब इसमें वसंतऋतु का क्या कसूर है ? यदि दिन में उल्लुकों को नहीं दिखाता है, तब सूर्य का क्या क़सूर है ? चातक के मुख में यदि मेघ की बूँद नहीं गिरती है तब मेघ का इसमें क्या क़सूर है ? जो विधाता ने जन्मांतर के कर्मों के अनुसार जन्मकाल में लिख दिया है, उसके हटाने में कौन समर्थ है ? किंतु कोई भी नहीं है । शुक्रनीति में भी लिखा है—

प्राक्कर्मफलभोगार्हा बुद्धिः सञ्जायते नृणाम् ।
पापकर्मणि पुण्ये वा कर्तुं शक्तो न चान्यथा ॥
बुद्धिरुत्पद्यते तादृक् यादृक् कर्मफलोदया ।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥

पूर्वले कर्मों के अनुसार ही पुरुषों की बुद्धि कर्मों के फल के भोगने में उत्पन्न होती है । पुण्यकर्म अथवा पापकर्म को पूर्वले कर्मों के अनुसार पुरुष कर्त्ता है । अन्यथा नहीं कर सकता है । जैसा कर्मों का फल होना होता है, वैसी पुरुष की बुद्धि भी उत्पन्न होती है । जैसी होनी होती है वैसे ही उसके सहायक भी हो जाते हैं इसी पर गुरुजी ने कहा है, कर्मों के अनुसार परमेश्वर अपनी नज़र से याने सत्ता से कर्मों जीव को फल देता है । अथवा कर्मी जो जीव जब परमेश्वर की तरफ़ नजर करता है अर्थात् उसको अपना स्वामी जानता है तब परमेश्वर उसको अपनी भक्ति को देता है अन्यथा नहीं देता ।

मू०—बहुता कर्मु लिखिआ ना जाइ ।
वडा दाता तिलु न तमाइ ॥
केते मंगहि जोध अपार ।
केतिआ गणत नहीं वीचारु ॥

'केते खपतुटहि वेकारु ।
केते लैलै मुकरुपाहि ॥
केते मूरख खाही खाहि ।
केतिश्रा दूख भूख सदमार ॥
एहिभी दात तेरी दातार ।
वंद खलासी भाणै होइ ॥
होरूआखि न सकै कोइ ।'
जेको खाय कुआखणहि पाइ ॥
ओहु जाणै जेतीआ मुहिखाइ ।
आपे जाणै आपे देइ ॥
आखहि सिभि केई केइ ।
जिसनो वपसे सिफति सालाह ॥
नानक पातिसाही पातिसाहु ॥ १५ ॥

फल—रविवार से चौदह दिन में इकीस हजार जपै तो बहुत धन प्राप्त हो, अगर पानी में जपै तो पाप दूर हो ।

मू०—वहुता कर्मु लिखआ ना जाइ ।

टी०—कर्म का अर्थ कृपा है । अर्थात् परमेश्वर की जीवों पर वहुत सी कृपा रहती है । जो लिखने में नहीं आती है । देखो जितनी वस्तु जीवों के जीवन का हेतु है वह सब परमेश्वर ने विनाही दाम के कर रक्खी है । जैसे वायु जव चलती है तव अमीर और ग़रीव सव को तुल्य ही सुख देती है । जो वायु एक क्षणमात्र भी वंद हो जाती है तो सवको वेचैनी वरावर ही होती है । जब वर्षा होती है, तो वह भी अमीर और ग़रीवों के घरों और खेतों में वरावर ही होती है । आकाश सवको अवकाश वरावर ही देता है । अग्नि का प्रकाश और

सूर्य चंद्रमा का प्रकाश भी सब पर बराबर ही होता है। ये सब वस्तुएँ जीवों के जीवन का हेतु हैं। सब जीवों को इनका बराबर मिलना ही ईश्वर की कृपा है। सब भोग कर्मों के अनुसार मिलते हैं। वह जीवन का हेतु नहीं हैं। ये ही जो पूर्व कहे हैं, सो जीवन के हेतु हैं। इनका बिना ही दाम से मिलना, ईश्वर की कृपा है।

मू०——वड़ा दाता तिलु न तमाय।

टी०——वह परमेश्वर बड़ा भारी दाता है; क्योंकि अपना तिलभर भी तमा किसी वस्तु के लेने का जीवों से नहीं रखता है। जो अनीश्वरवादी नास्तिक हैं, उनको भी जीवन के हेतुओं को और कर्मों के अनुसार भोगों को वह बराबर ही देता है। ये ही उसकी वेत्तमा और दयालुता है।

मू०——केते मंगेह जोध अपार।

टी०——संसार में कितने ही योधे याने अनंत सूरमें अपनी जय को माँगते हैं अथवा अपार युद्ध को माँगते हैं। सूरमें दो प्रकार के होते हैं। एक व्यवहार दृष्टि से, दूसरे परमार्थ दृष्टि से। जो संसार में राजा लोग दूसरों के देश लेने के वास्ते शत्रुओं की पराजय और अपनी जय को चाहते हैं वह व्यवहार दृष्टि से सूरमें हैं। जो काम क्रोधादिक रूप शत्रुओं को जय करना चाहते हैं, वह परमार्थ दृष्टि से योधे हैं। असली सूरमें वेही हैं; क्योंकि वह परमेश्वर की प्राप्ति के लिये कामादि के जीतने की इच्छा करते हैं।

मू०——केतया गणत नहीं वीचारु।

टी०——संसार में स्त्री, धन, पुत्रादि भोगों को माँगनेवाले इतने हैं जिनकी गिनती का कोई भी विचार नहीं कर सकता है; क्योंकि भोगों के माँगनेवाले अनंत हैं।

मू०——केते खपि तुटहि वेकार।

टी०——कितने ही जीव संसार में वाममार्गी, कौल मतवाले और

नास्तिक स्त्री भोग और मद्यपानादिक विषय विकारों में ही खप २ कर टूट कर मरते चले जाते हैं ।

प्र०—वाम मतवाले भी तो अपने को वैदिक बताते हैं और अपने मत में सिद्धियों को बताते हैं उनका मत वेद बाह्य कैसे है ?

उ०—उनका मत सर्वथा वेद बाह्य है, क्योंकि चारों वेदों के मंत्र भाग और ब्राह्मणभाग में कहीं भी मद्य का पान करना और मद्य पानवाले को सिद्धि नहीं लिखी है । और न किसी धर्म-शास्त्र तथा पुराण में ऐसा लिखा है । इनके मत में भग की पूजा और बीजमार्ग, चोली मार्गादि लिखे हैं । योनि की पूजा, वीर्य का पान, योनि का चरणामृत, किसी भी वेद-शास्त्र में नहीं लिखा है; बल्कि मदिरा, परस्त्रीगमन, जीवहिंसा इनका निषेध सब ग्रंथों में लिखा है । जो वाममार्गी कहते हैं यह मत महादेव का चलाया हुआ है, यह भी उनकी गप है; क्योंकि महादेवजी बड़े ज्ञानी और योगीराज हुए हैं। वह ऐसे भ्रष्ट मत को क्यों चलावेंगे ? यह आधुनिकों का चलाया हुआ है। उन्होंने अपने मत को प्रामाणिक करने के लिये अपने ग्रंथों में महादेवजी का नाम लिख दिया है । जिन बातों को धर्मशास्त्र ने लिखा है वह सब वामियों के यहाँ धर्म है और इनके मत में सिद्धि भी होनी कठिन है; क्योंकि सिद्धि का साधन ही इनके मत में कोई नहीं है । योगी को ही सिद्धियाँ लिखी हैं; क्योंकि विना योग के साधनों के कदापि सिद्धि नहीं होती है । फिर जब म्लेच्छों ने इस देश को खराब किया था और हज़ारों मंदिर तोड़ दिए थे और हज़ारों हिंदुओं को ज़बर-दस्ती मुसलमान कर दिया, उस काल में भी कशमीर वग़ैरह देशों में वाममार्गी बहुत से थे; क्यों न म्लेच्छों को किसी वाममार्गी ने सिद्धि दिखाई । जब कि ऐसे कष्ट में भी किसी ने सिद्धि न दिखाई तब इनके मत में सिवाय विषय भोग के और कौन सी सिद्धि है ? फिर इदानींकाल में भी बंगाल, तिरोहित वग़ैरह देशों में हज़ारों वाममार्गी हैं और उन्हीं देशों में बहुत से राजा बाबू धनियों को लड़का नहीं होता है और एक लड़के के लिये लाखों रुपया वह देते हैं और कोई

भी वाममार्गी नहीं कर सक्ता है । इससे भी इनकी सिद्धियाँ झूठी हैं । फिर प्रायःकरके देवियों के पुजारी निर्धन हैं और शाक्तिक भी कहाते हैं । जिनको धनादि की प्राप्ति भी किसी तरह से नहीं हो सक्ती है तब और सिद्धि की कौन आशा है ? कुलार्णव तंत्रमें वाम कौल मत में सिद्धियों का भी खंडन किया है—

बहवः कौलिका धर्मा मिथ्याज्ञानविडम्बकाः ।
स्वबुद्ध्या कल्पयन्तीत्थं पारम्पर्यविवर्जिताः ॥

बहुत से जो कौलों के धर्म हैं, यह केवल मिथ्या अज्ञान से फैले हुए हैं । परंपरा से रहित होकर अपनी बुद्धि से कल्पना करते हैं ।

मद्यपानेन मनुजा यदि सिद्धिं लभन्ति चेत् ।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं यान्तु समीहिताम् ॥

मद्यपान करके यदि मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जायँ तब फिर जितने मद्यपान में प्रीतिवाले हैं सब अपनी मनमानी सिद्धियों को प्राप्त हो जायँ; पर होता कोई भी नहीं है ।

मांसभक्षणमात्रेण यदि पुण्यगतिर्भवेत् ।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्यवन्तो भवन्ति च ॥

यदि मांस के भक्षणमात्र से उत्तम गति हो जाय तो लोक में जितने मांस खानेवाले हैं, सभी पुण्यवाले होजायँ । ऐसा तो नहीं होता ।

स्त्रीसम्भोगेन देवेशि यदि मोक्षं व्रजन्ति चेत् ।
सर्वेऽपि जन्तवो लोके मुक्ताः स्त्रीनिषेवकाः ॥

महादेवजी कहते हैं हे देवेशि ! यदि स्त्री-संभोग करके मोक्ष को जीव प्राप्त होते हों तो संसार में सब स्त्री-लंपट मुक्त होजाने चाहिए । तात्पर्य यह है, मद्यपान, परस्त्रीगमन और मांस का भक्षण करना ये तीनों ही अधर्म का मूल हैं । अधर्म से कदापि सिद्धि नहीं होती है । सिद्धि के लोभ से बहुत से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि विषय भोगों में खप २ करके जन्म को व्यर्थ खोते हैं ।

मू०—केते खै लै मुकरुपांहि ।

टी०—इस संसार में वहुत से जीव ऐसे भी हैं जो लोगों से द्रव्य को उधार लेकर फिर देने के समय मुनकिर होजाते हैं ।

दृष्टांत—एक ग्राम में एक धर्मशाला में एक भाई रहता था। उसने धीरे २ कुछ रुपया जमा किया । एक जाटने उसको व्याज का लोभ देकर सब रुपया उससे ले लिया। जब वह माँगे, तब न देवे और यही कहे, केते लैलै मुकरुपाहि । तब आगे से भाई कहे ।

मू०—केते मूर्खखाहीखाहि ।

टी०—अर्थात् केते मूर्ख लोग लोगों से द्रव्य ठग २ करके खातेही रहते हैं । जो परलोक की तरफ़ से मुखको फेर कर लोगों को ठगकर खावे, उसी का नाम मूर्ख है। इसी में एक दृष्टांत को कहते हैं । एक ग़रीब पंडित विदेशमेंकमाने के लिये गया। बहुत दिन तक रहा, परंतु कहींसेभीउसको कुछ न मिला । तब वह निराश होकर वहाँ से चल पड़ा। रास्ते में एक मायावी पुरुष उस को मिला। पंडित से हाल पूछा। पंडित ने अपना सब हाल कहा । तब उस मायावी पुरुष ने पंडित से कहा अब तुम हमारे साथ चलो हम तुमको बहुत सा लाभ करावेंगे। दुनिया मूर्ख है, विना पाखंड से नहीं फँसती। वह पंडित को साथ ले आया। एक चेला उसके साथ पहले ही था। नगर के समीप आकर पंडित से कहा तुम नगर में जाकर ऐसे मंदिर में ठहरो जहाँ पर बहुत से लोग आते हों; परंतु कभी भी किसी से सवाल नहीं करना। अपने चेले से कहा तुम कहीं दूर जाकर ठहरो और आप श्मशान के रास्ते में नदी के समीप ठहरा। दिन में कुछ भी न खाना । कोई कुछ रख जावे, कोई ले जावे, निगाह उठाकर नहीं देखना । चेला चार रोट बनाकर चोरी से आधीरात को देजाय वही चुपके से खा ले । कभी २ पंडित भी रात्रि को उसके पास घड़ी आधी घड़ी आवें । इधर तो इतनी सिद्धी उड़ी कि बाबाजी बिलकुल कुछ नहीं खाते हैं। उधर पंडितजी का महत्त्व बढ़ा कि कभी भी किसी से याचना नहीं करते हैं । एक रात्रि को जब पंडित उसके पास आए तब उसने पंडित से कहा कल

तुम साँस बंद करके झूठे ही मर जाना। जब यहाँ पर तुमको लावेंगे तब हम तुम पर जल छींट कर तुमको जिला देंगे। फिर तुम इसी जगह में रह जाना। दूसरे दिन पंडित ने वैसे ही किया। लोगों ने जाना मर गया है। तब लोग उसको तख़्ते पर धर कर श्मशान ले गये। रास्ते में उसी तपस्वी ने पूछा क्या है? लोगों ने कहा एक अयाचक बड़ा संतोषी ब्राह्मण मर गया है। उसने कहा यहाँ पर इस मुर्दे को धर दो लोगों ने धर दिया। उसने झूठे ही होठ फड़का कर कुछ पढ़ कर पानी उस पर छींट दिया। वह पंडित उठ बैठा। नगर में तो तपस्वी की सिद्धि का बड़ा शोर हुआ। राजा भी उसके पास गए और हाथ जोड़ कर कहने लगे, महाराज कुछ सेवा फरमाओ। उन्होंने कहा दस हज़ार रुपया इस ब्राह्मण को दो और पाँच हज़ार इसको दो जो कि चेला बना था। राजा ने उसको दे दिया और कहा महाराज कुछ अपने वास्ते भी हुक्म करो। तब कहा एक लाख रुपया हमारे लिये देवो तीर्थ में मंदिर बनवावेंगे। राजा ने दे दिया। तीनों लेकर चले आए इस तरह से मूर्खों से मूर्ख लेकर खाते हैं।

प्र०—राजा कैसे मूर्ख हुआ।

उ०—जिस वास्ते उसको यह वार्ता नहीं फुरी जो मारना और जिलाना विना परमेश्वर के दूसरे के हाथ में नहीं है। तुलसीदास जी ने कहा भी है—

दोहा।

सुनहु भरत भावी प्रवल, विलखि कही मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधिहाथ॥

ये सब परमेश्वर के ही हाथ में हैं। दूसरे के नहीं हैं। इस वास्ते राजा भी मूर्ख था।

दृष्टांत—एक पुरुष नदी पर स्नान करने को गया। उसके पास बीस रुपया था। वहाँ पर एक आदमी ठाकुर पूजा करता था। उससे उसने कहा, थोड़ी देर तक आप मेरे इस बीस रुपये को रखिये। मैं

स्नान कर लूं । उसने लेकर रख लिये । जब वह स्नान कर चुका तब उसने उससे रुपया माँगा । उसने कहा हिसाब करो उसने कहा हिसाब कैसा ? उसने कहा रुपये कैसे ? आपस में झगड़ा होने लगा । तब बहुत से लोग जमा हो गए । लोगों ने कहा जरा इसका हिसाब तो सुनो उसने कहा जिस काल में इसने हमको रुपया देकर नदी में गोता लगाया, हमने जाना डूब गया । तब पाँच रुपया एक आदमी को देकर इसके घर भेजा । फिर जब इसने शिर बाहर निकाला तब पाँच रुपया एक आदमी को देकर इसके घरमें खुशी की खबर भेजी और पाँच रुपया बधाई का बाँटा । पाँच बाक़ी रहे, उसका टीप लिखा ले । रुपयावाले ने कहा सब भर पाए । संसार में ऐसे २ भी मूर्ख हैं, जो लोगों के द्रव्य को इस तरह से लेकर मुनकिर और ही खाते रहते हैं । बैताल कवि ने मूर्ख का लक्षण भी कहा है—

छप्पय—बुधि बिन करे बपार, दृष्टि पर नाव चलावे ।
सुर बिन गावे गीत, अर्थ बिन नाच नचावे ॥
गुन बिन जाय बिदेश, अकल बिन चतुर कहावे ।
बल बिन बाँधे युद्ध, होश बिन हेत जनावे ॥
अन इच्छा इच्छा करे, अनदीठी बातें कहे ।
बैताल कहै बिक्रम सुनो, ये मूरख की जात है ॥

मू०—केतीयादुखभूखसदमार ।

टी०—इस संसार में कितने जीव ऐसे भाग्यहीन हैं जो सदैव भूख के दुःख से मारे २ फिरते हैं । कष्टों में भूख को भारी कष्ट लिखा है ।

आदौ रूपविनाशिनी कृशकरी कामस्य विध्वंसिनी ।
ज्ञानोच्छेदकरी तपःक्षयकरी धर्मस्य निर्मूलिनी ॥
पुत्रभ्रातृकलत्रभेदनकरी लज्जाकुलच्छेदिनी ।
सा मां पीडति सर्वदोषजननी प्राणापहारी क्षुधा ॥

एक क्षुधातुर पुरुष कहता है, यह क्षुधा प्रथम तो चेहरे के रूप का नाश करती है, फिर शरीर को कृश करती है; फिर काम का नाश करती है, फिर ज्ञान का भी नाश करती है, क्योंकि क्षुधातुर पुरुष की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती है, फिर तपस्वी के तप का भी नाश करती है और धर्म का भी नाश करती है; क्योंकि क्षुधातुर पुरुष को धर्म अधर्म का भी ज्ञान नहीं रहता है, और पुत्र, भ्राता, स्त्री आदि में भी परस्पर विरोध को उत्पन्न करती है और कुल की लज्जा का भी नाश करती है सो क्षुधा संपूर्ण दोषों के उत्पन्न करनेवाली मेरे को पीड़ा करती है, जो प्राणोंका भी नाश करनेवाली है।

पितृमातृगुरुभ्रातृपुत्रमित्रकलत्रकम्।
क्षुधातुरो हिनस्त्यत्र निर्घृणो राक्षसो यथा ॥

पिता, माता, गुरु, भ्राता, पुत्र, मित्र, स्त्री इन सबको क्षुधातुर पुरुष मारता है। जैसे निर्दयी राक्षस जीवों को मारता है।

सत्यं शौचं श्रियो धैर्यं बलं वीर्यं पराक्रमम्।
यशोधर्मादिकांश्चान्यान्गुणान्हन्ति क्षुधा क्षणात्॥

सत्यभाषण, शौच, लक्ष्मी, धैर्यता, बल, वीर्य और पराक्रम तथा यश और धर्मादि सब गुणों को क्षुधा एक क्षणमात्र में नाश कर देती है। क्षुधा दरिद्रता से होती है। इसी वास्ते दरिद्रता की निंदा किया है।

हे दारिद्र्य नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं न मां पश्यति कश्चन ॥

हे दारिद्र्य ! तुम्हारे प्रति नमस्कार हो; क्योंकि मैं तुम्हारी कृपा से अब सिद्ध होगया हूँ। मैं तो संपूर्ण जगत् को देखता हूँ; परंतु मुझे कोई भी नहीं देखता है। ऐसे एक दरिद्री पुरुष दरिद्र से कहता है, सो ठीक कहता है। संसार में अनंत ही पुरुष जन्मान्तर के पापों के फल से दरिद्री होकर सदैवही मारे-मारे पड़े फिरते हैं।

मू०—एहिभी दात तेरी दातार।

टी०—गुरुजी कहते हैं, हे दातार परमेश्वर ! ये दरिद्रता और

भूखा रहना जीवों को कर्मों के अनुसार तुम्हारे ही दिए हुए हैं; क्योंकि कर्मों का फल प्रदाता तुमही हो।

मू०—बन्दि खलासी भाणै होय।

टी०—परमेश्वर की आज्ञा से ही कर्मों के अनुसार जीवों को बंध मोक्ष भी होती हैं। तात्पर्य यह है, सकाम कर्मों के करनेवालों को सदैवही जन्म मरणरूपी बंधन रहता है और निष्काम कर्मों के करने से अंतःकरण की शुद्धि द्वारा मोक्ष होती है। सो कर्मों के फल को जाननेवाला फल प्रदाता ईश्वर ही है। दूसरा कोई भी जीव नहीं जान सक्ता है। इसी वास्ते गुरुजी ने कहा है, उस परमेश्वर के भाणे से याने आज्ञा से ही होती है।

मू०—होरु आपिन सकै कोइ।

टी०—और कोई भी ऋषि मुनि वगैरह कर्मों के फल को याने बंध मोक्ष को नहीं कह सक्ता है। तात्पर्य यह है, जितने संसार में ज्ञानी अज्ञानी मरते हैं किसी का भी पता किसी जीव को नहीं लगा है कियह मरकर स्वर्ग में गया है या नरक में ? या यह मुक्त हुआ है ? पता तब लगे यदि कोई आकर कहे कि मै नरक को गया हूँ या स्वर्ग को गया हूँ या मुक्त हुआ हूँ। ऐसा तो कोई भी आकर नहीं कहता है। और न पूर्व किसी ने आकर कहा है। केवल अनुमान प्रमाण से ही सब जाना जाता है। जैसे कोई राजा का भृत्य अच्छा काम करता है, तब राजा उसको अच्छा दरजा देता है। जो खराब काम करता है, राजा उसको कैद करता है। वैसे ही परमेश्वर भी अच्छे कर्मों के करनेवालों का उत्तम धनियों के गृहों में जन्म करता है। वह सुख भोगते हैं। और निषिद्ध कर्मों के करनेवालों का जन्म नीच जातिवालों के गृहों में या निर्धनों के घरों में कर देता है। वह दुःख ही भोगते हैं। इसी अनुमान से कर्मों का फल और ईश्वर की न्यायकारिता साबित होती है। अनुभव करके कोई भी जीव उसको नहीं जान सक्ता है। ऐसा ही शास्त्रों में भी लिखा है।

सर्वाधारो निराधारः सर्वपोषक ईश्वर
प्राणादिप्रेरकत्वेन जीवने हेतुरेव च ।
सर्वकर्ता तथा पाता हर्ता सर्वत्रगो हरिः ।
सर्वानुस्यूतरूपश्च सर्वाधिष्ठानमेव च ॥

वह परमेश्वर सारे जगत् का आधार याने आश्रय है और आप निराधार है । फिर सबका पोषण करनेवाला है । सबका स्वामी है । प्राणों का प्रेरक होने से सबके जीवन का हेतु भी है । फिर सबका कर्ता है । सबका रक्षक है । सबका हरण करनेवाला भी है । सर्वत्र व्यापक भी है । फिर सबमें अनुस्यूतरूप है, याने पूर्ण है । और सबका अधिष्ठान भी है ।

मू०—जेकोखायकुआखणिपाय ।

टी०—जेको खाय यदि कोई कर्मों के फल को खाय, याने भोगे और कुआखणपाय अर्थात् कुतर्क करके कहे, मैं तो अपने कर्मों का फल भोगता हूँ, इसमें ईश्वर का मेरे पर कौन अहसान है । इस तरह की कुतर्कों को करे तब ।

मू०—ओ जाणैजेतीयाँमुँहखाहि ।

टी०—उन कुतर्कों के फल को वही जानता है; क्योंकि मरके उसकी जो अधोगति होती है और उसको जो दुःख होता है उन तर्करूपी कर्मों के फल की प्राप्ति को वही कुतर्की जानता है; क्योंकि जेतीयाँ मुँह खाय अर्थात् जितनी सजायें उसके मुख पर पड़ती हैं और जो-जो उसको कुतर्करूपी पापों का फल भोगना पड़ता है, उसको वही नास्तिक ही जानता है ।

मू०—आपेजाणेआपे देइ ।

टी०—वह परमेश्वर आपही जीवों के कर्मों को और उनके फल को जानता है और आपही जीवों को कर्मों के फल देता है । तात्पर्य यह है, जीव सब अल्पज्ञ हैं और परतंत्र हैं । कर्म सब जड़ है । जड़

को फल देने की सामर्थ्य नहीं होती है। परतंत्र अल्पज्ञ को भी अपने कर्मों के फल को भोगने की सामर्थ्य नहीं होती है। इसलिये कर्मों के फल का दाता, जो ईश्वर है, वह कर्मों के स्वरूप को और उनके फल को जानता है और देता है।

मू०—आखहिसिभिकेइकेइ।

टी०—आखहि सभी अर्थात् सभी ऋषि मुनि आदि इस वार्ता को कहते भी हैं कि परमेश्वर ही कर्मों के अनुसार सबको फल देता है। तो भी केइ केइ याने कोई-२ जो ईश्वरवादी हैं, वह इस वार्ता में पूरा विश्वास रखते हैं कि ईश्वर ही फलप्रदाता है और जो सांख्य तथा मीमांसकादि अनीश्वरवादी अर्द्धनास्तिक हैं वह पूरा विश्वास नहीं रखते हैं। जो इदानीं काल में नवीन नास्तिक खपरोंवाले हैं और जो अनीश्वरवादी हैं वह इस वार्ता में विश्वास नहीं करते। इसी से वह पाप कर्मों को ही करते हैं और उनके फल को भोगते हैं और भोगेंगे।

मू०—जिसनोवखसेसिफतिसालाह।

टी०—जिस आस्तिक विश्वासी पुरुष को परमेश्वर संसार में यश पाने की वखशीश कर देता है।

मू०—नानकपातसाही पातिसाह।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं, वह पुरुष बादशाहों का भी बादशाह याने चक्रवर्ती राजा हो जाता है। जो परमेश्वर अपनी कृपादृष्टि से बड़े २ पापियों को भी महान् पदवियों को दे देता है, उस परमेश्वर को विसारकर भोगों में लंपट हो जाते हैं, उनसे बढ़कर और कौन मूर्ख होगा; किंतु कोई भी नहीं होगा। इसलिये सदैव ही उसका स्मरण करना चाहिए। नहीं तो पश्चाताप करता ही खाली हाथ चला जायगा। इसी पर एक कवि ने भी कहा है—

कवित्त—पूर्व की कमाई सो तैं पश्चिम में ही बैठ खाई,
आगरे की खेप तैंने कवहूँ न चलाई है।

दिल्ली के दलालों ने सौदा सो खराब कीनों,
पटयाले की लूटसे जगादरी नें पाई है ॥
संगी और साथी तेरे नित्यही लाहोर के,
सहारन के रस्ते से हरिद्वार जाई है।
धूमराय ग्रीव कहैं तजो वैरो वाल,
चित्त अमृतसर में लगाई है ॥

मू०—अमुल गुण अमुल वापार।
अमुल वापारीये अमुल भंडार ॥
अमुल आवहि अमुल लेजाहि।
अमुल भाइ अमुल समाहि ॥
अमुल धर्मु अमुल दीवाणु।
अमुल तुलु अमुल परवाणु ॥
अमुल बखशीश अमुलु नीसाणु।
अमुलु कर्मु अमुलु फुरमाणु।
अमुलो अमुलु आखियाना जाइ।
आखि आखि रहे लिवलाय ॥
आखहि वेद पाठ पुराण।
आखहि पडहि करहि वख्याण ॥
आखहि वरमे आखहि इन्द।
आखहि गोपी ते गोविंद ॥
आखहि ईश्वर आखहि सिद्ध।
आखहि केते कीते बुध ॥

आखहि दानव आखहि देव ।
आखहि सुरनर मुनिजन सेव ॥
केते आखहि आखण पाहि ।
केते कहि कहि उठि उठि जाहि ॥
एते कीते होर करेहि ।
ता आखि न सकहि केई केइ ॥
जे वडु भावै ते वडु होइ ।
नानक जाणै साचा सोइ ॥
जेको आखै वोलु विगाडु ।
ता लिखीयै सिरगावारागावारु ॥

फल—२१ दिन में पाँच हजार सूरज के सामने जपै रविवार मे तो स्वर्ग को जाय ।

और जो दोपहर को एक सौ एक वार जपै तो रागी होवे ।

अमुल गुण अमुल वापार ।

टी०—उस परमेश्वर में जो दयालुता आदि गुण हैं, वह भी अमुल याने अलौकिक हैं । उसके जो उत्पत्ति प्रलयादि व्यापार हैं, वह भी अलौकिक हैं । जीवों की बुद्धि उसके गुणों और व्यापारों में दखल नहीं कर सकती है । अथवा परमेश्वर की भक्तिरूपी जो गुण है, वह अमुल है अर्थात् विना ही मोल के मिल सकती है । उस भक्ति करने में जो व्यापार है, शम, दम, समतादिरूपी क्रिया, वह भी अमुल है । याने विना ही मोल के सब किसी को मिल सकता है । क्या इस संसार में विना परमेश्वर की भक्ति के कोई भी निर्भय हो सकता है ? कोई भी पाप से तथा मृत्यु से बच सकता है ? कदापि नहीं । इस वास्ते सब जीव याने मनुष्यमात्र पाप से और भय से तथा मृत्यु से युक्त हैं । उस पाप से और मृत्यु के भय से छूटने के लिये मनुष्यमात्र को ईश्वर

की भक्ति करनी चाहिए। वह परमेश्वर कैसा है ? वह दयालु और न्यायकारी है और दुःख का हर्ता, सुख का दाता है। फिर वह शत्रु मित्र में सम है और पतितपावन अर्थात् बड़े २ पतितों को भी वह पवित्र करनेवाला है, वह अपने भक्त शरणागत की रक्षा करनेवाला है, उसी की शरण को प्राप्त होकर पुरुष मृत्यु के भय से छूट जाते हैं। इसलिये विना ही मोल के जो उसका भक्तिरूपी गुण मनुष्यों को प्राप्त होता है, उस गुण को पुरुष क्यों नहीं प्राप्त होते हैं ? उसको अवश्य ही प्राप्त करना चाहिए।

मू०—अमुल वापारीये अमुल भंडार।

टी०—उस परमेश्वर के नाम के जो व्यापारी भक्तजन हैं वह भी अमुल हैं याने अलौकिक हैं। इतर प्राकृत साधारण पुरुषों की तरह वह नहीं है और उनके व्यापार के जो खजाने हैं अर्थात् उनके पास नाम के व्यापार के जो खजाने हैं वह भी अमुल हैं। अर्थात् विना ही मोल के उन खजानों को लोकों के प्रति देते हैं।

मू०—अमुल आवहि अमुल लै जाहि।

टी०—परमेश्वर के प्यारे जो भक्त हैं वह अमुल आवहि अर्थात् अलौकिक रूप को धारण करके संसार में जीवों के उद्धार के लिये वह आते हैं। अमुल लै जाहि अर्थात् परमेश्वर के भक्तिरूपी अलौकिक पदार्थ को और यश को संसार से साथ लेकर जाते हैं।

मू०—अमुल भाय अमुला समाहि।

टी०—भाय नाम प्रेम का है। सो परमेश्वर में जो प्रेम है वह भी अमुल याने विना ही मोल के मिलता है। अथवा अलौकिक प्रेम है। अर्थात् प्राकृत पुरुषों के प्रेम की तरह नहीं है। या स्त्री पुत्रादि में जो प्रेम है उसकी तरह व्यभिचारी प्रेम नहीं है। जैसे स्त्री पुत्रादि अनित्य हैं, वैसे उनमें प्रेम भी अनित्य है। जैसे परमेश्वर नित्य है, वैसे उसमें प्रेम भी नित्य है। उसका फल भी मोक्षरूपी नित्य है। इसी वास्ते वह प्रेमी भक्तजन अमुल में याने अलौकिक व्यापक चेतन में ही मर के समाय याने समा जाते हैं। लीन हो जाते हैं।

प्र०—जब परमेश्वर की भक्ति विना ही मोल के सब पुरुषों को मिल सकती है, तब सब संसारी पुरुष उसको क्यों नहीं लेते हैं ?

उ०—यह सब मोह की महिमा है। जो उत्तम विना मोल की वस्तु को न लेना और दुःखरूप मिथ्या पदार्थों को बड़े मोल देकर खरीदना। सो कहा भी है—

अहो मोहस्य माहात्म्यं यत्स्वरूपमतिस्फुटम्।
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति यतमाना अबुद्धयः॥

इस मोह की महिमा बड़ी-अपूर्व है, जो परमेश्वर की सत्ता को सर्वत्र जीव स्पष्ट देखते हुए भी नहीं देखते हैं। बुद्धिहीन पुरुष यत्न करते हुए भी नहीं देखते हैं।

अब भक्ति के महत्त्व को दिखाते हैं—

अहो हरिपदाम्भोजभक्तेर्माहात्म्यमुत्तमम्।
अनिच्छन्तोऽपि पश्यन्ति यत्स्वरूपं महत्तमः॥

परमेश्वर की भक्ति का माहात्म्य भी बड़ा आश्चर्यरूप है और अति उत्तम है। भक्त लोग जिसके देखने की इच्छा भी नहीं करते हैं, उस महान् सच्चिदानन्दरूप को सर्वत्र व्यापक को पड़े देखते हैं। जैसे पिता पुत्र के सुख के लिये सुख की सामग्री को संपादन करता है, वैसे ही हमारे लोगों के सुख के लिये दयालु पिता ने संपूर्ण सुख देनेवाली चीजों को उत्पन्न किया है। फिर भी हम लोग उस परमेश्वर का भजन और स्मरणादि नहीं करते हैं। केवल मोह के वश में होकर ऐसा करते हैं। सर्व पुरुषों को उचित है कि वह मोह त्यागकर उसका स्मरण करता रहे। वही अलौकिक गुणोंवाले परमेश्वर को प्राप्त होता है।

मू०—अमुलु धर्मु अमुलु दीवाणु।

टी०—उस परमेश्वर के जो धर्म हैं वह भी अमुल याने अलौकिक हैं। उसका जो दीवाण याने दरबार है, जहाँ पर बैठकर जीवों के कर्मों को देखता है वह भी अलौकिक है। अर्थात् जीवों की बुद्धियों

की गम्य नहीं है, जो वहाँ तक पहुँच जायँ। अथवा परमेश्वर ने जो हम लोगों के कल्याण के लिये वेद में धर्म कहे हैं, कर्म उपासना ज्ञानरूपी वह भी हम लोगों को विना मोल के प्राप्त हो सकते हैं और उन धर्मों के दीवाण यानि देनेवाले आचार्य भी हम लोगों को विना ही मोल के मिल सकते हैं अथवा ईश्वर की प्राप्ति के साधनरूप जो धर्म मनु आदि ऋषियों ने हमारे कल्याण के लिये अपने स्मृतिरूप ग्रंथों में लिखे हैं वे हम लोगों को विना ही मोल के मिल सकते हैं।

प्र०—मनु आदि ने कौन से धर्म हम लोगों के लिये लिखे हैं उनको भी कहना चाहिए।

उ०—मनु आदि ऋषियों ने सामान्य विशेष भेद करके दो प्रकार के धर्म कहे हैं। जो दश लक्षणों करके लक्षित धर्म है उसी का नाम सामान्य धर्म है सो दिखाते हैं—

तथा च मनुः।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धैर्यता, क्षमा, इन्द्रियों का दमन, चोरी न करना, पवित्र रहना, मन का निग्रह करना, ईश्वर संबंधी ज्ञान होना, विवाद से रहित विद्या होनी, सत्य भाषण करना, क्रोध से रहित होना ये दश लक्षण सामान्य धर्म के हैं। याज्ञवल्क्यसंहिता में भी कहा है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥

किसी जीव की भी हिंसा न करनी, सत्य भाषण, चोरी का अभाव और अंतर बाहर से पवित्र होना, इंद्रिय निग्रह करना, यथाशक्ति दान देना, सब जीवों पर दया करनी, क्षमा होनी, संपूर्ण वर्णाश्रमों के लिये ये धर्म के साधन हैं और तुल्य धर्म है अर्थात् मनुष्यमात्र का इनमें अधिकार है। अब प्रत्येक वर्णाश्रमी के विशेष धर्मों को दिखाते हैं। मनुः—

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ।
वार्ताकर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥

वेद का अभ्यास करना ब्राह्मण का धर्म है। प्रजा की रक्षा करनी क्षत्रिय का, व्यापार करना वैश्य का धर्म है। अपने २ धर्म में स्थित हुए ही ये सब श्रेष्ठ कहे जाते हैं; क्योंकि इनके लिये ये विशेष धर्म हैं। अब वर्ण के विशेष लक्षण को कहते हैं। शुक्रनीति प्रथमोऽध्यायः—

ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः।
शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणैस्तु गुणैः कृतः॥

ज्ञान और कर्म तथा उपासना करके जो देव परमात्मा के आराधन में प्रीतिवाला हो, शांत, दांत, दयालुता आदि गुणों करके जो युक्त हो उसी का नाम ब्रह्म है।

महाभारते

कामक्रोधाऽनृतद्रोहलोभमोहमदादयः।
न सन्ति यस्मिन् राजेन्द्र तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह, झूठ, द्रोह, लोभ, मोह, मदादिक ये सब जिसमें नहीं हैं, उसी का नाम ब्रह्म है।

अन्यत्र।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

प्रजा की रक्षा करनी, दान देना, वेद का अध्ययन, पूजन करना, विषयों में आसक्तचित्त न होना, ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदञ्च वैश्यस्य कृषिमेव च॥

पशुओं का पालन, दान देना, पूजन करना, वेद का अध्ययन, व्यापार करना, ब्याज चलाना, ये सब वैश्य के कर्म हैं।

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥

और शूद्र के लिये एक ही कर्म प्रभु ने कहा है। असूया से रहित होकर चारों वर्णों की सेवा करनी ।

पराशर ।

गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ।
गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञा संपूज्यन्ते जनैर्द्विजाः ॥

जो ब्राह्मण गायत्री से रहित है, वह शूद्र से भी अशुचि होता है। जो गायत्री रूपी ब्रह्मतत्त्व को जाननेवाले हैं, वेही द्विज जनों करके पूजने योग्य होते हैं।

एकाहं जपहीनस्तु संध्याहीनो दिनत्रयम् ।
द्वादशाहमनग्निश्च शूद्र एव न संशयः ॥

जो ब्राह्मण एक दिन गायत्री मंत्र का जप नहीं करता है, तीन दिन संध्योपासन नहीं करता है, और बारह दिन अग्निहोत्र नहीं करता है, वह शीघ्र ही शूद्र हो जाता है।

यः शूद्र्या पाचयेन्नित्यं शूद्री च गृहमेधिनी ।
वर्जितः पितृदेवेभ्यो रौरवं याति स द्विजः ॥

जिस ब्राह्मण के घर में शूद्री ही नित्य पकाती है और वही घरवाली है, वह ब्राह्मण पितृकर्म और देवकर्म से रहित होकर नरक को जाता है।

मनुः ।

ब्रह्मनिष्ठो गृहस्थः स्याद्ब्रह्मज्ञानपरायणः ।
यद्यत् कर्म प्रकुर्वीत तत्तद्ब्रह्मणि समर्पयेत् ॥

गृहस्थ को ब्रह्मनिष्ठावाला और ब्रह्मज्ञान परायण होना चाहिये जो २ कर्म करे, सो ब्रह्म के ही समर्पण करे। ब्रह्मचर्य के ध संहिता में कहे हैं।

उपनीतो द्विजो वेदान्समधीतसमाहितः ।
दण्डं यज्ञोपवीतं च मेखलां च तथैव च ॥
कृष्णाजिनं कषायं च शुक्लं वा वस्त्रमुत्तमम् ।
धारयन्मंत्रतो विद्वान् स्वसूत्रोक्तेन वर्त्मना ॥

जिस काल में द्विजाति का उपनयन हो उसी समय से ब्रह्मचर्य को धारण करके वेदों का अध्ययन करे । एक दंड को और यज्ञोपवीत तथा मेखला तडागी को धारण करे । काले मृग के चर्म को, कषाय वस्त्र को या शुक्ल वस्त्र को मंत्र से धारण करे । इसी तरह बहुत से धर्म धर्मशास्त्र में ब्रह्मचर्याश्रम के लिये और गृहस्थाश्रम के लिये तथा संन्यासाश्रम के और वानप्रस्थाश्रम के लिये विधान किये हैं । स्त्रियों के लिये केवल पति की सेवा ही विधान की है । महाभारत के अनुशासनपर्व में महेश्वर के प्रति उमावाक्य—

पतिर्देवो हि नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ।
पत्यागतिसमानास्ति दैवतं वा यथा पतिः ॥

स्त्रियों का पति ही देवता तथा बंधु तथा गुरु है । पति से ही गति है । पति के तुल्य और दैव भी नहीं है । मनु आदि धर्मशास्त्रों में लिखा है स्त्री को देवपूजन और उपवास व्रतादि वगैरह भी नहीं करने चाहिए । विना पति की सेवा के जो स्त्री भर्त्ता की आज्ञा को उल्लंघन करके व्रतादि करती है वह नरक में जाती है । इसी तरह के धर्म स्त्रियों के लिये विधान किए हैं और पिता के लिये कहा है; चार वर्षों तक पिता पुत्र का लाड़ प्यार करे । फिर सोलह बरस तक पुत्र को गुणों से और विद्या से सुशिक्षित करे । फिर बीस से ऊपर घर के कामों में लगावे । अपने बराबर जाने । इसी तरह पुत्र के धर्मों को भी लिखा है । जब पुत्र पढ़ लिखकर सुशिक्षित हो जाय तब पिता की आज्ञा में रहे और माता पिता को ही देवतारूप, गुरुरूप, तीर्थ करके जाने । इस तरह के पुत्र के लिये भी अनेक प्रकार के धर्म ऋषियों ने विधान किए हैं । वह सब धर्म लोगों को बिना ही मोल

के मिल सकते हैं। अथवा महात्मा सज्जन पुरुषों के जो सत्य संतोषादि धर्म हैं, वह भी बिना ही मोल से मिल सके हैं। और अलौकिक हैं। इतर प्राकृत पुरुषों की तरह नहीं हैं। महात्मा के दीवाण जो दरबार हैं वह भी अलौकिक हैं। इतर प्राकृत पुरुषों की तरह नहीं हैं; क्योंकि महात्मा के दयालु स्वभाव होते हैं।

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।

नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि ॥

निर्गुण जीवों पर भी महात्मा साधु लोग दया करते हैं। चंद्रमा अपनी चाँदनी को चांडाल के गृह से हटा नहीं लेता है; किंतु प्रकाश ही करता है। वैसे महात्मा भी सब पर दया ही करते हैं।

दृष्टांत—एक महात्मा एक राजा के मिलने को जाते थे। रास्ते में दो चोरों ने आकर उनसे कहा, जो कुछ तुम्हारे पास हो सो दे डालो। महात्मा ने समझा, ये गरीब हैं, माँगते हैं। उन्होंने अपने ऊपर की चद्दर उनको दे दी। जब वह ले करके चले तब बुलाकर कहा, दो रुपया और भी हमारे पास हैं, इनको भी तुम ले जाओ और वहाँ पर राजा के नगर में हम से मिलना, कुछ राजा से भी तुमको दिलवावेंगे। चोर डर गए और चद्दर को फेंक कर भागे। महात्मा उनको पुकार २ कर कहते हैं, भाई डरो मत, ले जाओ। तुम्हारा काम चलेगा, आखिर चोर भाग ही गए। महात्मा पश्चात्ताप करने लगे। तात्पर्य यह है, महात्मा का चित्त अति कोमल होता है। उनके दया आदि धर्म भी अलौकिक हैं जो नीच पुरुष भी उनकी सभा में जाता है वह भी उत्तम बन जाता है। भाषा में एक कवि ने कहा है—

दोहा।

नीचहु उत्तम संग मिल, उत्तम ही ह्वै जाय।
गंग संग जल भील हूँ, गंगोदक के भाय ॥
जाहि बड़ाई चाहिये, तजे न उत्तम साथ।
यों पलास सँग पान के, पहुँचे राजा पास ॥

भले नरन के संग से, नीच ऊँच पद पाय।
जिमि पिपीलिका पुष्पसँग, ईशशीश चढ़जाय॥
तुलसी लोहा काठ सँग, चलत फिरत जल माहँ।
बड़े न डूबन देत हैं, जाकी पकड़े बाहँ॥
छप्पय। लियो नींब सत्संग भयो मलयागिरि चन्दन।
लोहा पारस परस दरस दरसत है कुन्दन॥
मिलैअ सुरसरी नीर निहचै सो गंगा।
मिश्री सों मिल वंश तुल्यो ताहू के संगा॥
लोहर यो नौका मिल साखी सकल सुन लीजिये।
साधुसंग-ते साधु ह्वै रामनाम रस पीजिये॥

तात्पर्य यह है, संतसभा में जाकर दुर्जन पुरुष भी संत हो जाते हैं।

मू०—अमुलतुल्य अमुल परवाण।

टी०—तुलनाम तराजू का है और परवाण नाम निश्चय का है अर्थात् महात्मा की बुद्धिरूपी जो तराजू है वह भी अलौकिक है और उनका जो परमेश्वर में निश्चय है वह भी अलौकिक है। तात्पर्य यह है, जैसा अधिकारी उनके पास जाता है, उसके निश्चय को अपनी बुद्धिरूपी तराजू पर तौलकर जिसमें उसकी रुचि होती है कर्म में या भक्ति में या उपासना में, वैसा ही उसको विना ही मोल के उपदेश करते हैं।

दृष्टांत—एक महात्मा के पास एक मूर्ख ने जाकर सवाल किया सब साधु लोग कहते हैं परमेश्वर सब जगह में विद्यमान है तब वह इन नेत्रों से क्यों नहीं दिखाता ? आप मेरे को इन नेत्रों से दिखा देवो। महात्मा ने उसको बहुत-सा युक्ति और प्रमाणों से समझाया; परंतु उसने एक न मानी और कहा मेरे को नेत्रों से दिखा दो। तब महात्मा ने एक पत्थर उठाकर उसके शिर पर मारा। उसका शिर फटा और रुधिर बहने लगा। तब वह राजा के पास फरयादी गया और

राजा से कहा, फलाने महात्मा से मैंने ऐसा सवाल किया। उन्होंने जवाब देने के बदले मेरा शिर फोड़ दिया है और मैं मारे दर्द के मरता हूँ। राजा ने महात्मा को बुलाकर पूछा। उन्होंने कहा, हमने इसके सवाल का जवाब दिया है। आपसे यह कहता है मारे दर्द के मेरी जान निकली जाती है। उस दर्द को हमको ये आँख से दिखा देवे तब हम भी इसको परमेश्वर को दिखा देवें। जैसे दर्द कोई वस्तु है, परंतु आँख से नहीं दीखता है तैसे परमेश्वर भी कोई है, परंतु आँख से दिखाई नहीं पड़ सकता है। राजा ने कहा ठीक है। महात्मा चले आए। तात्पर्य यह है महात्मा का उपदेश भी यथा-योग्य होता है।

मू०—अमुलवखसीसअमुलनीसाए।

टी०—महात्मा की वखसीश भी अलौकिक है और महात्माओं के जो नीसाए याने चिह्न हैं वह भी अलौकिक हैं। इतर प्राकृत-पुरुषों की तरह नहीं हैं। तात्पर्य यह है, संसार में जितने राजा बाबू हैं. वह यदि किसी पर प्रसन्न होंगे तब अनित्य पदार्थ जो हाथी घोड़ा या द्रव्यादिक हैं उनकी बखशीश करेंगे और जो महात्मा किसी पर प्रसन्न होंगे तब नित्य पदार्थ की बखशीश करेंगे। जिसका कभी भी नाश न होवे। महात्मा की पहचान के चिह्न भी अलौकिक हैं। इतर प्राकृत पुरुषों की तरह नहीं हैं। इसी वास्ते सकामी पुरुष उनको चीन्ह भी नहीं सकते हैं। वह पाखंडियों को ही महात्मा जानते हैं।

मू०—अमुल कर्म अमुल फुरमाए॥

टी०—महात्मा के कर्म भी अलौकिक हैं और उनकी फुरमाए जो आज्ञा है वह भी अलौकिक है; क्योंकि वह निष्काम हैं। धनादि पदार्थों की वह इच्छा नहीं करते हैं। केवल शरीरयात्रा के निर्वाह की इच्छा उनको रहती है और दूसरों के भले की इच्छा उनको होती है। ग्रंथों में महात्मा की पहचान के चिह्न भी लिखे हैं—

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते॥

जो अपने से उपकार करता है, उसके बदले में जो उपकार करता है उसमें साधुपने का कोई भी गुण नहीं है। जो अपकार करनेवाले पर भी उपकार करता है, वही साधु है।

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम्॥

संपदा में महान् पुरुषों का चित्त अत्यंत कोमल होता है और आपत्काल में पत्थर से भी कड़ा होता है॥

दग्धं दग्धं त्यजति न पुनः काञ्चनं कान्तिभावम्।
छिन्नं छिन्नं त्यजति न पुनः स्वादुतामिक्षुदण्डम्॥
घृष्टं घृष्टं त्यजति न पुनः चन्दनश्चारुगन्धम्।
प्राणान्ते न चलति प्रकृतिश्चोत्तमानां जनानाम्॥

चंदन अधिक घिसने से अपनी सुगंध को नहीं त्यागता है और इक्षु अधिक काटने से अधिक ही मीठे रस को देता है और स्वर्ण कितना ही जलाया जाय परंतु अपने कान्ति स्वभाव को नहीं त्यागता है, वैसे प्राणों के नाश पर्यंत महात्मा पुरुष अपने सत्यभाषणादि गुणों का त्याग नहीं करते हैं। विचारमाला में भी महात्माओं के चिह्न कहे हैं--

दोहा॥

अतिकृपालु नहिं द्रोह चित सहन शीलता सार।
शम दम आदि अकाम मति मृदुल सर्व उपकार॥
आतम वित जुअनीह शुचि निःकञ्चन गम्भीर।
अप्रमत्त मत्सर रहित मुनि तप शान्त सुधीर॥
जित षटगुण धृति मानकरि मानद आप अमान।
सत्यं प्रतीति अनीति गति करुणाशील निधान॥
अस्तुति निन्दा मित्र रिपु सुख दुख ऊँचरु नीच।
ब्रह्मा तृण अमृत गरल कञ्चन कांचन बीच॥

समदरसी शीतल हृदय गत उदवेग उदार।
सुच्छम चित्त सुमित्र जग चिद वपु निरहङ्कार॥

पूर्वोक्त लक्षणों करके युक्त जो महात्मा हैं उनका फुरमान जो आज्ञा है वह भी अलौकिक है। दंभियों की तरह नहीं है। जैसे दंभी ऊपर से महात्मा बनकर भीतर से वासना के मारे मकानों और तीर्थों के बहाने से लोगों से द्रव्य संग्रह कर लेते हैं। महात्मा ऐसा नहीं करते हैं।

मू०—अमुलोअमुलआख्यानजाय।

टी०—महात्माओं की क्रीड़ा भी अपूर्व से अपूर्व है। वह कुछ कही. नहीं जाती है। कोई तो एकांत में बैठकर योगाभ्यास करके परमेश्वर का ध्यान करते हैं और नाम का ही रटन करते रहते हैं। कोई ॐकार का ही चिंतन और जप करते हैं। इतर प्राकृत पुरुषों से विलक्षण है।

मू०—आखआखरहोलिवलाइ।

टी०—कोई २ महात्मा परमेश्वर के गुणों को वारंवार आख कर याने पुनः पुनः कथन करके उसी परमेश्वर में ही प्रेम को लगा रहे हैं कोई २ महात्मा उस परमेश्वर में ऐसी मन की वृत्ति को लगाते हैं जो उनको शरीर की भी कुछ खबर नहीं रहती है।

मू०—आखहिवेदपाठपुराण।

टी०—परमेश्वर की स्तुति को वेद अपने मंत्रों से कथन करता है और पुराणादि इतिहासों से कथन करते हैं। सो दिखाते हैं—

श्रुतिः

यः सर्व्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मात्तद्ब्रह्मनामरूपमन्नं च जायते॥

जो परमात्मा सामान्य से और विशेषरूप से सबको जानता है और जिसका ज्ञानरूप ही तप है, वही ब्रह्म है। उसी से नामरूप और अन्नादिरूप जगत् उत्पन्न होता है

स्मृतिः

अयं स भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः ।
तस्माद्धि जायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते ॥

परमेश्वर ही स्वयं प्रकाश और सनातन है । उस परमेश्वर से ही विश्व उत्पन्न होता है और फिर उसी में, प्रलयकाल में लय हो जाता है । इस तरह की अनेक श्रुति स्मृति उस परमेश्वर की स्तुति को कहते हैं । कठवल्ली में अग्नि-इंद्रादि देवताओं के अभिमान को तोड़ने के लिये जो ब्रह्म ने यत्तरूप को धारण किया था, इस तरह के इतिहासों से भी वेद में परमात्मा की स्तुति की है और पुराणों में तो परमेश्वर के अवतार प्रसिद्ध ही हैं । उनके इतिहासों से परमात्मा की स्तुति की है । अथवा वेद और पुराण अपने पाठों से महात्मा संतजन जो भक्त हुए हैं, उनकी स्तुति को करते हैं । वेदों में जनक, याज्ञवल्क्य आदि ज्ञानी भक्तों की कथा प्रसिद्ध हैं और पुराणों में अक्रूर, सुदामा आदि भक्तों की कथाएँ प्रसिद्ध हैं । उन कथाओं से ही वेद और पुराणादि भक्तों की स्तुति करते हैं ।

मू०—आखहि पडहि करहि विख्यान ।

टी०—उन वेद और पुराणों को पढ़कर लोग भी भक्त महात्मा की स्तुति को करते हैं और टीकाकार उन पर व्याख्यानों को करते हैं । यद्वा । उस परमात्मा की स्तुति को वेद पुराण कहते हैं और उन वेद पुराणों को पढ़कर लोग फिर स्तुति को कहते हैं और स्तुतिरूप जान कर उनके पाठों को करते हैं फिर आचार्य लोग उनके व्याख्यान देते हैं।

मू०—आखहि बरमे आखहि इन्द ।

टी०—उस परमेश्वर की स्तुति को ब्रह्मा भी करता है । सृष्टि की उत्पत्ति काल में जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ तब उस काल में पृथिवी अभी उत्पन्न न हुई थी किंतु जलही-जल सर्वत्र था । उन जलों में दो दैत्य मधु कैटभ नामवाले ब्रह्मा को खाने को दौड़े । तब ब्रह्मा ने परमेश्वर की स्तुति की । यह कथा मार्कंडेयपुराण में लिखी

है। फिर भागवत के दशम स्कंध में लिखा है। ब्रह्मा को कृष्ण के अवतार होने से संदेह हुआ। तब सब बछरे और गौओं को लेकर परीक्षा के लिये कंदरा में छिपा आया। तब भगवान् ने और ही सब रच लिए। तब ब्रह्मा का संदेह दूर हुआ और भगवान् की स्तुति की। इंद्र को जब २ दैत्यों से भय हुआ तभी २ उसने परमेश्वर की स्तुति की। तात्पर्य यह है ब्रह्मा और इंद्रादि भी उसकी स्तुति करते हैं।

मू०—आखहि गोपी ते गोविंद।

टी०—और ब्रज में जितनी गोपियाँ हुई हैं और जो गोविंद कृष्णजी के सखा हुए हैं, उन्होंने तथा गोविंद जो कृष्णजी हैं उन्होंने भी व्यापक चेतन परमात्मा की स्तुति की है।

मू०—आखहि ईश्वर आखहि सिद्ध।

टी०—ईश्वर जो महादेवजी हुए हैं और जितने सिद्ध हुए हैं, उन्होंने भी परमेश्वर की स्तुति की है।

मू०—आखहि केते कीते बुध।

टी०—केते याने कितने ही बुध जो बुद्धिमान् ऋषि मुनि हुए हैं, वे भी कीते अर्थात् विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति को पढ़ा करते हैं।

मू०—आखहि दानव आखहि देव।

टी०—उस परमात्मा की स्तुति को याने गुणानुवाद को दानव-जातिवाले और देवता जातिवाले भी पढ़ा करते हैं।

मू०—आखहि सुर नर मुनिजन सेव।

टी०—सुर जो देवता हैं, नर जो मनुष्य हैं, मुनि लोग, और जो उपासक हैं, ये सब उस परमात्मा की स्तुति को ही पढ़ा करते हैं।

मू०—केते आखहि आखण पाहि।

टी०—केते आखहि कितने तो वर्तमान काल में ही परमेश्वर की स्तुति को करते हैं और कितने आखण पाइ। याने भविष्यत्काल में करेंगे।

मू०—केते कह कह उठ उठ जाहि ।

टी०—और कितने परमेश्वर की स्तुति को करते २ उठ जाते हैं यानें संसार से चले गये हैं । उत्तम लोकों को प्राप्त हुए हैं ।

मू०—एते कीते होर करे ।

टी०—जितने कि स्तुति करनेवाले कहे हैं इनसे भी और अधिक स्तुति करनेवाले संसार में विद्यमान हैं, जिनका अंत कुछ भी नहीं है ।

मू०—ता आख न सकें केही केह ।

टी०—तब भी उस परमेश्वर की स्तुति को कोई भी पूरी तौर पर नहीं कह सकता है । वह आपही परमेश्वर अपनी स्तुति को जानता है ।

मू०—जे वड भावै ते वड होय ।

टी०—जे वडभावै याने जितनी स्तुति परमेश्वर को अच्छी लगै, ते वड होय, उतनी ही बड़ी स्तुति कही जाती है । अथवा जिस स्तुति करनेवाले को बड़ा करना परमेश्वर को भाता है वह पुरुष उतना ही बड़े दर्जेवाला हो जाता है । यद्वा जितनी परमेश्वर की स्तुति को कोई बढ़ाना चाहता है, उतनी ही वह बड़ी होती चली जाती है; क्योंकि परमेश्वर भी अनंत है ।

मू०—नानक जाणै साचा सोय ।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं वह आपही सच्चा परमेश्वर अपनी स्तुति को जानता है । जीव की सामर्थ्य नहीं है जो उसकी स्तुति के स्वरूप को जानै ।

मू०—जेको आखह वोल विगाड ।

टी०—यदि कोई पुरुष कहे मैं परमेश्वर के अंत को या उसकी स्तुति के अंत को जानता हूँ या अपनी बुद्धि के बल से जान लूँगा, यह जो उसका वोल याने कथन है सो उस पुरुष का विगाड़ करनेवाला है अर्थात् उसको संसारचक्र में डालनेवाला है ।

मू०—तालिखीयेसिरगावारागावार ।

टी०—परमेश्वर और उसकी महिमा के अंत लेनेवाले को गुरुजी कहते हैं गवाँरों का गवाँर याने मूर्खों का भी सरदार लिखना चाहिए। भारी मूर्ख वह है, जो परमेश्वर के अंत लेने को कहता है। वह परमेश्वर अनंत है। उसकी माया के कार्य जो पाँचभूत हैं उन पाँचभूतों में भी उसने अनंत शक्तियाँ रक्खी हैं। जो बड़े २ साइन्सविद्या के जाननेवाले हैं, उन्होंने अपनी विद्या के बल से तंत्रों में अनंत शक्तियाँ दर्याप्त की हैं और उनके जानने के लिये बड़ी २ कोशिशें करते हैं; परंतु तंत्रों की शक्तियों का अंत उनको नहीं मिला है। तब परमेश्वर का अंत कैसे मिल सकता है। कदापि नहीं।

मू०—सोदरकेहा सो घरकेहा जितवह सर्व समाले
वाजेनाद अनेक असंखा केते वावणहारे।
केतेराग परी सिउ कही अनकेते गावणहारे॥
गावहि तुधनो पउण पाणी वैसंतर गावै राजा धरम दुआरे।
गावहि चितगुपति लिखजाणहि लिख लिख धरम वीचारे॥
गावहि ईसर वरमा देवी सोहन सदा सवारे।
गावहि इन्द्र इन्दासण वैठे देवतया दरनाले॥
गावहि सिद्ध समाधी अंदर गावन साध वीचारे।
गावन जती सती संतोपी गावहि वीर करारे॥
गावन पंडित पडन ऋपीसर जुग जुग वेदानाले।
गावहि मोहणीआ मनमोहन सुरगाम छपयाले॥
गावन रतन उपाये तेरे अठसठ तीर्थनाले।
गावहि जोध महाबलसूरा गावहि खाणीचारे॥
गावहि खंडमंदल वरभंडा कर कर रखेधारे।
सेई तुधनो गावहि जो तुध भावनरते तेरे भक्त रसाले॥

होरकेते गावनसे मैंचित न आवन नानक किया वीचारे।
सोई सोई सदासच साहिब साचा साची नाही है भी
होसी जाइन जासी रचना जिन रचाई ॥
रंगी रंगी भाति करकर जिनसी माइआ जिन उपाई।
कर करवेपे कीता आपणा जिवति संदी वडआई ॥
जो तिसभावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई।
सो पातिसाहु साहापातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥

फल—सोमवार से सात सौ रोज अमृत वेला के समय जपै २७ दिन तक तो संग्रहणी दूर हो।

मू०—सोदरुकेहासोघरुकेहा जितुवहिसर्वसमाले।

टी०—महात्मा जो भक्त हैं सो परमेश्वर की स्तुति को करते हैं। अथवा गुरुजी इस पौडी करके परमेश्वर की स्तुति को करते हैं। हे परमेश्वर! वह दर याने दरबार कैसा है और वह घर याने मंदिर कैसा है जितुवहि जिसमें बैठकर तुम सब जीवों के कर्मों की सम्हाल करते हो अर्थात् सबके पुण्यपापरूपी कर्मों को तुम जानते हो अर्थात् सबके शरीर-रूपी घरों में बैठकर सबके कर्मों का तुम हिसाब ले रहे हो ?

मू०—वाजेनाद अनेक असंखाकेतेवावणहारे।

टी०—शरीर के भीतर नादरूपी अनेक प्रकार के बाजे बजते हैं और कितने ही मन बुद्धिरूपी बाजों के बजानेवाले भी तुम्हारे आगे मौजूद हैं। अथवा लोक में अनेक प्रकार के नाद याने शब्दोंवाले बाजे हैं और कितने ही तुम्हारे प्रेमीभक्त तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त बजाने-वाले भी मौजूद हैं।

मू०—केतेरागपरीसिवकहीअनकेतेगावणहारे।

टी०—हे ईश्वर! इस शरीररूपी तुम्हारे घरों में याने स्थानों में कितनी वृत्तिरूपी परियाँ अपने २ रागों से तुम्हारे गुणों की स्तुति

में महिषासुर ने देवी से कहा है, तू हमसे विवाह कर ले, तब देवी ने उसको उत्तर दिया है ।

नाहं पुरुषमिच्छामि परमं पुरुषं विना ।
तस्य चेच्छास्म्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत् ॥
समां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा ।
तत्सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम् ॥
जडाहं तस्य संयोगात्प्रभवामि सचेतना ।
अयस्कान्तस्य सान्निध्यादयसश्चेतना यथा ॥

देवी कहती है, एक परमात्मा चेतन पुरुष से विना मैं और किसी दूसरे पुरुष की इच्छा नहीं करती हूँ । हे दैत्य ! मैं उसी की इच्छा को ले सारे जगत् को उत्पन्न करती हूँ । सोई सारे विश्व का आत्मा मेरे को देखता है । उसी की मैं शिवानामवाली प्रकृति हूँ । उसके संबंध से मेरे में चेतनता है । मैं जड़ हूँ । उसके संयोग से मैं चेतन की तरह प्रतीत होती हूँ । जैसे चुम्बक पत्थर की समीपता से लोह चेष्टा करता है, वैसे मैं भी उसके संयोग से चेष्टा करती हूँ । स्वतः जड़ हूँ इत्यादि वाक्यों में देवी ने अपने को जड कहा है और अपने से भिन्न चेतन को ईश्वर कहा है । इस वास्ते देवी ईश्वर नहीं हो सक्ती है और भी कोई देवता ईश्वर नहीं हो सक्ता है; क्योंकि सब देवता कानों से ही सुने जाते हैं । नेत्रों से कोई भी देवता नहीं दिखाता है; किंतु सूर्य भगवान् नेत्रों से दिखाता है और सारे जगत् का व्यवहार इसी के आश्रय है और प्रकाश स्वरूप भी है, इस वास्ते सूर्य ही ईश्वर हैं । और भी उपासक सब अपने २ उपास्य को ईश्वर और दूसरों के उपास्य को जीव बतलाते हैं । तब एक दूसरे की दृष्टि से एक दूसरे के उपास्य जीव ही सिद्ध हुए । तब फिर पूर्ववाले सब जीव ही साबित हुए । यदि सभी ईश्वर माने जायँगे तब अनेक ईश्वर हो जायँगे । तब ईश्वरों में भी परस्पर युद्ध होगा और वेदविरुद्ध

भी है; क्योंकि वेद में एक ही निराकार निरावयव व्यापक चेतन को ईश्वर माना है। वही मानना ठीक है। जिन्होंने अपने २ भिन्न २ ईश्वर माने हैं इनकी निंदा भी लिखी है।

शैवाः शाक्ताश्च गाणेशाः सौरा विष्णुप्रपूजकाः।
विद्विषन्ति मिथो ह्यन्यथा तेषां भक्तिश्च निष्फला॥

शिव के, शक्ति के, गणेश के, सूर्य के, विष्णु के उपासक जो परस्पर द्वेष करते हैं। अपने २ ईश्वरों पर उनकी भक्ति निष्फल है। फिर जो उत्पत्ति नाशवाला होता है, वह कदापि ईश्वर नहीं हो सक्ता है। गुरु वाक्य भी इसमें प्रमाण है।

एको सिमरो नानका जो जल थल रहा समाय।
दूजा काहे सिमरिये जो जमेते मरजाय॥

तात्पर्य यह है, वह परमेश्वर एक है। सर्वत्र व्यापक है। उसका भेद किसी को नहीं मिला है। गुरुजी ने जो कहा है ईश्वर ब्रह्मा देवी आदिक सब देवता भी उसके गुणों को गायन करते हैं। सो ठीक कहा है; क्योंकि ब्रह्मा आदि सब जीव कोटि में हैं।

मू०—गावहिइन्द्रइन्द्रासणबैठेदेवतिआदरनाले।

टी०—हे ईश्वर! इंद्र भी अपने इंद्रासन पर बैठकर देवतों के समूहों सहित तुम्हारी स्तुति को गायन कर रहे हैं।

मू०—गावहिसिद्धसमाधीअंदरगावनिसाधविचारे।

टी०—और चौरासी सिद्ध हुए हैं, वह भी अपनी समाधि में परमेश्वर के गुणों को गायन कर रहे हैं। साधु जो महात्मा हैं, वह भी युक्तियों और श्रुति स्मृतियों से विचार करके परमेश्वर के गुणों का गायन कर रहे हैं।

मू०—गावनजतीसतीसंतोषीगावहिवीरकरारे।

टी०—और यती जो संन्यासी हैं, सती जो सत्यवादी हैं और संतोषी जो यथा लाभ में संतुष्ट रहनेवाले ज्ञानी हैं और जो बड़े

करती हैं और कितने सत्य संतोष विवेकादि अपने २ रागों से विचार विचार करके तुम्हारे गुणों को गायन कर रहे हैं, अथवा तुम्हारे भजन करने के लिये जो भक्तजनों ने मंदिर और सभा आदि विशेष स्थान बनाए हैं उन स्थानों में वह भक्तजन कितने प्रकार की राग रागिनियों से तुम्हारे गुणों को गायन करते रहते हैं ?

मू०—गावहितुहनो पवणुपाणीवैसंतरुगावैराजाधर्मुद्वारे

टी०—हे ईश्वर ! तुम्हारे गुणों को पवन वायु, पाणी जल और अग्नि आदि देवता भी गायन कर रहे हैं । धर्मराज भी नित्यही तुम्हारे द्वार पर स्थित होकर तुम्हारे गुणों को गायन करता है ।

मू०—गावहिचितुगुपतु।लिखिजाणैहि लिखलिखधर्मुविचारे

टी०—चित्रगुप्त जो धर्मराज का मुनीम है, वह भी तुम्हारे गुणों को गायन करता है और तुम्हारे गुणों को पुनः लिखकर वह चित्रगुप्त धर्म का विचार करता है ।

मू०—गावहिईशरुबरमादेवीसोहनिसदासवारे ।

टी०—ईश्वर जो महादेवजी हैं, चतुर्भुज जो ब्रह्मा हैं और देवी जो शक्ति है ये सब भी हे परमेश्वर ! तुम्हारी स्तुति को ही गायन करते हुए सोहन अर्थात् शोभा को पाते हैं । और सदा सवारे सदैव के लिये इन्होंने अपने २ जन्मको सवाँर लिया है । अर्थात् सफल कर लिया है ।

प्र०—महादेव के उपासक महादेव को ही ईश्वर मानते हैं, ब्रह्मा के उपासक ब्रह्मा को, देवी के उपासक देवी को ईश्वर मानते हैं । हरएक उपासक अपने ही उपास्य को ईश्वर मानते हैं । और गुरुजी के कथन से तो ये सब जीवही साबित हुए; क्योंकि जो स्तुति करता है वह अपने से बड़े की ही करता है, तब इन उपासकों का मानना ठीक न हुआ । यदि ठीक माना जाय तब अनेक ईश्वर हो जायँगे सो हो नहीं सक्ता ।

उ०—जितने उपासक हैं, ये सब वेद और शास्त्रों के तात्पर्य को नहीं समझते हैं । न इनको उपासना करनी ही ठीक २ आती है ।

प्रथम हम उपासकों के ईश्वरवाद दिखाते हैं। हिरण्यगर्भ के उपासक कहते हैं संपूर्ण लिंग शरीरों के हिरण्यगर्भ का तादात्म्य अध्यास है। इस वास्ते हिरण्यगर्भ ही ईश्वर है और उद्गीथ ब्राह्मण में हिरण्य का माहात्म्य भी लिखा है। विराट् के उपासक कहते हैं, स्थूल शरीर से विना लिंग शरीर कदापि नहीं रह सक्ता है। इस वास्ते समष्टि स्थूल शरीरों का अभिमानी विराट्ही ईश्वर है और सहस्रशीर्षः पुरुषः हजारों शिर और पैर जिसके इत्यादि मंत्रों में विराट् का माहात्म्य भी सुना है। इसलिये विराट् ही ईश्वर है। ब्रह्मा के उपासक कहते हैं, हजारों पादों और शिरोंवाला ईश्वर नहीं हो सक्ता है यदि माना जावेगा तब एक कृमि भी ऐसा होता है जो उसके बहुत से शिर और पाँव होते हैं। उसे भी ईश्वर मानना चाहिए। मानता तो कोई भी नहीं है। इस वास्ते ब्रह्मा ही ईश्वर है और श्रुति भी कहती है—

प्रजापतिः प्रजाऽसृजत्।

प्रजापति जो ब्रह्मा है सो प्रजा को रचता है इस वास्ते ब्रह्मा ही ईश्वर है। विष्णु के उपासक कहते हैं, विष्णु की नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है इस वास्ते ब्रह्मा ईश्वर कदापि नहीं हो सक्ता है; किंतु विष्णु ही ईश्वर है। शिव के उपासक कहते हैं, विष्णु ईश्वर नहीं हो सक्ता है; क्योंकि शिव के चरणों को विष्णु ने भी खोजा है और उनका ध्यान किया है। उनकी उपासना की है। उपासक ईश्वर नहीं हो सक्ता है; किंतु उपास्य ही शिव ईश्वर है। गणेश के उपासक कहते हैं, महादेवजी ने गणेशजी का पूजन करके त्रिपुर दैत्य को मारा था इस वास्ते गणेश ही ईश्वर हैं। शक्ति के उपासक कहते हैं, शक्ति के विना किसी कार्य की भी सिद्धि नहीं होती है और ब्रह्मा आदि देवतों को भी उत्पन्न करनेवाली शक्ति है। इस वास्ते शक्ति ही ईश्वर है। सूर्य के उपासक कहते हैं, शक्ति जड़ है, सो ईश्वर नहीं हो सक्ती है। आप ही शक्ति ने देवी भागवत के नवें स्कंध के सोलहवें अध्याय में लिखा है, जिस काल में महिषासुर के साथ देवी का युद्ध हुआ है, तब उस काल

में महिषासुर ने देवी से कहा है, तू हमसे विवाह कर ले, तब देवी ने उसको उत्तर दिया है।

नाहं पुरुषमिच्छामि परमं पुरुषं विना।
तस्य चेच्छास्म्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत्॥
समां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा।
तत्सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम्॥
जडाहं तस्य संयोगात्प्रभवामि सचेतना।
अयस्कान्तस्य सान्निध्यादयसश्चेतना यथा॥

देवी कहती है, एक परमात्मा चेतन पुरुष से विना मैं और किसी दूसरे पुरुष की इच्छा नहीं करती हूँ। हे दैत्य! मैं उसी की इच्छा को ले सारे जगत् को उत्पन्न करती हूँ। सोई सारे विश्व का आत्मा मेरे को देखता है। उसी की मैं शिवानामवाली प्रकृति हूँ। उसके संबंध से मेरे में चेतनता है। मैं जड़ हूँ। उसके संयोग से मैं चेतन की तरह प्रतीत होती हूँ। जैसे चुम्बक पत्थर की समीपता से लोह चेष्टा करता है, वैसे मैं भी उसके संयोग से चेष्टा करती हूँ। स्वतः जड़ हूँ इत्यादि वाक्यों में देवी ने अपने को जड़ कहा है और अपने से भिन्न चेतन को ईश्वर कहा है। इस वास्ते देवी ईश्वर नहीं हो सकी है और भी कोई देवता ईश्वर नहीं हो सका है; क्योंकि सब देवता कानों से ही सुने जाते हैं। नेत्रों से कोई भी देवता नहीं दिखाता है; किंतु सूर्य भगवान् नेत्रों से दिखाता है और सारे जगत् का व्यवहार इसी के आश्रय है और प्रकाश स्वरूप भी है, इस वास्ते सूर्य ही ईश्वर है। और भी उपासक सब अपने २ उपास्य को ईश्वर और दूसरों के उपास्य को जीव बतलाते हैं। तब एक दूसरे की दृष्टि से एक दूसरे के उपास्य जीव ही सिद्ध हुए। तब फिर पूर्ववाले सब जीव ही साबित हुए। यदि सभी ईश्वर माने जायँगे तब अनेक ईश्वर हो जायँगे। तब ईश्वरों में भी परस्पर युद्ध होगा और वेदविरुद्ध

भी है; क्योंकि वेद में एक ही निराकार निरावयव व्यापक चेतन को ईश्वर माना है। वही मानना ठीक है। जिन्होंने अपने २ भिन्न २ ईश्वर माने हैं इनकी निंदा भी लिखी है।

शैवाः शाक्ताश्च गाणेशाः सौरा विष्णुप्रपूजकाः।
विद्विषन्ति मिथो भ्रान्त्या तेषां भक्तिश्च निष्फला॥

शिव के, शक्ति के, गणेश के, सूर्य के, विष्णु के उपासक जो परस्पर द्वेष करते हैं। अपने २ ईश्वरों पर उनकी भक्ति निष्फल है। फिर जो उत्पत्ति नाशवाला होता है, वह कदापि ईश्वर नहीं हो सक्ता है। गुरु वाक्य भी इसमें प्रमाण है।

एको सिमरो नानका जो जल थल रहा समाय।
दूजा काहे सिमरिये जो जमेते मरजाय॥

तात्पर्य यह है, वह परमेश्वर एक है। सर्वत्र व्यापक है। उसका भेद किसी को नहीं मिला है। गुरुजी ने जो कहा है ईश्वर ब्रह्मा देवी आदिक सब देवता भी उसके गुणों को गायन करते हैं। सो ठीक कहा है; क्योंकि ब्रह्मा आदि सब जीव कोटि में हैं।

मू०—गावहिइन्द्रइन्द्रासणबैठेदेवतिआदरनाले।

टी०—हे ईश्वर! इंद्र भी अपने इंद्रासन पर बैठकर देवतों के समूहों सहित तुम्हारी स्तुति को गायन कर रहे हैं।

मू०—गावहिसिद्धसमाधीअंदरगावनिसाधविचारे।

टी०—और चौरासी सिद्ध हुए हैं, वह भी अपनी समाधि में परमेश्वर के गुणों को गायन कर रहे हैं। साधु जो महात्मा हैं, वह भी युक्तियों और श्रुति स्मृतियों से विचार करके परमेश्वर के गुणों का गायन कर रहे हैं।

मू०—गावनजतीसतीसंतोषीगावहिवीरकरारे।

टी०—और यती जो संन्यासी हैं, सती जो सत्यवादी हैं और संतोषी जो यथा लाभ में संतुष्ट रहनेवाले ज्ञानी हैं और जो बड़े

करारे थाने कठिन सूरमे हैं, ये सभी अपने २ मनोरथ की सि
के लिये उस परमात्मा के गुणों को गायन करते हैं ।

मू०—गावनपंडितपढ़निरखीश्वरजुगजुगवेदानाले

टी०—और जो शास्त्रों को पढ़े हुए पंडित हैं और जो ऋषीः
हैं, ये सब भी युगयुग में वेदों को पढ़के परमेश्वर के गुणों को गा
करते चले आए हैं ।

मू०—गावहिमोहणी आमनुमोहनि सुरगामछपयाले

टी०—मोहणीयां नाम अप्सरा का है । मन के मोहन करनेवा
जो अप्सराएँ हैं, ये भी अपने रागों में देवतों के आगे परमेश्वर
गुणों को गायन करती हैं और सु करके स्वर्गवासी मछ करके मर
लोकवासी पयाल करके पाताललोकवासी जो जीव हैं अर्थात् स्व
मर्त्य, पाताल तीनों लोकों में निवास करनेवाले जितने जीव हैं, वे स
परमेश्वर के गुणों को ही गायन करते हैं ।

मू०—गावनि रतन उपाय तेरे अठसठि तीर्थनाले ।

टी०—और हे ईश्वर ! तुम्हारे करके समुद्र से उत्पन्न किए हुए
जो चौदह लक्ष्मी आदि रत्न हैं, वह भी और ऋषियों करके बनाए हुए
जो अठसठ याने अठावन तीर्थ हैं, वह भी सब तुम्हारे ही गुणों के
गायन करते हैं ।

मू०—गावहिजोध महाबलसूरागावहिखाणीचारे ।

टी०—क्षात्रधर्मवाले बड़े बली योधा सूरमे हैं, वह भी अपनी
विजय के लिये तुम्हारे ही गुणों को गायन करते हैं और खाणी नाम
चार प्रकार के जीवों का है—अंडज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज्ज ये चार
प्रकार के जीव भी आपके ही गुणों को गाते हैं ।

मू०—गावहि खंडमंडलवरभंडा करिकरि रखेधारे ।

टी०—खंड नाम पृथिवी के खंड का है अर्थात् पृथिवी के जो नवखंड
हैं, उनके जो मंडल हैं उनमें जो वरश्रेष्ठ जो भंडा हैं अर्थात् कायिक और

गंधर्व जातिवाले रागी हैं, वे भी तुम्हारे गुणों को कर कर याने गा-गाकर अपने चित्त में धारण करके रखते हैं ।

मू०—सेई तुधनो गावहि जो तुधुभावनिरते तेरे भक्त रसाले ।

टी०—हे ईश्वर ! वही पुरुष तुम्हारी स्तुति को करते हैं जो तुमको प्यारे लगते हैं । जो तुम्हारी भक्ति के रस में रमे हुए हैं अर्थात् भक्ति के रस से मस्त हो रहे हैं । वही तुमको पूरी तौर पर गायन करते हैं । इतर प्राकृत पुरुष नहीं गायन कर सकते हैं ।

मू०—होरि केतेगावनि सेमैं चितन आवनिनानकुक्यावीचारे।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं, जितने हमने तुम्हारी स्तुति करनेवाले गिने हैं इनसे भी और अधिक तुम्हारी स्तुति करनेवाले संसार में विद्यमान हैं। सो मेरे चित्त के ख्याल में भी नहीं आते हैं, उनका हम क्या विचार करें ।

मू०—सोई सोई सदासचु साहिब साचासाचीनाई ।

टी०—सोई परमेश्वर सदा याने तीनों कालों में सद्रूप है । ज्यों का त्यों एक रस है और साहिब है अर्थात् सबका स्वामी है और साचा है याने उसका हुक्म भी सच्चा है। किसी प्रकार से भी हट नहीं सकता है । उसका नाम भी सच्चा है । सदैव रहता है । इतर जीवों के नाम सदैव नहीं रहते हैं । क्योंकि जीव आप ही सदैव नहीं रहते हैं।

मू०—है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई।

टी०—वह परमेश्वर वर्तमानकाल में भी है और भविष्यकाल में भी होगा और पूर्वकाल में भी था । जाय न जासी अर्थात् वह कभी न कहीं गया है और न जायगा । सर्वत्र विद्यमान है । फिर वह परमेश्वर कैसा है ? जिसने संसार की अनेक प्रकार की रचना बनाई है ?

मू०—रंगीरंगीभांतिकरिकरिजिनसीमायाजिनिउपाई ।

टी०—रंगी रंगी अर्थात् रंग बिरंग के और भाँति २ के पदार्थों को

अर्थात् वृक्ष, वेलि, फल पुष्पादि को जिस परमेश्वर ने अपनी जिनसी माया करके अर्थात् अपनी अचित्य शक्ति करके उत्पन्न किया है।

मू०—करिकरिवेखै कीता आपणा जिवतिसदीवडिआई

टी०—वह परमेश्वर कर कर वेखै कीता आपणा अर्थात् पुनः २ जगत् को उत्पन्न करके आपही फिर उसको देखता है। जैसे वालक मिट्टी के हाथी, घोड़े आदि बनाकर आप ही फिर उनको देखता है, वैसे परमेश्वर भी जगत् की रचना को करके आप ही फिर उसको देखता है जिवतिसदी वडआई जैसी उसकी वड़ाई महिमा है, वह आपही अपनी महिमा को जानता है। दूसरा कोई भी नहीं जानता है।

मू०—जो तिसभावै सोई करसी हुकुमु न करणा जाई।

टी०—जो उस परमेश्वर को भाता है याने अच्छा लगता है, वही वह करता है। उस पर कोई भी हुक्म नहीं कर सकता है। जैसे स्वतंत्र राजा पर कोई भी हुक्म नहीं कर सका है।

मू०—सोपातिसाहसाहापातिसाहिचुनानकरहणुरजाई।

टी०—वह परमेश्वर वादशाहों के जो वादशाह हैं अर्थात् राजों का जो राजा है चक्रवर्ती, उन चक्रवर्ती राजों का भी राजा है, पति है, याने स्वामी है, और साहिव है। सबसे वड़ा है। उसी की रजा में याने मरज़ी में गुरुजी कहते हैं, रहना श्रेष्ठ है। एक कवि ने भी कहा है—

स०। नहिं योग न यज्ञ न दान कियो नहिं ज्ञान न ध्यान सचित्त अभेरो। नहिं संयम नेम न धर्म सुकर्म न संगति साधन जापन तेरो॥ सुख अम्ब के आस तज्यो सब ही नहिं त्रास वरुण यम इन्द्र कुबेरो। हौं तो कुपूत बिना करतूत पै मात की गोद में लीन बसेरो॥

मू०। मुंदा संतोखु सरमु पतुझोली ध्यान की करहि विभूति। खिंथा कालु कुआरी काइया जुगति डंडा पर-

तीति ॥ आई पंथी सगल जमाती मनजीते जग जीतु। आदेशु तिसै आदेशु आदि अनील अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥

फल—रविवार से पचास हजार अमृतवेला में ५०० रोज तक जपै तो भयानक अतीसार रोग दूर हो।

टी०—जिसकाल में गुरुजी सुमेरु पर्वत पर गए और सिद्धों को खबर मिली जो जगद्गुरु कहलानेवाले नानकजी जन्म से ही जो सिद्ध हैं वह हमारे सिद्धों की सिद्धि की परीक्षा करने के लिये यहाँ पर सुमेरु पर्वत पर आए हैं इनसे शास्त्रार्थ करने में तो हमारी पूरी नहीं परेगी कोई युक्ति करनी चाहिए, तब सब सिद्ध मिलकर युक्तियुक्त वचन को गुरुजी से कहने लगे। सिद्ध कहते हैं, हे नानक पीत! आपने तो अभी योग को धारण नहीं किया है और बिना योग के सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती है इसलिये प्रथम योग को आप धारण करो। कानों में मुद्रा को पहनो और झोली आदि चिह्नों को धारण करो तब सिद्धों की गोष्ठी करो। सिद्धों के प्रश्न का उत्तर गुरुजी अब कहते हैं।

मू०—मुंदा संतोषु सरमुपत झोली ध्यान की करहि विभूति।

टी०—गुरुजी सिद्धों से कहते हैं तुम असली योग को नहीं जानते हो। कानों को फाड़कर मुद्रा पहरने का नाम योग नहीं है; क्योंकि किसी योग के ग्रंथ में कान फाड़ने का नाम योग नहीं है। योग नाम आत्मा में जुड़ने का है। अर्थात् चित्त की वृत्तियों को बाह्य विषयों से हटाकर अंतर आत्मा में लगाने का नाम योग है। सो उसके लिये दूसरी तरह की मुद्रा आदि साधन कहे हैं। अब उन साधनों को गुरुजी कहते हैं। शरम नाम लज्जा का है। अर्थात् संतोष और लज्जारूपी जिसने दोनों मुद्रा पहिरी हैं और पति नाम इज्जत का है उसी को प्रतिष्ठा भी कहते हैं। कुकर्म का त्याग करके सुकर्म को बढ़ाकर जिसने अपनी प्रतिष्ठा की झोली बनाई है। आत्मा के ध्यान की जिसने

विभूति अपने अंतःकरण में लगाई है; वही योगी कहा जाता है। बाहर की विभूति याने राख लगानेवाला योगी नहीं कहा जाता है। यदि बाहर की विभूति लगाने से योगी होता हो, तो हस्ती और गर्दभादि भी योगी होने चाहिए, क्योंकि वे तो रात्रि दिन भस्म और धूलि में ही रहते हैं। जंगल में रहने से भी योग नहीं होता है। योगशास्त्र में भी लिखा है।

नारण्यसेवनाद्योगो नाऽनेकग्रन्थचिन्तनात्।
व्रतैर्यज्ञैस्तपोभिर्वा न योगः कस्यचिद्भवेत्॥

वन के सेवन से, अनेक ग्रंथों के विचारने से, व्रतों और यज्ञों तथा तपों करके योग किसी को भी सिद्ध नहीं होता है।

न च पथ्याशनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात्।
न च शास्त्रातिरिक्तेन शौचेन भवति क्वचित्॥

पथ्य खाने से, नासिका के अग्र देखने से, शास्त्र, बाह्य शौच से योग सिद्ध नहीं होता है।

निद्रयाक्रान्तचित्तस्य योगाभ्यासो न सम्भवेत्।
ततो नास्त्यतिनिद्रालोर्योगो नास्त्यतिजाग्रतः॥

जिसका चित्त अतिनिद्रा करके दबाया रहता है, जो अति सोता है या अति जागता है उनका भी योगाभ्यास में अधिकार नहीं है।

पूरयेदशनेनार्द्धं तृतीयमुदकेन तु।
वायोः सञ्चरणार्थं तु चतुर्थमवशेषयेत्॥

जिसको योग करने की इच्छा हो वह आधे पेट को अन्न से और तृतीय को जल से पूर्ण करे और चतुर्थ को वायु के चलने के लिये बाक़ी खाली छोड़ दे।

प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम्।
धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः॥

प्राणायाम करके वाणी का प्रत्याहार करके इंद्रियों का और धारणा करके मन का निरोध करने से योग सिद्ध होता है ।

वृत्तिहीनं मनःकृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ।
एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥

मन को वृत्तियों से रहित करके जीवात्मा परमात्मा की एकता करने का नाम ही मुख्य योग है । कुलार्णव तंत्र में कहा है—

ध्यानन्तु द्विविधं प्रोक्तं स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ।
साकारं स्थूलमित्याहुः निराकारन्तु सूक्ष्मकम् ॥

ध्यान दो प्रकार का कहा है । एक साकार दूसरा निराकार । स्थूल वस्तु में चित्त के लगाने का नाम साकार ध्यान है । सूक्ष्म वस्तु में चित्त के लगाने का नाम निराकार ध्यान है । साकार बिना निराकार नहीं हो सक्ता । योगसूत्र में भी लिखा है—

यथाऽभितध्यानाद्वा ।

जो मूर्ति अपने को प्रिय है, वह किसी देवता या अवतार की हो उसमें मन का निरोध करने से समाधिरूपी योग की प्राप्ति होती है । इसीका नाम सविकल्प समाधि है ।

सूत्रम्—देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।

किसी देश में याने किसी वस्तु में चित्त के लगाने का नाम ही धारणा है ।

तत्र प्रत्येकतानता ध्यानम् ।

चित्त की वृत्तियों को किसी वस्तु में तैल-धारावत् एकाकार प्रवाह रूप करके लगाने का नाम ही ध्यान है ।

भुवनज्ञानं सूर्यसंयमात् ।

सूर्य में चित्त का संयम करने से याने निरोध करने से संपूर्ण भुवनों का ज्ञान हो जाता है ।

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ।

चंद्रमा में चित्त के निरोध करने से सब तारों के आकार का ज्ञान हो जाता है।

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्।

ध्रुव तारा में चित्त के निरोध करने से तारों की गति का ज्ञान हो जाता है। इसी तरह योग की सिद्धियों के उपाय योगशास्त्र में कहे हैं। कहीं भी मुद्रा पहरने से योग की सिद्धि नहीं कही है। इस वास्ते गुरुजी कहते हैं बाहरलीयाँ मुद्रा और भस्म के लगानेवाला योगी नहीं हो सक्ता है। संतोषरूपी मुद्रा के पहरने से योगी होता है।

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः।

संतोष से ही अनुत्तम सुख का लाभ होता है। इस वास्ते हे सिद्धो! तुम भी संतोषरूपी मुद्रा को धारण करो।

मू०—खिंथाकालुकुआरीकाया जुगतिडंडापरतीत।

टी०—गुरुजी सिद्धों को सचे योग का उपदेश करते हैं—खिंथाकालकाआरी। अर्थात् कौल का गिरा जो शरीर है इसी को जिसने खिंथा याने कफनी बनाया है और आचार्य ने जो प्राणों के निरोध करने की युक्ति बताई है। उसी युक्ति को जिसने डंडा बनाया है और वेदवाक्यों में तथा आचार्य के वाक्यों में जिसकी प्रतीति याने विश्वास है असल योगी वही है। बाहर के चिह्नों से योगी कदापि नहीं हो सक्ता है।

मू०—आई पंथी सगल जमाती मन जीतै जगु जीतु।

टी०—आई पंथी जब कि पुरुष परमेश्वर के भक्तिरूपी पंथ में याने मार्ग में आ जाय तब सगल जमाती संपूर्ण जीव जो जीवत्वेन चेतनत्वेन अपने समाती हैं उन सब जीवों पर दया आदि गुणों को धारण करके तब फिर मन जीते। अपने मन को पुरुष जीतता है। मन के जीतने से ही फिर सारे जगत् को जीत लेता है॥

मू०—आदेसु तिसै आदेसु। आदि अनील
अनादि अनाहति जुग जुग एको वेसु।

टी०—आदेसु पद का अर्थ वंदना और प्रणाम है। गुरुजी कहते हैं, हम उस आदि पुरुष को वंदना करते हैं याने प्रणाम करते हैं, जो सारे जगत् का आदि कारण है। जो अनील है। अर्थात् जो नील पीतादि वर्णों से रहित है। जो अनाहति याने नाश से रहित है। युग २ में अर्थात् हरएक युग में जिसका एक ही तरह का वेष याने स्वरूप हो। अनाहति शब्द का अर्थ रुकावट से रहित भी है अर्थात् जिसकी कहीं भी रुकावट न हो। सर्वत्र व्यापक हो। हम उसी की वंदना करते हैं।

मू०—भुगति ज्ञान दया भंडारन घटि घटि वाजहि नाद। आपिनाथु नाथी सभ जाकी ऋधि सिधि अवरा साद॥ संयोगु वियोगु दुइकार चलावैहि लेखे आवहि भाग। आदेसु तिसै आदेसु। आदि अनील अनादि अनाहति जुग जुग एको वेसु॥

फल—रविवार से चौदह दिन तक पाँच सौ रोज़ जपै, शरीर के सब दुःख नाश हों।

मू०—भुगति ज्ञानु दया भंडारन घटिघटि वाजहि नाद।

टी०—योगियों की क्रिया को अब गुरुजी दिखाते हैं। परमेश्वर के स्वरूप का जो ज्ञान है वही है भुगत याने भोजन जिनका। संपूर्ण प्राणियों पर जो दया है, उसी को जिन्होंने भंडारन बनाया है याने पूर्वोक्त भोजन को परोसनेवाली याने देनेवाली जिन्होंने दया को बनाया है और घट २ में याने घड़ी घड़ी में अथवा क्षण में परमेश्वर के नाम का जो उच्चारण ॐ ऐसा ऊँचे स्वर से हृदय के भीतर जिनके बज रहा है।

मू०—आपिनाथु नाथी सभ जाकी ऋधि सिधि अवरा साद।

टी०—आपनाथ वह परमेश्वर आप ही सबका नाथ याने स्वामी है। और नाथी सब जाकी और माया जिसकी सबमें नथी हुई है। अर्थात्

सबमें अनुस्यूत होरही है । सब जीवों को जो अपने अधीन कर रही है। जितनी ऋद्धि सिद्धि उस परमेश्वर ने बनाई हैं, अवरां स्वाद और जो भक्त लोग हैं वही उन ऋद्धि सिद्धियों के स्वाद को लेते हैं । वह परमात्मा आप नहीं लेता; क्योंकि वह असंग और आप्तकाम है ।

मू०—संयोग वियोगु दुइ कार चलावैहि लेखे आवैहि भाग ।

टी०—कर्मानुसार पदार्थों का संयोग और वियोग जो है ये दोनों ही संसार के काम को चलाते हैं । जो जिसके भाग में लिख गया है वही उसको मिलता है । अधिक नहीं मिलता है। संसार में एक पुरुष ऐसे हैं जो रात्रि दिन परिश्रम ही करते रहते हैं; परंतु फिर भी दरिद्री ही बने रहते हैं । और एक पुरुष ऐसे हैं जो कुछ भी परिश्रम नहीं करते हैं और लक्ष्मी उनके पास आप-से-आप चली आती है । इस वास्ते भाग में होता है वही मिलता है । ऐसा विचार कर भक्तजन शरीर के निर्वाह को भाग पर छोड़ देते हैं । और आप परमेश्वर के भजन में लगे रहते हैं ।

प्र०—परमेश्वर ने संयोग वियोग क्यों बनाया ? इनके बनाने की क्या जरूरत थी ?

उ०—यदि परमेश्वर इनको न बनाता तब संसार का काम कदापि न चलता; क्योंकि संसार का नाम ही संयोग वियोग है । कर्मों का फल भी संयोग वियोग रूप ही है । यदि ये दोनों न होते तब कर्मों का फल भी कुछ न होता । तब सभी मुक्त ही हो जाते । संसार भी न रहता । इसलिये इनके बनाने की जरूरत है ।

प्र०—संयोग को ही बनाता वियोग को न बनाता ?

उ०—यदि परमेश्वर संयोग को ही बनाता और वियोग को न बनाता तब भी काम न चलता; क्योंकि सब पुरुषों को उत्तम २ भोगों का सदैव ही संयोग बना रहता । वियोग कभी भी न होता । तब धर्मी अधर्मी सब बराबर हो जाते । पाप का फल कौन भोगता ? यदि

वियोग को ही बनाता तब भी धर्मी अधर्मी बराबर ही हो जाते; क्योंकि सबको उत्तम भोगों का वियोग ही सदैव बना रहता। तब भी कर्मों का फल पुण्य न भोगा जाता। इसलिये पुण्य पापरूपी कर्मों के फल के भोगाने के लिये संयोग वियोग दोनों ईश्वर ने बनाए हैं। येही दोनों संसार के काम को चला रहे हैं।

प्र०—संयोग वियोग को बना भी देता; परंतु मृत्यु को ईश्वर न बनाता तब लोग दुःखी तो न होते?

उ०—कर्मों के अनुसार राजभोग और दरिद्रताजन्य दुःख पुरुषों को कैसे मिलता; क्योंकि जो राजा होता वह सदैव ही राजा बना रहता। उसके पुत्र को तो राज्य का सुख कदापि न होता; क्योंकि मरे बिना पुत्र को राज्य होता नहीं और जो दरिद्री होता वह सदैव ही दरिद्री रहता। जो दुःखी होता, वह दुःखी ही रहता। कर्म का फल कैसे पुरुषों को मिलता। ईश्वर कहीं आकाश से तो द्रव्यादि पदार्थ किसी को फेंकता नहीं। कर्मों के भोग के पूरे होने पर एक से लेकर दूसरे को देता है। यह सब व्यवहार भी मृत्यु से बिना नहीं चल सक्ता था। जो वृद्ध होता वह हमेशा के लिये दुःखी रहता यदि मृत्यु न होती। इसलिये मृत्यु बना है कि सब कोई कर्मानुसार फल को भोगे। गुरुजी ने ठीक कहा है, लिखै आवै भाग।

मू०—आदेसु तिसे आदेसु। आदि अनील अनादि-अनाहति जुग जुग एको वेसु।

टी०—गुरुजी कहते हैं जिस परमेश्वर ने संयोग वियोगादि संसार के काम चलाने के लिये बनाए हैं उसी को हमारी वंदना है। वही जगत् का आदिकर्ता है। रूपादि से रहित है, सर्वत्र व्यापक है, हर एक युग में एक रस ज्यों-का-त्यों रहता है।

मू०—एका माई जुगति विआई तिनिचेले परवाणु।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाये दीवाणु॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।

उहु वेखे ओना नदरि न आवै वहुता एहु विडाणु ॥
आदेसु तिसै आदेसु आदि अनीलु अनादि अना-
हति जुग जुग एको वेसु ॥

फल—एक सौ रोज जपै जब इकतालीस सौ पूरा हो जाय, तो अठारह आदि का बालक भी नहीं मरता और अगर सरसों पढ़ कर कान में बांध दे तो भूत प्रेत दूर हों।

मू०—एकामाई।

एक जो मायावशिष्ट चेतन है उसी का नाम माई है। अर्थात् वही मायावाला ईश्वर कहा जाता है। अथवा माई नाम माया का है वह माया स्वतः जड़ है। इस वास्ते वह चेतन को आश्रयण करके युक्ति से सृष्टि आदिकाल में ब्याई याने प्रसूत हुई।

मू०—तिन चेले परवाणु।

टी०—उस माया ने जगत् की रचना के लिये प्रथम ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को उत्पन्न किया। इसी वास्ते वह तीनों माया के चेले कहे जाते हैं। फिर माया ने उन तीनों को जगत् की रचना में प्रवीण याने प्रधान अर्थात् मुखिया बनाया अब उनके प्रधानपने को दिखाते हैं।

मू०—इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाये दीबाणु।

टी०—एक जो ब्रह्मा है, वह संसारी है। अर्थात् जीव की उत्पत्ति प्रथम ब्रह्मा से ही हुई है। इस वास्ते वह संसारी कहा है। विष्णु पालन करता है। इस वास्ते वह भंडारी कहा है। और तीसरे महादेवजी हैं वह प्रलयकाल में सबको लय कर लेते हैं।

मू०—जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।

टी०—जो २ वार्ता उस परमेश्वर को अच्छी लगती है, उसी वार्ता को वह संसार में चलाता है। जिस प्रकार का उसका फुरमान याने हुक्म होता है उसीको भक्तजन अंगीकार करते हैं।

मू०—उहु वेखै उना नदरि न आवै वहुता एहु विडाणु।

टी०—वह परमात्मा सबको देखता है। अर्थात् सब शरीरों में साक्षीरूप होकर सबके कर्मों को वह देख रहा है, परंतु वह आप किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता है। और बहुता होय विडाण अर्थात् यही बड़ा आश्चर्य दिखाता है। उस परमेश्वर की लीला कुछ भी किसी को जान नहीं पड़ती है।

मू०—आदेसु तिसै आदेसु।

आदि अनील अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु।

टी०—गुरुजी कहते हैं, उस परमात्मा की लीला कुछ भी नहीं लिखी जाती है उसी सर्व शक्तिमान् परमात्मा की हम वंदना करते हैं। वह परमात्मा जगत् का आदिकर्ता है और रूपादि से रहित है, व्यापक है, युग २ में एक रस रहता है।

मू०—आसणु लोइ लोइ भंडार। जो किछु पाया सो एको वार॥ करि करि वेखै सिरजणहार। नानक सचे की साची कार॥ आदेसु तिसै आदेसु। आदि अनील अनादि अनाहति जुग जुगु एको वेसु॥

फल—मंगलवार से कपास धोकर बाएँ हाथ पर रखकर जप करे जिस औरत को धोकर पिलावे उसे गर्भ रहे और अगर इतवार से कृपान पर पढ़े तो खूबसूरत लड़का पैदा होवे।

प्र०—परमेश्वर की और संतों की स्थिति का स्थान कहाँ हैं?

उ०। मू०—आसणु लोइ लोइ भंडार।

टी०—लोइ लोइ का अर्थ सब लोक हैं। अर्थात् सब लोकों में उस परमेश्वर का आसन याने स्थिति है। अथवा लोइ का अर्थ शरीर है याने शरीर २ में उसकी स्थिति का स्थान है। उसका भंडार है। याने उसका प्रकाश विद्यमान है। जो परमेश्वर के प्रेमी भक्त हैं, उनका आसन सब लोकों में और सब देशों में एक ही तरह का है और सर्वत्र उनका भंडार है जहाँ वह बैठ जाते हैं वहाँ पर ही छादन भोजन उनको प्राप्त हो जाता है।

मू०—जो किछु पाया सो एको वार ।

टी०—जिन संत महात्मायों का सर्वत्र आसन है और सर्वत्र भंडार है, उन महात्माओं ने जो कुछ कि पाना था वह सब एक ही वार परमेश्वर की उपासना और भक्ति से पा लिया है और अधिक पाने की अब उनको कामना नहीं रही है, इस वास्ते वह फिर किसी पदार्थ की प्राप्ति की भी इच्छा परमेश्वर से नहीं रखते हैं ।

मू०—करि करि वेखै सिरजणहार ।

टी०—वह परमेश्वर अपने भक्तों के योग क्षेम को आपही वार २ देखता है । जो किसी वार्ता की कसर न रही हो ।

मू०—नानक सचे की साची कार ।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं उस सचे परमेश्वर की कार जो करनी है वह सची है । अन्यथा किसी प्रकार से भी वह नहीं होती है ।

मू०—आदेसु तिसे आदेसु आदि अनील
अनादि अनाहति जुग जुगु एको वेसु ।

टी०—गुरुजी कहते हैं जो परमात्मा जगत् का आदि कारण है और रूपादि से रहित है, नाश से रहित है और हर एक युग में एक ही तरह से रहता है, उसी परमात्मा को हम वार २ वंदना करते हैं ।

मू०—इक दूजीभो लखहोहि लख होवहि लख वीस ।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ॥
एतुराहि पति पवड़ीआ चढ़ीऐ होय इकीस ।
सुणि गलां आकास की कीटा आई रीस ॥
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ॥

फल—शुक्रवार से २८ दिन पाँच सौ रोज जपै तो, जो कहै वो हसत है ।

मू०—इक दूजी भो लखहोहि ।

टी०—एक जिह्वा से यदि मनुष्य की एक लाख जिह्वा भी हो जायँ।

मू०—लख होवहि लखवीस।

टी०—फिर उस एक २ जिह्वा से लाख २ जिह्वा हो जायँ, फिर एक २ की वीस २ लाख जिह्वा हो जायँ अर्थात् एक जिह्वा से असंख्य जिह्वा हो जायँ।

मू०—लखु लखु गेडा आखीअहि एकु नामु जगदीस।

टी०—फिर एक २ जिह्वा से लखि २ वार जगदीश याने परमेश्वर के एक ही नाम को कहा जाय अर्थात् असंख्य जिह्वों करके असंख्य वार उस परमेश्वर के नाम को जपा जाय तब उस परमात्मा की कृपादृष्टि जीव पर होती है। सो एक जन्म में तो इतना होना असंभव है; क्योंकि जन्म में जीव की एक शरीर में एक मुख में एक ही जिह्वा होती है। असंख्य जिह्वा एक मुख में कदापि नहीं हो सक्ती हैं; किंतु अनेक जन्मों में अनेक जिह्वा हो सक्ती हैं सो अनेक जन्मों के तात्पर्य से गुरुजी ने भी कहा है और गीतावाक्य भी इसमें प्रमाण है।

अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततो याति परांगतिम्।

अनेक जन्मों में परमेश्वर के नाम को जपने से अंतःकरण की शुद्धि होती है। तत्पश्चात् पुरुष परमगति को प्राप्त होता है।

प्र०—मनुष्य मर कर फिर मनुष्य की योनि में ही आता है या पशु, पक्षी, मच्छर, कीट, पतंग, वृक्षादि योनियों में होकर अर्थात् चौरासी भोग कर फिर मनुष्ययोनि में आता है?

उ०—इसमें बहुत से वादियों के मतभेद हैं। सो दिखाते हैं। कोई तो कहता है, जैसे बोड के बीज से बोड का वृक्ष होता है, पीपल से पीपल का, आम से आम का, इसी तरह मनुष्य के वीर्य से मनुष्य ही होता है। मनुष्य पशु आदि योनियों में नहीं जाता है। जैसे भैंस का गोबर और घी मिलाने से बिच्छू ही पैदा हो जाते हैं। गोबर से पशु आदि नहीं पैदा होते हैं; क्योंकि वह बिच्छुओं का ही बीज कारण है, पशु आदिकों का नहीं है। इसी तरह

मनुष्य के वीर्य से मनुष्य और पशु के वीर्य से पशु होता है। इसका मत ठीक नहीं है। मनुष्य का वीर्य मनुष्य के शरीर का उपादान कारण है। या मनुष्य के आत्मा का। इसी तरह पशु पक्षी आदि में भी जान लेना। आत्मा का तो उपादान कारण किसी का वीर्य भी नहीं होसक्ता है; क्योंकि आत्मा को सब आस्तिकमतवालों ने चेतन और अनादि माना है। केवल शरीरों को ही सादि और अंतवाला माना है। फिर जड़ वीर्य और जड़ गोबरादि चेतन जीवों के कारण कदापि नहीं होसक्ते हैं; किंतु जीवों के जड़ शरीरों के ही बीजादिक कारण होसक्ते हैं। तब फिर चेतन जीव जैसे एक मनुष्य को त्यागकर दूसरे मनुष्य शरीर में चला जाता है वैसे दूसरे पशु आदि के शरीर में जा सकता है। यदि स्वभाव को आश्रयण करके कहो वीर्य का स्वभाव ऐसा ही है। एक मनुष्य से आगे दूसरा उत्पन्न होना। ये ही उसका पुनर्जन्म है और सृष्टि आदि काल में जो मनुष्य के वीर्य से उत्पन्न हुए हैं वह हमेशा ही मनुष्यों के ही वीर्य से उत्पन्न होते हैं और जो पहले ही पशु आदि के वीर्य से उत्पन्न हुए हैं वह हमेशा ही पशु आदि के वीर्य से उत्पन्न होते हैं। जैसा ईश्वर ने पहले दिन से संकेत कर दिया है वह वैसे ही होता चला जाता है, अन्यथा नहीं होता। इस वास्ते मनुष्य को पशु आदि की योनि प्राप्त नहीं होती है। सो ऐसा कथन भी नहीं बनता; क्योंकि जब कि तुम जन्मांतर मानते हो तब तुमको चेतन भी देह से भिन्न मानना पड़ा। तब तुम्हारा जो प्रथम पक्ष है एक मनुष्य से आगे दूसरा मनुष्य उत्पन्न होना ही पुनर्जन्म न रहा; क्योंकि उस पिता माता से एक व अनेक पुत्र उत्पन्न हों। उन पुत्रों के शरीर तो माता पिता के वीर्य से उत्पन्न होते हैं; परंतु उनके चेतन तो जड़ वीर्य से उत्पन्न हो नहीं सकते हैं और माता के चेतन से पुत्रों के चेतन की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती है; क्योंकि चेतन निरवयव है और पिता का या माता का चेतन भी पुत्र के शरीर में नहीं जा सकता है। यदि जाय तो पुत्र की उत्पत्ति समकाल में ही माता पिता का शरीर छूट जाना चाहिए। ऐसा तो नहीं होता है। फिर यदि पुत्र का जन्म

होना ही पुनर्जन्म माना जायगा, तो पिता के आत्मा का तुमको नाश ही मानना पड़ेगा; क्योंकि पुत्र के शरीर में तो वह आवेगा नहीं। अकृताभ्यागम दोष आवेंगे और मनुष्य को मरकर पुनर्मनुष्य जन्म भी सिद्ध नहीं होगा। इस वास्ते पूर्वोक्त मानना तुम्हारा ठीक नहीं है। और फिर वीर्य का स्वभाव ही यदि सब वार्ता में तुम मानो तब फिर जैसे बोल के वीर्य जो वृक्ष होता है उस वृक्ष के पत्ते और शाखें तथा जड़ें जिस तरह की होती हैं आगे-उस वृक्ष के बीज से जो दूसरा वृक्ष होता है उसके भी पत्ते शाखें वगैरह सब उसी तरह के होते हैं; परंतु लंबाई चौड़ाई वैसी नहीं होती। आयु भी वैसी नहीं होती; क्योंकि कोई वृक्ष पाँच सौ वरस तक रहता है और कोई पाँच वरस तक भी नहीं रहता। इसका कारण वह बीज नहीं है। यदि इन वार्तों का कारण भी बीज हो, तो सब वृक्ष एक ही तरह के ऊँचे लंबे और आयुवाले होने चाहिए, पर होते तो नहीं हैं। इसीसे साबित होता है इन वार्तों का कारण कोई विलक्षण है वैसे ही एक पिता के वीर्य से अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं। दो कान, दो आँख, दो नासिका, एक मुँह, दो भुजा, दो टाँगें, ये तो अवयव सब पिता के तुल्य ही सबके होते हैं; क्योंकि वीर्य का अपना स्वभाव इतना ही है; परंतु कोई अंधा, कोई बहरा, कोई काना, कोई रोगी, कोई अरोगी, कोई मूर्ख, कोई बुद्धिमान, कोई राजा, कोई दरिद्री, ये सब तो वीर्य का स्वभाव नहीं हैं। यदि ये भी सब वीर्य के स्वभाव हों तो सब पुत्रों में बराबर ही होने चाहिए, होते तो नहीं हैं। इसी से साबित होता है वीर्य का स्वभाव केवल शरीर तक ही रहता है, आत्मा में नहीं। आत्मा सबका जुदा २ है। फिर कोई सौ बरस जीता है, कोई पचास, कोई दस, कोई जन्मते ही मर जाता है। इससे कर्म भी सबके जुदा २ ही साबित होते हैं। और जो तुमने सृष्टि आदि काल में ईश्वर के संकेत को कहा है, जो मनुष्य का फिर मनुष्य ही जन्म होना, पशु का पशु से, पक्षी का पक्षी से, सो ऐसा कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि इसमें कोई अनुकूल युक्ति नहीं मिलती है। जिन मच्छरादि

कोई कहता है, सब शास्त्रों में से ज्योतिष शास्त्र ही अधिक प्रामाणिक माना जाता है; क्योंकि सब केवल विश्वास को ही कराते हैं प्रत्यक्ष नहीं दिखला सके हैं। ज्योतिष प्रत्यक्ष दिखला देता है। कई एक बरसों में होनेवाले सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रहों के ग्रहणों को पहिले से ही बता देता है और वह सब उसी तरह से होते हैं। अन्यथा नहीं होता।

भृगुसंहिता में से भी मनुष्य का पूर्व उत्तर जन्म मनुष्य ही निकलता है। किसी को भी भृगुसंहिता पशु आदि का जन्म नहीं बनाती है। इसी से साबित होता है मनुष्य मरकर फिर मनुष्य ही होता है, पशु कदापि नहीं होता। गीता में भी भगवान् ने पूर्व जन्म के संस्कारों से उत्तर जन्म का व्यवहार कहा है। यदि पूर्व मनुष्य जन्म होगा तब तो उत्तर मनुष्य जन्म में पूर्वले संस्कारों से व्यवहार चलेगा। यदि पूर्व पशु जन्म होगा तब उत्तर जन्म में पशु के संस्कारों से तो व्यवहार नहीं चलेगा। इस वास्ते मनुष्य को फिर मनुष्य का ही जन्म होता है, पशु का नहीं होता।

वेदांती कहता है, जन्म का हेतु अध्यास है जिसमें जिसका अधिक अभ्यास होता है उसी योनि में उसका जन्म होता है। किसी का पुत्र में, किसी का स्त्री में, किसी का और किसी में, जो अधिक मोह होता है वह उसी के गृह जन्म लेता है। अध्यास ही जन्म का हेतु है और अध्यास की निवृत्ति का नाम ही मोक्ष है। इस मत से यह भी साबित है। जिन जानवरों को मनुष्य पालते हैं जैसे हाथी, घोड़ा, गौ, भैंसे, गधा, ऊँट, तोता, मैना वगैरह इन योनियों में मनुष्य का जन्म होता है, क्योंकि जो जानवर पाला जाता है उसमें जरूर मोह हो जाता है। मरणकाल में उसमें चित्त की वृत्ति जाने से उसी योनि में जन्मता है। जड़भरत ने पूर्वजन्म में मृग के बच्चे को पाला था। इस वास्ते तीन जन्म उसको मृग के लेने पड़े। परंतु इतना जानने से यह भी साबित होता है कि मच्छर, मच्छी, कृमि आदि योनियों में मनुष्य का जन्म नहीं होता है; क्योंकि कृमि आदि में किसी का भी

मोह नहीं है। किसी की यह शंका है, पशु आदि में भी कोई तो बड़े सुखी हैं और कोई बड़े दुःखी हैं। एक बैल साँड बेफिकर फिरते हैं। एक गाड़ियों के आगे दिन भर जोते जाते हैं। एक घोड़े तबेलों में सदैव बँधे रहते हैं और मलीदे खाते हैं। नौकर उनको चौरियें करते हैं। एक घोड़े इक्कों के और टमटमों के आगे दिन भर जोते जाते हैं। एक कुत्ते गाड़ियों में चढ़ते हैं। राजों की गोद में लेटते हैं। एक कुत्ते दिन भर लाठियाँ खाते हैं। अब इन योनियों में तो कर्म करने का अधिकार है नहीं। कर्म करने का अधिकार मनुष्ययोनि में ही है। इसी से सिद्ध होता है मनुष्य के कर्मों के फल भोगने के लिये पशु आदि योनियों में जाना पड़ता है; परंतु कृमि आदि योनियों में नहीं जाना पड़ता; क्योंकि उन योनियों में इस तरह का याने पशुओं की तरह अधिक आराम और अधिक तकलीफ नहीं है। फिर पशु योनियों में लेन देन का ऋण भी चुक सकता है। मच्छरादि योनियों में नहीं। फिर मारने का बदला भी पशु आदि योनियों में चुक सकता है। जो पहले जन्म में देवी का पुजारी बन बकरों को काटता है, दूसरे जन्म में वह बकरे पुजारी बनकर उनको काटते हैं या जो अपने खाने के लिये आप जीवों को मारता है, जन्मांतर में वह उनको मारते हैं। इस तरह के बदले पशु आदि योनियों में ही चुकते हैं। मच्छरादि योनियों में नहीं चुकते हैं। इस वास्ते कर्मों के फल भोगने के लिये पशु आदि योनियों में जीव जाता है। मच्छरादि में नहीं।

प्र०—मच्छरादि का आत्मा मनुष्यादि के आत्मा से भिन्न किस्म का ईश्वर ने बनाया है या वह भी चेतन है और इन्हीं के आत्मा की तरह है ? भिन्न किस्म का तो बनता नहीं। यदि मानोगे तब देहात्म-वादी चार्वाक् का मत सिद्ध हो जायगा और वेद से भी विरोध होगा; क्योंकि वेद में जीवों के लिये तीन मार्ग लिखे हैं। जो कर्मी हैं वह पितृमार्ग में जाते, जो उपासक हैं वह देव मार्ग में जाते हैं, तीसरे अति पापी हैं वह क्षुद्र कृमि आदि योनियों में बार बार जन्मते और मरते रहते हैं।

की दो घड़ी आयु बनाई है वह साल में हज़ारों दफ़ा मरते और जन्मते हैं। जो बकरे आदि नित्य ही मारे जाते हैं, उन्होंने क्या ईश्वर का क़ुसूर किया था, जो उनको ऐसा बनाया! हस्ती हिंसकादि बहुत बरसों तक जीते हैं। उनको क्यों ऐसा बनाया? उन योनियों में कर्मों को तो तुम मान ही नहीं सकते हो। इस वास्ते युक्ति विरुद्ध तुम्हारा मानना है। इसमें कोई प्रमाण भी नहीं मिलता है। इस वास्ते बीज-वादी का मत असंगत है। और जितने शास्त्रोंवाले और पुराणोंवाले हुए हैं, ये सब तो जीव का जन्म सब योनियों में मानते हैं।

कोई नवीन मतवाला कहता है, पूर्वजन्म के मानने से पुरुषार्थ की हानि होती है। प्रारब्ध के आश्रित रहकर लोग पौरुष करने में आलसी हो जाते हैं। फिर पूर्वजन्म के मानने से किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती है। पशु आदि योनियों में जीव का जन्म मानने से जीवों को भय पैदा होता है। आज तक किसी ने आकर कहा भी नहीं है कि मैं पूर्व मनुष्य था, अब पशु हूँ। सब पुस्तकों में रोचक भयानक यथार्थ तीनों तरह के वाक्य भरे हैं। पशुयोनि की प्राप्ति बतानेवाले भयानक वाक्य हैं। ऊपर स्वर्गलोक की प्राप्ति बतानेवाले रोचक वाक्य हैं। भक्ति ज्ञान को बतानेवाले यथार्थ वाक्य हैं। वास्तव में नरक स्वर्ग इसी लोक में हैं। जो सुखी हैं, धनी और राजा बाबू हैं, वह स्वर्ग भोगते हैं। जो दुःखी, रोगी और निर्धन हैं, वह नरक भोगते हैं। आगे कोई नरक स्वर्ग नहीं है। जिन्होंने पोथियों में नरक स्वर्ग के आकार और भोग लिखे हैं, उन्होंने तो जीते जी घर बैठे २ लिखे हैं। वहाँ पर मरे बिना जाना होता नहीं। जो मरकर जाता है, वह आकर कहता नहीं। इस वास्ते स्वर्ग नरक को बतानेवाले वाक्य सब अर्थवाद हैं। यदि कहो पाप कर्मों का फल भुगाने के लिये ईश्वर ने पशु आदि योनियाँ बनाई हैं, सो भी नहीं; क्योंकि पाप का फल दुःख है, सो पशु आदि की बुद्धि जड़ है, वृक्षादिकों की अति जड़ है, उन योनियों में मनुष्ययोनि से कम ज्ञान दुःख का होता है। मनुष्ययोनि में ही दुःख-सुख का ज्ञान पूरा होता है और देखने में भी आता।

है, जो मनुष्य अति रोगी हैं और निर्धन कुटुंबी हैं उनको जो दुःख का अनुभव होता है, उतना दुःख का अनुभव पशु आदि को नहीं होता। इस वास्ते मनुष्य मर कर मनुष्य योनि में ही जाता है। पशु आदि योनियों में नहीं जाता।

कोई नवीन कहता है, संसार में कर्म करनेवाले बहुत ही थोड़े हैं। इसी संपूर्ण पृथिवी पर कुल मनुष्य दो या तीन अर्व हैं। मनुष्ययोनि में ही कर्म करने का अधिकार है। पशु मच्छरादि योनियों में कर्म करने का अधिकार नहीं है। यदि पशु आदि योनियों को फल भोगने के लिये माना जायगा, तो कर्मों के कर्ता तो बहुत ही थोड़े से हैं और फल भोक्ता पशु मच्छरादि अनंत हैं, ये सब भोक्ता कहाँ से आये हैं? लोकांतर से आना इनका वनता नहीं, और न किसी ग्रंथ में ही लिखा है। मनुष्ययोनि में इतने हैं नहीं। एक कोठरी में अनंत मच्छर आ सक्ते हैं। यदि संपूर्ण पृथिवी के मनुष्य मर जायँ तो एक कोठरी के मच्छरों की वरावर भी नहीं हो सक्ते हैं और पृथिवी के अनंत वगीचे और जंगल गरमी के दिनों में मच्छरों से भर जाते हैं। ये सब कौन सी योनि से आते हैं? मनुष्ययोनि से तो जाते नहीं फिर बरसात के दिनों में अनंत छोटे २ कृमियाँ क्यों उत्पन्न होती हैं? सरदी के दिनों में वे सब मर जाती हैं? आती कहाँ से हैं? और फिर मर करके जाती कहाँ हैं? मनुष्य योनि में तो वह सब आ नहीं सक्तीं और विना स्थूल शरीर के केवल लिंगशरीर करके जीव रह भी नहीं सक्ते हैं, तब फिर कहाँ रहते हैं? पानी के एक चुल्लू में असंख्य ही सूक्ष्म जीव रहते हैं। इसी वायु और पृथिवी अग्नि में भी रहते हैं। ये सब मनुष्ययोनि में तो कदापि नहीं जा सक्ते। फिर गोवर वगैरह में आठ दस दिन में ही अनंत जीव पड़ जाते हैं। कहाँ से आते हैं? गोवर के सूख जाने पर फिर कहाँ मरकर वह चले जाते हैं? जिस वास्ते कृमि आदि अनंत जीवों के आने जाने का पता किसी को भी नहीं लगता है इसी से सावित होता है मनुष्य का आत्मा मर कर फिर मनुष्ययोनि में ही आता है। मच्छरादि योनियों में नहीं जाता है।

जायस्व म्रियस्व ।

उनको श्रुति कहती है—पुनः पुनः जन्मो और मरो । इस वास्ते मच्छरादि वा मनुष्यादि से विलक्षण नहीं माना जाता है। किंतु चेतन ही माना जाता है । फिर यदि मच्छरादि का मनुष्ययोनि में आना नहीं माना जायगा, तो उनकी कदापि मोक्ष नहीं होगी। तब ईश्वर में भी विषम दृष्टि और अन्यायकारिता सिद्ध होगी।

उ०—मच्छरादि का मनुष्ययोनि में आना जरूर ही शास्त्रकारों ने माना है; परंतु ज्योतिष् में पूर्ववादी ने शङ्काएँ की हैं। उनका समाधान ठीक २ नहीं बनता है। विद्वानों की बुद्धि गम्य जहाँ तक थी, वहाँ तक उन्होंने अपनी २ बुद्धि को दौड़ाया; परंतु पूरा हाल किसी को भी ईश्वर की सृष्टि का न मिला । इसलिये इस सृष्टि के बारे में जो गुरुजी ने पूर्व कहा है।

जाकर्तीसृठीको साजआपेजाणैसोई ।

यही मानना ठीक है और यही भक्तों का मत है। ईश्वर के कामों में दखल नहीं देना; किंतु जो वह करे उसी पर शाकिर रहना और उसके नाम का विस्मरण कदापि न करना, यही वार्ता नारदजी ने भी कही है।

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् ।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः ॥

सदैव विष्णु का स्मरण करना चाहिए। किसी काल में भी उसका विस्मरण नहीं करना चाहिए—जो ऐसा करता है, सब विधि-निषेध उसके किङ्कर हो जाते हैं। वही पूर्ण भक्त है।

सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावयेत्समभावतः ।
हरौ करोति भक्तिं हरिभक्तः स च स्मृतः ॥

जो पुरुष संपूर्ण जीवों में विष्णु को समरूप करके जानता है। इस तरह की जो हरि में भक्ति को करता है वही हरि का भक्त कहा जाता है।

मू०—एतुराहिपतिपोडीआचढीयेहोयइकीस।

टी०—गुरुजी कहते हैं, एतराहि। यही भक्ति करने का रास्ता जो पूर्व नामस्मरण, ध्यान, चिंतन कहा है और सत्यभाषणादि जो कर्म हैं, यही भक्तिमार्ग की पौंडियाँ हैं, याने ऊपर के दर्जे को चढ़ने की सीढ़ियाँ हैं, इन्हीं सीढ़ियों द्वारा जाने से पति होय। इकीस पति याने स्वामि परमेश्वर के साथ एक बार भेंट भी हो जाती है। अन्यमार्ग में चलने से नहीं होती।

मू०—सुणिगलाआकासकीकीटाआईरीस।

टी०—जैसे आकाश में उड़ते पक्षियों को देखकर उनके सदृश कीटों को भी उड़ने की इच्छा होती है, वैसे ही व्यापक चेतन के स्वरूप को जाननेवाले जो भक्त जन हैं उनके प्रेम से उन्मत्त हुए मन जैसे परमेश्वर की तरफ उड़ रहे हैं उनके प्रेम की बातों को सुन विषयी पुरुषों की भी वैसी करने की इच्छा होती है।

दृष्टांत—पाँच आदमी दिल्ली से आते थे। उन में से चार तो घोड़ों के सवार थे और एक गधे का सवार था। आगे से आते हुए एक आदमी ने पूछा, आप लोग कहाँ से आते हैं? घोड़ों के सवार तो अभी बोलने को ही थे इतने में गधे का सवार पहले ही बोल उठा। उसने कहा, हम पाँचों सवार दिल्ली से आते हैं। उसका मतलब यह था, जो हम को ये बाकी के शायद अपने साथ बराबर सवारों में न गिनें, इसलिये वह पहले ही बोल उठा। इसी तरह जो सच्चे प्रेमी भक्त हैं, वह तो अचिह्न होकर रहते हैं; क्योंकि उन्होंने अभिमान को त्याग दिया है। जो बनावटी भक्त हैं, वह बहुतसा पाखंड करके, तिलक छापे लगाकर अपने को पाँचों सवारों में गिनवाना चाहते हैं। तब भी सच्चे भक्तों की रीस कदापि नहीं कर सके हैं; क्योंकि जो बनावटी भक्त हैं, वह कुछ बनना चाहते हैं। जो सच्चे भक्त हैं, वह कुछ भी बनना नहीं चाहते हैं। इतना ही उनका फरक़ है। जो बनना चाहता है वही मारा-पीटा जाता है।

दृष्टांत—एक गुरु और दूसरा चेला, दोनों देशाटन करते फिरते थे। एक दिन रास्ते में चलते २ चेले ने गुरु से कहा, महाराज कुछ कल्याणकारक उपदेश करो। गुरु ने कहा, बेटा कुछ बनना नहीं। यही उपदेश कल्याण का कारक है। जो कुछ बनता है, वही मारा-पीटा जाता है और बन्धन में पड़ता है। चेले ने कहा, बहुत अच्छा। आगे जाकर दोनों ने एक बगीचा देखा। दोनों उसके भीतर चले गए। उसमें एक बड़ी भारी राजा की बनवाई हुई कोठी थी। उसमें दो कमरे थे। दोनों में दो पलग बिछे थे। एक पर गुरु जाकर सो रहा और दूसरे पर चेला। जब तीसरा पहर हुआ, तब राजा बगीचे में आए। फिरते २ प्रथम उस कमरे में गए, जिसमें चेला सोया था। सिपाही ने पुकार कर चेले को जगाया। जब वह उठा, तब पूछा तू कौन है? उसने कहा, मैं साधू हूँ। सिपाही ने दो चार थप्पड़ मारकर कहा, तू कैसा साधू है? महाराज के पलँग पर सो रहा है? ऐसा कह-कर और दो एक लाठी मारकर निकाल दिया। फिर जब राजा दूसरे कमरे में गए, तब वहाँ पर गुरु सोये थे। सिपाही पुकारने लगा। वह बोले नहीं। सिपाही ने पकड़ कर उठाया, तब भी न बोले। राजा ने कहा, इनको कुछ मत आखो। बाहर कर दो; क्योंकि यह कोई महात्मा मालूम होते हैं। सिपाही ने बाहर कर दिया। रास्ते में जाकर जब दोनों इकट्ठे हुए, तब चेले ने गुरु से कहा, मेरे तो बड़ी मार पड़ी। गुरु ने कहा, तू कुछ बना होगा। उसने कहा मैं साधू बना था। गुरु ने कहा हमने जो तुमसे उपदेश किया था कुछ बनना नहीं, फिर तू क्यों बना? जो बनेगा सो मारा पीटा जायगा।

दृष्टांत में जो सच्चे भक्त हैं वह कुछ बनते नहीं हैं। जो उनकी रीस करनी चाहते हैं वही झूठे भक्त तिलक छापों करके कुछ बनते हैं।

मू०—नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं, परमेश्वर की नदर से याने कृपा-दृष्टि से ही उसकी प्राप्ति होती है। जो कूड़े हैं, याने झूठे बनावटी के

भक्त हैं उनकी कूड़ी ठीस है अर्थात् हम भक्त हैं २ इस प्रकार की जो उनकी वकवाद है वह सब झूठी है। भागवत के एकादशस्कंध में सच्चे भक्त का लक्षण कहा है।

न तस्य जन्मकर्माभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे स हरेः प्रियः॥

जिसका जन्म-संबंधी कर्मों के साथ और वर्णाश्रम जातियों के साथ आसक्ति नहीं है और इस देह में भी अहंभाव नहीं है वही हरि का प्यारा भक्त है।

दृष्टांत—एक ग्राम से बहुत से जमींदार गंगा-स्नान के लिये जाने लगे। तब एक चमार ने कहा मैं भी आपके साथ गंगा-स्नान करने जाऊँगा। उन्होंने कहा, चल, वह भी उनके साथ गया। जब गंगा में जाकर सबने स्नान कर लिया तब पंडे लोग सबको अक्षयवट के नीचे लेकर कहने लगे, एक २ फल सब कोई छोड़ दो; क्योंकि यहाँ पर फल छोड़ने का माहात्म्य है। सबने एक २ फल छोड़ दिया। तब चमार से पंडे ने कहा तुम भी किसी एक फल को छोड़ दो। चमार ने कहा, मैंने आज से बोझा ढोना छोड़ दिया। पंडा समझा, बोझा भी कोई फल होगा। सब वहाँ से लौटकर अपने ग्राम में जब चले आए, तब थोड़े दिन पीछे बिगार पड़ी। तब एक सिपाही ने उसी बोझा ढोने छोड़नेवाले चमार को बिगारी पकड़ा। उसने सिपाही से कहा, मैं जमींदारों के सामने हरद्वार में अक्षयवट के नीचे बोझा ढोना छोड़ आया हूँ। यदि तुम्हारा विश्वास न हो, तो चलके नंबरदार से पूछ लो। वह सिपाही को नंबरदार के पास पुछवाने वास्ते ले गया। नंबरदार ने कहा, तुमने बोझा ढोना छोड़ दिया है; परंतु चमारपना तो तुमने नहीं छोड़ा। बोझा ढोना कैसे छूट सका है; क्योंकि बोझा ढोना चमार का धर्म है। सो तो तुम बनेही हो। दृष्टांत में सब कुछ छोड़-छाड़ के भक्त बने पर भी जब तक शरीरादि से अभिमान नहीं छूटता है अर्थात् चर्म की देह में जिसका अहंभाव का अभिमान बना है वही

संसारी कहा जाता है। वह भक्त कैसे हो सक्ता है? उसकी भक्ति के मार्ग में कूड़ी ठीम है याने लाम है।

प्र०—ये जो वैष्णव और आचारी हैं ये तो अपने को ही भक्त मानते हैं और ऊपर से बड़ी क्रिया को याने आचार को करते हैं। ये सब भक्त हो सक्के हैं वा नहीं?

उ०—ये सब सच्चे भक्त कदापि नहीं हो सक्के हैं; क्योंकि भक्ति के स्वरूप को और ईश्वर के स्वरूप को ये जानते ही नहीं हैं। केवल चर्म के शरीर में ही इनका अध्यास बना है। रात्रि-दिन उसी को धोते माँजते रहते हैं। जब ये रसोई बनाते हैं, तब लकड़ियों को भी धोकर जलाते हैं और किसी के भी सामने भोजन नहीं करते हैं और दगाने से अपनी गति मानते हैं। ये जब चलते हैं तब घड़ी घंटे वग़ैरह एक गधे के बोझ को काँधे पर धरकर चलते हैं। ये क्या जानें भक्ति के स्वरूप को। और आचार के स्वरूप को केवल पाखंड करने को ही ये जानते हैं। जो बाहर की स्नानादि क्रिया है वह तो केवल शरीर की सफाई के लिये करनी लिखी है। उसका फल केवल शरीर की आरोग्यता है। मूर्खों ने उसका फल स्वर्ग मान रक्खा है। कपिलगीता में कहा है—

जलस्नानं मलत्यागि भस्मस्नानाद् वहिः शुचिः।
मन्त्रस्नानाच्छुचिश्चान्तर्ज्ञानस्नानात्परम्पदम् ॥

जल से स्नान करने से शरीर का मल दूर होता है। भस्म लगाने से शरीर की शुद्धि होती है। मंत्र के जपने से चित्त की शुद्धि होती है। ज्ञानरूपी स्नान से परमपद की प्राप्ति होती है।

अन्तःस्नानविहीनस्य वहिःस्नानेन किं फलम्।
मलयाचलसम्भूतो न वेणुश्चन्दनायते ॥

जो अंतर स्नान से रहित है उसको बाहर के स्नान करने से कुछ भी फल नहीं होता। मलयाचल की सुगंधि से जैसे बाँस चंदन नहीं

होता। और अनेक ग्रंथों में बाहर के स्नानादि का फल शरीर की आरोग्यता कही है मन की शुद्धि नहीं कही है। सो मन की शुद्धि शुद्ध अन्न खाने से होती है। जो द्रव्य सत्यधर्म से कमाया जाता है, उस द्रव्य से जो अन्न खरीदा जाता है वह शुद्ध अन्न होता है। उस सत्य का असर पहले द्रव्य में आता है, फिर अन्न में, फिर उस शुद्ध अन्न का असर खानेवाले के मन में होता है। उसी से उसका चित्त शुद्ध हो जाता है।

दृष्टांत—एक महात्मा देशाटन करते २ पहाड़ में जा निकले। जब भोजन का समय हुआ तब एक किसान के द्वार पर भिक्षा के लिये गए। उस किसान ने उनसे कहा, मेरा अन्न अशुद्ध है। आपके खाने लायक नहीं है; क्योंकि एक दिन दूसरे की पारी का जल भूल करके इसको दिया गया था। इस वास्ते अशुद्ध होगया है। मेरे भाई का अन्न शुद्ध है। आप उसके गृह में आज भिक्षा करें। साधु ने उसके भाई के गृह में भोजन किया। जब भोजन करके वहाँ से चले, तब रास्ते में उसके चित्त में भूत भविष्यत् की बातें फुरने लगीं और वह एकांत में बैठकर ध्यान करने लगे। तब उनकी समाधि लग गई। ऐसा उस अन्न का असर हुआ। यह तो शुद्ध अन्न पर दृष्टांत है। अब अशुद्ध अन्न पर दृष्टांत को कहते हैं।

दृष्टांत—एक पंडित बड़ा विचारशील था। कभी भी नीच जातिवाले का और राजा का अन्न नहीं खाता था। एक दिन रानी ने उसको कोई बात पूछने के लिये बुलाया। जब रानी पंडितजी से बातचीत करके भीतर गई, तब उसके गले का मोती-हीरों का हार बाहर रह गया। पंडित ने उठाकर जेब में डाल लिया। जब पंडित ने घर में आकर कपड़े उतारे, तब जेब से वह हार गिरा। उस हार को देखकर पंडित को बड़ा शोक हुआ कि ऐसा कर्म मुझसे क्यों हुआ? तब पंडित ने अपनी स्त्री से पूछा, आज अन्न कहां से आया था? उसने कहा, एक सुनार सीधा दे गया था। उस सुनार को बुलाकर पंडित ने पूछा, तुम अन्न कहाँ से लाए थे? उसने कहा, मैंने एक भूषण में

स थोड़ा सोना चुराया था। उसको बेचकर अन्न खरीदकर कुछ आपके घर में दिया, बाक़ी का अपने घर ले गया था। तब पंडित ने कहा, उसी अशुद्ध अन्न ने ऐसा कर्म कराया। पंडित ने हार को रानी के पास भेज दिया और प्रायश्चित्त किया। अशुद्ध अन्न का ऐसा प्रभाव है। जो तुरंत चित्त को पापी कर देता है। इस वास्ते शुद्ध अन्न खाने से मन की शुद्धि होती है और अशुद्ध अन्न खाने से मन की अशुद्धि। इसी वास्ते धर्मशास्त्रों में अन्न का विचार बहुत सा किया है। राजा के, वेश्या के, सुनार के, चमार के, मदिरा बेचनेवाले के, कसाई के, अन्न का निषेध किया है। जो गायत्री की उपासना से रहित आचारभ्रष्ट है, उसी को शूद्र कहा है। कुकर्मी ब्राह्मण को शूद्र से भी अधम कहा है। जो अधर्म करके द्रव्य को उत्पन्न करता है, वह शूद्र है। शूद्र नाम अज्ञानी, मूर्ख, पापी का है। कोई जातिविशेष का नहीं है। पापी के अन्न खाने से चित्त पापी हो जाता है। इस वास्ते धर्मी का अन्न शुद्ध होता है। बाहर की शुद्धि से, चौके देने से अन्न की शुद्धि नहीं होती है। लोगों ने पाखंड को आचार मान रक्खा है। इसी वास्ते बाहर की शुद्धि करनेवालों के चित्त अति मलीन, कुटिलता से भरे रहते हैं; क्योंकि वह असली शुद्धि को जानते ही नहीं। यदि बाहर की शुद्धि से अन्नादि की शुद्धि मानी जायगी, तब कोई भी पदार्थ शुद्ध नहीं हो सकेगा। जितना अन्न है, ये सब कृमियों और मक्खी तथा मच्छरों करके जूठा किया हुआ होता है। वही मक्खी मच्छर मैले पर बैठकर, फिर रसोई में आकर बैठते हैं। फल भी सब पक्षी आदि के जूठे किए हुए होते हैं। काबुल से जितना किसमिश वग़ैरह मेवा आता है, सब म्लेच्छों का जूठा किया हुआ होता है। दूध प्रथम बछड़ों का जूठा किया हुआ होता है, फिर दूध और हलवाइयों की दुकानों में सब बिलार, मूस वग़ैरह और उनके शागिर्द सब जूठे करते रहते हैं। चीनी जब बनती है, तब हज़ारों जीव उसी में पिसकर चीनी रूप हो जाते हैं। फिर जितनी तरकारियां आलू, बैंगन वग़ैरह उत्पन्न होती हैं, सबमें मैला पड़ता है। मैला पड़े बिना

कोई भी साग भाजी अच्छी नहीं होती है। कारण के अशुद्ध होने से कार्य भी अशुद्ध होता है, तब कैसे कोई वस्तु शुद्ध हो सकती है, कदापि नहीं हो सकती है इस वास्ते जो सचाई से द्रव्य उपार्जन करके उस द्रव्य से जो अन्नादि लिये जाते हैं वही शुद्ध हो सकते हैं। जो बाहर की शुद्धि से शुद्धि मानते हैं वह पाखंडी हैं, इसी से उनके मलिन चित्त हैं। बाहर की शुद्धि से अंतर की शुद्धि कदापि नहीं होती, इस वास्ते आचार का लाभ भी उनका झूठा है। भक्ति नाम प्रेम का है, न कि आचार का है। न दगाने का नाम भक्ति है। धर्मशास्त्र में दगाए हुए के हाथ का जल पीना भी नहीं लिखा है। सो दिखाते हैं। पृथ्वी चन्द्रोदय में लिखा है—

शङ्खचक्रादिचिह्नं च गीतनृत्यादिकं तथा।

शूद्रजातेरयं धर्मो न जातु स्याद् द्विजन्मनः॥

शंख चक्रादि के भुजों पर चिह्न लगाने और नाच-गा करके जीविका करनी, ये सब कर्म शूद्र जाति के लिये हैं। द्विजों का इन कर्मों में अधिकार नहीं है।

शङ्खचक्रे मृदा कुर्यात्तथा तप्तायसेन वा।

शूद्रवत्स बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

मृत्तिका के अथवा तप्त लोहे के शंख चक्रादि के जो द्विज भुजों पर चिह्नों को करता है, वह संपूर्ण द्विज कर्मों से बाहर हो जाता है।

यदि दगाने से विष्णुरूप हो जाय तब सब बैल ऊँट वगैरह भी दगाए जाते हैं वह भी विष्णुरूप हो जाने चाहिए; पर होते तो नहीं। इस वास्ते दगाने से कदापि भक्त नहीं हो सकता है। ईश्वर के स्वरूप को भी यथार्थ रूप से ये नहीं जानते हैं; क्योंकि वेद में और स्मृतियों में ईश्वर को व्यापक चेतन लिखा है, उसको परिच्छिन्न मानकर ये पूजा करते हैं इस वास्ते इनकी जो भक्ति-विषयक ठीस है याने लाभ है, वह कूड़ी है याने झूठी है। जो ईश्वर को व्यापक चेतन मानकर सच्चे दिल से पूजता है, वही सच्चा भक्त है और सब पाखंडी हैं।

मू०—आखणि जोरु चुपै नह जोरु।
जोरन मंगणि देणिनह जोरु॥
जोरुन जीवणि मरणि न जोरु।
जोरुन राजि मालि मनि सोरु॥
जोरुन सुरति ज्ञानि वीचारि।
जोरुन जुगति छुटै संसारु॥
जिसु हथिजोरु करिवेखै सोय।
नानक उत्तमु नीचु न कोय॥

फल—दोपहर के वक्त एक हजार रोज शनीचरवार २१ दिन तक जपे तो इतनी शक्ति हो कि शहर तक बोर देय।

मू०—आखणि जोर चुपै नह जोर।

टी०—आखण नाम कथन का है। चुप नाम मौन का है। अर्थात् कथन करने की शक्ति और मौन रहने की शक्ति भी जीव के हाथ में नहीं है। तात्पर्य यह है, कविता करने की या ग्रंथ रचने की या ईश्वर की स्तुति करने की शक्ति भी जीव के अधीन नहीं है; किंतु ईश्वर के अधीन ही ये सब शक्तियाँ हैं। कहा भी है—

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वंदे परमानन्दमाधवम्॥

जो गूँगे को अर्थात् अनबोले को वाचाल कर देता है, और जो पंगु को पर्वत के उल्लंघन करने में सामर्थ्य को देता है उस परम आनंद रूप माधव की मैं वंदना करता हूँ। इत्यादि अनेक वाक्यों से साबित होता है कि परमेश्वर को ही कथन करने की शक्ति देने की सामर्थ्य है।

मू०—जोन मंगणि देणि नह जोरु।

टी०—जोर नाम बल का है, याने शक्ति का है। अर्थात् माँगने की और देने की शक्ति भी जीव में नहीं। यह परमेश्वर किसी से भीख मँगाता

है, किसी को दाता वनाता है। अर्थात् कर्मों के अनुसार किसी को माँगने की शक्ति, किसी को दान करने की शक्ति वह देता है; क्योंकि विना इसके संसार का व्यवहार नहीं चलता है।

मू०—जोर न जीवणि मरणि नह जोर।

टी०—वहुत जीना या मरना भी जीव के हाथ में नहीं है।

मू०—जोरु न राजि मालि मनि सोरु।

टी०—राज भोग लेने की भी शक्ति जीव में नहीं है और मन के सोर याने संकल्प करने की भी शक्ति जीव में नहीं है। अथवा मन के संकल्पों करके राज के भोगों के लेने की और भोगने की भी शक्ति जीव में नहीं है। वहुत से निर्धन राजा होने का ही संकल्प करते रहते हैं परंतु राजा नहीं हो सकते हैं। वहुत से राजों के पास राज माल विद्यमान भी है; परंतु वे रोगादि ग्रस्त होने से राज के भोगों को नहीं भोग सक्ते हैं। वहुत राजा धनियों के घरों में उत्पन्न होकर छोटी आयु में ही मर जाते हैं। राज के भोगों को नहीं भोग सक्ते हैं। इसी से साबित होता है कि जीव के हाथ में यह शक्ति नहीं है; किंतु ईश्वर के ही अधीन है।

मू०—जोरु न सुरती ज्ञानि विचारि।

टी०—सुरति नाम वुद्धि का है। केवल वुद्धि के वल से ज्ञान और विचार की प्राप्ति कर लेना जीव के अधीन नहीं है। अथवा वुद्धि के वल से संसार में ज्ञानी और विचारवान् कहाने की शक्ति भी जीव के अधीन नहीं है।

मू०—जोरु न जुगति छुटै संसारु।

टी०—शास्त्रोक्त युक्ति के जानने से और कथन करने से भी इस जीव का जन्म मरणरूपी संसार नहीं छूटता है। विवेकचूड़ामणि में कहा है--

न गच्छति विना पानं व्याधिरौषधशब्दतः।
विना परोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते॥

औपध के विना पान करने से, केवल नाम लेने से रोग दूर नहीं होता है। इसी तरह विना अपरोक्ष अनुभव के केवल ब्रह्म के शब्दों को कथन करने से भी पुरुष मोक्ष को नहीं प्राप्त होता है।

अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिलभूश्रियम्।
राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमर्हति ॥

शत्रुओं का संहार न करके, राज की विभूति को प्राप्त होकर जो कहता है, मैं राजा हूँ, वह राजा नहीं हो सक्ता है। वैसे ही जो काम, क्रोधादि शत्रुओं का नाश नहीं करता है, केवल बातों से संसार से छूटना चाहता है, उसका संसार कभी भी नहीं छूट सक्ता है।

मू०—जि सु हथि जोरु करि वेपै सोय।

टी०—जिस परमेश्वर के हाथ में जोर है अर्थात् जिस परमेश्वर के अधीन जोर याने सब तरह की शक्ति है। करवेपै सोय सोई अपनी शक्ति को करके याने जीवों में देकर आप ही फिर उसको देखता है। जीव का अपनी कोई भी सामर्थ्य नहीं है, जो जीव अपनी सामर्थ्य का अहंकार करता है, वह मूर्ख है। या जो अपनी जाति के उत्तमपने का अहंकार करता है, वह अति मूर्ख है।

मू०—नानक उत्तमु नीचु न कोय।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं, इस संसार में न कोई उत्तम है और न कोई नीच है। गुणों से पुरुष उत्तम और नीच होता है। सो गुण भी परमेश्वर के अधीन हैं, जिसको चाहे दे दे। कहा भी है—

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥

गुणों से पुरुष उत्तमता को प्राप्त होता है। ऊँचे आसन पर बैठने से उत्तमता को नहीं प्राप्त होता है। घर के शिखर पर बैठने से क्या कौवा गरुड़ हो जाता है? कदापि नहीं होता।

गुणैः पूजा भवेत्पुंसां नैकस्माज्जायते कुलात्।

चूडारत्नं शशीशम्भोर्यानमुच्चैःश्रवा हरेः ॥

गुणों से ही पुरुष की पूजा होती है। उत्तम कुल में उत्पन्न होने से पुरुष की पूजा नहीं होती है। एक ही समुद्र से चंद्रमा और उच्चैःश्रवा नाम करके घोड़ा उत्पन्न हुआ है। चंद्रमा गुणों से महादेव के मस्तक पर धारण किया गया है और उच्चैःश्रवा नीचे का वाहन बना है। जाति और कुल करके कोई भी उत्तम नीच नहीं होता, किंतु गुणों करके ही होता है। भागवत के एकादश स्कंध में भी यही वार्ता कही है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

जिस पुरुष के वर्ण का अभिव्यंजक जो लक्षण कहा है यदि वह लक्षण अन्य किसी में भी दिखाई पड़े, उसको उसी वर्णवाला जान लेना। तात्पर्य यह है, ब्राह्मण का जो लक्षण कहा है वह शूद्र में हो और शूद्र का लक्षण ब्राह्मण में, तब ब्राह्मण को शूद्र जानना और शूद्र को ब्राह्मण जानना। इसी वास्ते गुरुजी का कथन ठीक है। वास्तव में उत्तम और नीच कोई भी नहीं है।

मू०—राती रुती थिती वार।
पवण पाणी अगनी पाताल ॥
तिस विचि धरती थापि रखी धर्म्मशाल।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग ॥
तिनके नाम अनेक अनंत।
कर्मी कर्मी होय वीचारु ॥
सचा आपि सचा दरवारु।
तिथै सोहनि पंच परवाणु ॥
नदरी करमि पवै नीसाणु।
कच पकाई उथै पाइ ॥

नानक गइया जापै जाय ॥

फल—रविवार से एक हज़ार रोज़ अमृतवेला में पंद्रह दिन तक जपे तो जोतिष इलम हो और सूरजलोक देखे, मंगल से जपे तो प्रेत दूर हो या लड़का हो।

मू०—राती रुती थिती वार।

टी०—जीवों के आराम के लिये परमेश्वर ने रात्रि और वसंत से लेकर षट्ऋतु और प्रतिपदा से लेकर पंद्रह तिथियाँ और एतवार से लेकर सात वार बनाए हैं। सब जीव दिन भर उदर पूर्णता के लिये परिश्रम करके थके जाते हैं। इंद्रियादि भी सब थकित हो जाती हैं। यदि रात्रि न होती, तब इनका परिश्रम कैसे दूर होता। बिना परिश्रम के दूर होने से पुरुष को सुख भी नहीं मिलता है। जीवों के सुख के लिये रात्रि बनी है। यदि हमेशा ही एक ऋतु रहती, तब भी सुख न होता और सब क़िस्म के मेवाजात तथा अन्नादि भी न होते। इस वास्ते षट्ऋतु उसने बनाई है, जिसमें जीवों के सुख के लिये सभी पदार्थ नए २ भोग उत्पन्न हों और जो तिथि वारों को न बनाता, तब पक्ष मास बरस का हिसाब भी न होता, तब व्यवहार में कसर पड़ती रहती; किंतु व्यवहार न चलता। व्यवहार की सिद्धि के लिये परमेश्वर ने तिथि वारादि को बनाया है। तात्पर्य यह है, रात्रि दिन, तिथि वारादि भी जीवों पर बड़ा उपकार करते हैं और ईश्वर के रचे हुए हैं। इस वास्ते ये सब कदापि बुरे नहीं हो सकते हैं। बुरा वह कहाता है, जो किसी भी काम में न आवे और किसी पर भी उपकार न करे और किसी को भी प्यारा न हो। सो ऐसा तो संसार में कोई भी पदार्थ नहीं है।

मू०—पवण पाणी अगनीपाताल।

टी०—पवन, वायु, जल, अग्नि और पाताल ईश्वर ने जीवों के आराम के लिये बनाया है; क्योंकि ये सब जीवों पर बड़ा उपकार करते हैं। वायु जब चलती है, तब जीवों के प्राणों की रक्षा होती है। जब कि मुख और नासिका द्वारा भीतर की वायु बाहर आती है,

तब भीतर की दुर्गंधि को बाहर फेंकती है और बाहर की अच्छी वायु को भीतर ले जाती है। भीतर की वायु बाहर की वायु से क्षण क्षण में टक्कर खाती रहती है। अगर पाँच मिनट तक भी बाहर की वायु बंद हो जाय तब कोई जीव भी न जी सके। यदि किसी आदमी को निर्वात देश में बंद किया जाय, तब वह पाँच मिनट तक भी न जी सकेगा। वायु ही सब जीवों के आयु की रक्षा करनेवाली है। सब शरीरों को प्राण वायु ने उठाया हुआ है। फिर गरमी के दिनों में जब शीतल वायु चलती है, तब सब जीवों को बड़ी प्यारी लगती है। वायु ही खेती आदि सुखाती है, वस्त्रादि को भी सुखाती है। फिर पृथिवी, चंद्रमा, सूर्य आदि और जितने तारे हैं सबको वायु ही निराकार आकाश में घुमा रहा है। वायु जीवों पर बड़ा उपकार करती है, जीवों को प्यारी भी है, इस वास्ते वायु कदापि बुरी नहीं हो सक्ती है। जल भी जीवों का बड़ा उपकार करता है। अन्न यदि सोलह दिन तक भी न मिले और जल मिलता रहे, तो पुरुष नहीं मरता। यदि अन्न मिले और जल न मिले, तो पुरुष सोलह पहर तक भी नहीं जी सक्ता है। श्रुति में प्राणों को जल का विकार लिखा है इस वास्ते जल ही सब जीवों के जीव का हेतु है। जितने अन्न तथा मेवा और जितनी कि ओषधि आदि हैं, सब जल से ही उत्पन्न होती हैं। शरीरों और वस्त्रों की सफाई भी सब जल से ही होती है। इस वास्ते जल भी जीवों का बड़ा उपकार करता है। अग्नि भी जीवों का बड़ा उपकार करती है। यदि अग्नि न होती, तो रसोई भी न बनती। फिर तेज से ही सब खेती पकती हैं। जाड़े के दिनों में अग्नि ओषधिरूप होती है। सबके उदर में अन्नादि को अग्नि ही पकाती है। रूपादि को भी अग्नि ही बनाती है। अग्नि जीवों पर बड़ा उपकार करती है इस वास्ते कदापि बुरी नहीं हो सक्ती। पाताल इसमें दो पद हैं। एक पा, दूसरा ताल। पा का अर्थ रक्षा करना है, और ताल का अर्थ जलाशय है। पाति रक्षति तालेनेति पातालः। जल अपने रहने के स्थानों से और कूप, तड़ाग, नदी आदि से जीवों की रक्षा करे

उसका नाम पाताल है, सो जलमात्र का नाम पाताल हुआ। जलमात्र जीवों को सुख देता है, इस वास्ते जलमात्र उपकारक है, बुरा नहीं हो सक्ता है। जैसे जल जीवों पर उपकार करता है वैसे जल से भी अधिक पृथिवी उपकार करती है। यदि पृथिवी न होती, तो जल कैसे रह सक्ता? पृथिवी जीवमात्र को निवास का स्थान देती है, सब अन्नों को तथा ओपधि, वनस्पति आदि को समय २ पर उत्पन्न करती है, उनके बीजों को अपने में रखती है इसलिये पृथिवी भी कदापि बुरी नहीं हो सक्ती है। पृथिवी से भी आकाश अधिक उपकार करता है, जो सारे ब्रह्मांड को अपने में जगह दे रहा है, सब जीवों को अवकाश देता है। जब कि पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश ये पाँचों भूत किसी प्रकार से बुरे साबित नहीं हो सक्ते हैं, तब फिर इनके कार्य जो पर्वत, वन, नदियाँ आदि हैं, तथा यावत् मनुष्यों के शरीर हैं, वे कैसे बुरे हो सक्ते हैं; किंतु कदापि नहीं हो सक्ते हैं। पर्वतों में भी अनेक प्रकार की खानें और मेवे तथा लकड़ी ओपधि उत्तम-उत्तम स्थान, सफेद रंग के पत्थर उत्पन्न होते हैं। फिर जो हिमालय वगैरह ऊँचे पर्वत हैं, उन पर बरफ जमा रहता है। यदि वह न हो, तो नदियों में जल बारह महीना कहाँ से आवे? इस वास्ते पर्वत भी बहुत-सा उपकार करते हैं, वह भी बुरे नहीं हो सक्त हैं। वनों में भी अनेक प्रकार की ओपधियाँ और लकड़ियाँ उत्पन्न होती हैं और अनेक प्रकार के जीवों को रहने के लिये वन जगह को देते हैं। वन भी बड़ा उपकार करते हैं, वह भी कदापि बुरे नहीं हो सक्ते हैं। नदियाँ आदि भी बहुत उपकार करती हैं। निम्न देश की खेतियाँ इनसे ही सींची जाती हैं। बिना हो परिश्रम से सब जीव बड़े आराम से नदियों में जल पान कर सक्ते हैं। स्नान वगैरह क्रिया भी नदियों में यत्न बिना ही हो सक्ती है, अनेक प्रकार की तिजारत भी नौका द्वारा नदियों से होती है। इसलिये नदियाँ भी कदापि बुरी नहीं हो सक्ती हैं। तब फिर पाँचों भूतों के कार्य जो मनुष्यादि के शरीर हैं ये सब कैसे बुरे हो सक्ते हैं? किंतु कदापि बुरे नहीं हो सक्ते हैं।

प्र०—जब कि कोई भी जीव बुरा नहीं हो सकता है, तो फिर परस्पर एक दूसरे जीव को एक दूसरा बुरा क्यों कहता है ? कोई मनुष्य ईश्वर से रचे हुए मक्खी, मच्छर, खटमल, जोंक, सर्प, बिच्छू आदि को बुरा बताते हैं और कोई-कोई आपस में ही एक दूसरे मनुष्य को बुरा बताते हैं और कोई-कोई रोगादि को तथा मरने को बुरा बताते हैं। इसमें क्या कारण है ?

उ०—जो ईश्वररचित मक्खी मच्छरादि को बुरा बताते हैं, वह अत्यंत स्थूल बुद्धिवाले हैं। ईश्वर ने कोई जीव भी बुरा नहीं रचा है। बुरे का लक्षण पीछे हम कह आए हैं। जो किसी काम में न आवे और किसी पर उपकार भी न करे और किसी को भी प्यारा न हो वह बुरा कहलाता है। ऐसा तो संसार में कोई भी पदार्थ और जीव नहीं है, तो फिर कैसे कोई बुरा हो सकता है; किंतु कदापि नहीं हो सकता है। सो दिखाते हैं। मक्खी, मच्छर वगैरह जीव सब दुर्गंधि को ही खाते हैं और सुगंधि को साफ करते हैं। यदि ईश्वर मक्खी मच्छरादि को न बनाता तो संसार दुर्गंधि से भर जाता। उससे फिर अनेक प्रकार के रोगादि उत्पन्न होते। लोगों का जीना भी कठिन हो जाय। मक्खी मच्छरादि मनुष्यों पर बड़ा उपकार करते हैं इसवास्ते ये कदापि बुरे नहीं हो सकते हैं। खटमल, जोंक वगैरह खराब खून को पीते हैं। ये खून की सफाई करते हैं। इसलिये ये भी बुरे नहीं हो सकते हैं और दो प्रकार की हवा अच्छी और बुरी मिली हुई चलती है। सर्प का स्वभाव है हमेशा बुरी हवा को ही खाता है। अच्छी को छोड़ना रहता है। हवा की सफाई सर्प करते हैं। यदि सर्प हवा की सफाई न करें तो तमाम हवा खराब हो जाय और जीवों का जीना भी कठिन हो जाय। सर्प भी बड़ा उपकार करते हैं। बुरे नहीं हो सकते हैं। बिच्छू भी बुरा नहीं हो सकता है; क्योंकि बिच्छू का भी तेल निकलता है, जो असाध्य रोगों के काम में आता है। बिच्छू और साँप में बहुत से गुण भरे हैं। ये भी बुरे नहीं हो सकते हैं। गौ, भैंस, बकरियाँ भी उपकार करती हैं। इनके दूध से मनुष्य पलते हैं। घोड़े हाथी आदि

सवारी करने का काम देते हैं। गधे, ऊँट वगैरह लादने का काम देते हैं और भी जितने पशु हैं सब मनुष्यों पर बड़ा उपकार करते हैं। सबमें अनेक गुण भरे हैं। इस वास्ते कोई भी पशु बुरा नहीं हो सकता है। जितने पक्षी आदि ईश्वर ने रचे हैं इनमें भी अनेक प्रकार के गुण भरे हैं। ये सब भी बुरे नहीं हो सकते हैं। जितने जड़-पदार्थ गोबर, मैला वगैरह हैं, ये सब भी खेतों के काम में आते हैं। इनमें भी बहुत गुण भरे हैं। अंग्रेज़ लोग हड्डियों से भी गुणों को निकालते हैं। याने उनको दियासलाई वगैरह के कामों में लाकर लाखों रुपया उनसे पैदा करते हैं। वह भी कदापि बुरे नहीं हो सकते। तब आदमी कैसे बुरे हो सकते हैं, जिनमें कि ईश्वर ने पशुओं से विलक्षण शक्तियाँ भरी हैं। जो बड़ी २ उन्नति कर सकते हैं। जिन्होंने बड़ी २ अपूर्व विद्या निकाली हैं वह कैसे बुरे हो सकते हैं? किंतु अपने से भिन्न को जो बुरा और नीच समझता है वह ख़्याल ही बुरा है; क्योंकि आत्मा सबका शुद्ध है और सबके शरीर के पाँचभूतों के विकार भी बराबर हैं। फिर कैसे कोई बुरा हो सकता है? जब किसी के चित्त में बुराई का ख़्याल उठता है, तब तुरंत उसी समय दूसरे के चित्त में भी बुराई आजाती है, वही दोनों को बुरा बना देती है।

दृष्टांत है—एक बुढ़िया अपनी युवा अवस्थावाली लड़की को साथ लिये किसी ग्राम को जाती थी। जब वह चलते-चलते थक गई तब सड़क के किनारे बैठ गई। थोड़ी देर के बाद एक साँड़िनी का सवार पीछे से आ निकला। बुढ़िया ने उस सवार से कहा बेटा थोड़ी दूर तक मेरी लड़की को तू अपने पीछे सवार कर ले। आगे जाकर इसको उतार देना। इतने में मैं भी आ जाऊँगी। सवार ने कहा, मैं दूसरे की लड़की अपने साथ सवार नहीं करूँगा। ऐसा कह कर सवार चला गया। जब दूर गया तब सवार के चित्त में आया, ऐसी सुंदर भूषण पहने हुई लड़की को बुढ़िया सवार कराती थी अगर हम उसको सवार करके अपने घर ले जाते तब बुढ़िया आप ही रोती गाती चली जाती। हमको मुफ़्त में स्त्री मिल जाती। फिर उसने विचारा अभी भी कुछ नहीं गया। अगर

हम यहाँ पर ठहर जायँ, तो बुढ़िया आ मिलेगी। सवार खड़ा हो गया, इधर बुढ़िया के चित्त में आया कि मैं बड़ी मूर्खता करती थी। यदि वह लड़की को लेकर कहीं चला जाता, तो मैं क्या करती? ऐसा विचार करती हुई, बुढ़िया भी उसी जगह पर पहुँची। वहाँ सवार खड़ा था। बुढ़िया को देख कर सवार ने कहा, माई अपनी लड़की को मेरे पीछे चढ़ा दे मैं तेरी खातिर यहाँ पर खड़ा हूँ। बुढ़िया ने कहा बेटा जो तेरे कान में कह गया है वह मेरे कान में भी कह गया है। अब जा, मैं तेरे पीछे नहीं चढ़ाती। सवार शर्मिंदा होकर चला गया। तात्पर्य यह है, आदमी कोई भी बुरा नहीं है। जब एक के चित्त में बुरा ख़्याल खड़ा होता है, तब तुरंत ही दूसरे के चित्त में भी बुरा ख़्याल उत्पन्न हो जाता है। वह ख़्याल ही बुरा है।

दृष्टांत—दो महात्मा साधु देशाटन करते हुए एक साहूकार बनिये के गृह जा ठहरे। एक महात्मा स्नानादि क्रिया करने गए। दूसरे आसन पर ही बैठे रहे। तब साहूकार ने उन आसन पर बैठे हुए महात्मा से पूछा, यह जो महात्मा स्नान करने को गए हैं, सो कैसे हैं? उसने कहा, बड़े मूर्ख, निरे बैल ही हैं। सुनकर सेठ चुप हो रहा। थोड़ी देर पीछे वह स्नान करके अपने आसन पर आ बैठे। अब दूसरे महात्मा स्नान करने गए। तब फिर सेठ ने उन आसन पर बैठे हुए महात्मा से पूछा, ये जो स्नान करने को गए हैं, सो कैसे हैं? तब उन्होंने कहा, बड़े मूर्ख, केवल गधे ही हैं। यह सुन सेठ चुप हो रहा। जब भोजन का समय हुआ तब सेठ ने दो दोंरे में भूसा और तूड़ी भर कर दोनों के आगे धर दिया। याने एक के आगे भूसा धर दिया और दूसरे के आगे तूड़ी धर दी। दोनों साधु सेठ की तरफ़ देखने लगे। सेठ ने कहा, मेरा इसमें क्या कसूर है? आपने इनको बैल बताया है सो बैल का खाना भूसा है और आपने इनको गधा बताया है सो गधे का खाना तूड़ी है। यह सुनकर दोनों शर्मिंदे हो गये। फिर सेठ ने दोनों को सुंदर भोजन कराकर रुख़सत किया। इस दृष्टांत का प्रयोजन यही है कि जब एक के चित्त में दूसरे की बुराई

आती है, तब तुरंत दूसरे के चित्त में भी उसकी बुराई आती है। अतः बुराई का फुरना ही बुरा है। असल में आदमी कोई भी बुरा नहीं है।

दृष्टांत—एक राजा को वैराग्य हुआ। उसने अपने मंत्रियों से पूछा कोई ऐसा महात्मा बताओ जिसके पास जाकर मैं अपने चित्त के संदेह को दूर करूँ। मंत्रियों ने कहा, नगर के बाहर वन में एक बड़े महात्मा रहते हैं, आप उनके पास जाइए। राजा कुछ द्रव्य लेकर उनके पास गया और उनसे उपदेश लेकर, राजा ने उनके आगे द्रव्य को रक्खा तब उन्होंने कहा, राजन्! इस द्रव्य के हम अधिकारी नहीं हैं; क्योंकि हम जंगल में रहते हैं। हमारे द्रव्य रखने की जगह भी नहीं है। तुम इस द्रव्य को ले जाकर किसी अधिकारी को दे देना। राजा द्रव्य को लेकर एक मठधारी महात्मा के पास गया। उनके आगे उस द्रव्य को रखकर कहा हमको उपदेश कीजिये। उन्होंने द्रव्य को ले लिया और राजा को उपदेश किया। तब राजा ने विचार किया उपदेश तो एक ही तरह का है। केवल द्रव्य के न लेने और लेने का फर्क है। राजा ने कहा महाराज! जो उपदेश आपने किया है, वही उपदेश वन में जो महात्मा रहते हैं, उन्होंने भी किया था। इसमें क्या कारण, जो उन्होंने द्रव्य को नहीं लिया था और आपने लिया है। उन्होंने कहा, राजन्! जो वन में रहते हैं वह बड़े महात्मा और त्यागी हैं। वह द्रव्य को लेकर क्या करते? ये तो उपाधि हैं। उनके उपाधि के रखने की जगह भी नहीं है और हम तो मठधारी हैं। जहाँ पर आगे इतनी सामग्री है, इतना और भी सही। लंगर के काम में आ जायगा। उनकी बातों को सुनकर राजा फिर वन में गया और उनसे भी यही कहा। उपदेश तो आपका उनका बराबर है। उन्होंने द्रव्य का ग्रहण कर लिया और आपने न किया इसमें क्या कारण है? उन्होंने कहा राजन्! वह मठधारी बड़े तपस्वी हैं। अग्नि में जितना घृत डालो सब भस्म हो जाता है। वह अग्नि के समान तेजवाले और सामर्थ्यवाले हैं। उनके भंडार में तुम्हारा द्रव्य पड़ गया। बड़ा अच्छा हुआ। महात्मा लोग भोजन करेंगे। हमारे यहाँ तो कुछ भंडार वगैरह भी

नहीं होता। हम लेकर क्या करते ? राजा सुनकर चुप होकर घर को चला आया। तात्पर्य यह है जो महात्मा हैं वह दूसरे की बड़ाई ही करते हैं। इसी से दूसरे भी उनकी बड़ाई करते हैं। उनका ख़्याल अच्छा होने से उनकी तरफ़ औरों के भी ख़्याल अच्छे होते हैं। जिनका अपना ख़्याल अच्छा नहीं होता है उनकी तरफ़ औरों का ख़्याल भी अच्छा नहीं होता। बस बुरा ख़्याल ही बुरा है। पदार्थ कोई भी बुरा नहीं है। जितने तीर्थ बनाए गए हैं इन पर भी बहुत-सा उपकार होता है। लोग जाकर इन पर बहुत-सा दान पुण्य करते हैं। कोई वहाँ जाकर तप करते और इनके ज़रिये से देशों का सैर भी हो जाता है। देशांतर में जाने से व्यावहारिक बुद्धि भी बढ़ती है। तीर्थों में भी अनेक गुण भरे हैं। ये भी बुरे नहीं हो सकते हैं। जो तीर्थों में जाकर या रह कर बुरे ख़्यालों को करते हैं उनके वे ख़्याल ही बुरे हैं। तीर्थ कोई भी बुरे नहीं हैं। जितने देवमंदिर हैं और उनमें जो मूर्तियाँ हैं वे भी बुरी नहीं हो सकती हैं। मंदिर पहले इसलिये बनाए गए थे, जो आए-गए साधु महात्मा को उसमें दो चार दिन रहने के लिये जगह मिले। अन्नादिकों से उसका सत्कार किया जाय और उसमें सत्संग हो, कथा वार्ता हो, लोग आकर भजन करें। मूर्ति तो भजन करने के निमित्तमात्र है। नाम का स्मारक है और ध्यान करने का एक साधन है; क्योंकि बिना किसी सुंदर मूर्ति के चित्त का निरोध नहीं हो सकता है। भक्ति और उपासना का भी वह साधन है। इसलिये मंदिर और मूर्ति कदापि बुरे नहीं हो सकते हैं; परंतु आगे पुजारी लोगों ने बुरे ख़्याल खड़े करके मंदिर और मूर्तियों को जीविकार्थ बना लिया है और आए-गए महात्मा को मंदिरों में खड़ा भी नहीं होने देते हैं और न कुछ सत्संग को जानते हैं। बल्कि बहुत से मंदिरों में पुजारियों की कृपा से कुसंग ही होता है। पुजारियों के जो ऐसे ख़्याल उलट गए हैं, वही बुरा है। पुजारियों के बुरे ख़्याल होने से, लोगों के भी उनकी तरफ़ से बुरे ख़्याल हो गए हैं। असल में मंदिर और मूर्ति बुरे नहीं हैं; क्योंकि उपकार के लिये और भक्ति के

लिये ही ये बनाए गए हैं। जितने स्कूल, मदरसे तथा पाठशालाएँ हैं इनमें अनेक प्रकार की विद्याएँ सिखाई-पढ़ाई जाती हैं। ये किसी प्रकार भी बुरे नहीं हो सकते हैं। जो अस्पताल तथा शफ़ाख़ाने हैं, ये भी किसी प्रकार से बुरे नहीं हो सकते हैं; क्योंकि इनमें रोगियों के रोग दूर होते हैं। जीवन का यही हेतु है। कोई विद्या भी बुरी नहीं है; क्योंकि सब विद्या में अनेक गुण भरे हैं और सब मनुष्यों पर उपकार करती हैं। भाषा भी कोई बुरी नहीं है; क्योंकि सब भाषाएँ मनुष्यों ने अपने व्यवहार की सिद्धि के लिये बनाई हैं।

न वदेत् यावनीं भाषाम्।

यवनों की भाषा को न बोलें, ऐसे २ ख़्याल ही बुरे हैं। ईश्वर ने जितनी सृष्टि रची है, सब जरूरत से ही रची है। शरीर के जितने अंग हैं सब अपनी-अपनी जगह पर काम देते हैं। बेकाम कोई भी अंग नहीं है। अगर एक उँगली न हो, तो बड़ा हर्ज होता है। इसीसे बेकाम कोई भी अंग साबित नहीं होता है। वैसे ही ईश्वर की जितनी रचना है सब जरूरत से रची गई है। कोई भी बेकाम नहीं है। इस वास्ते कोई भी बुरी साबित नहीं हो सकती है। काम को ईश्वर ने संतति उत्पन्न करने के लिये बनाया है और क्रोध को दुष्टों और शत्रुओं को दंड देने के लिये, लोभ को विद्या और धन उपार्जन के लिये और मोह को संतति पालने के लिये। अहंकार वर्णाश्रम के धर्मों के पालने के लिये ईश्वर ने बनाया है। यदि काम को न बनाता, तो संतति को लोग कैसे उत्पन्न करते? क्रोध को न बनाता, तो दुष्टों को दंड कौन देता? लोभ को न बनाता, तो विद्या और धन-संग्रह कौन करता? मोह को न बनाता, तो बच्चों का पालन कौन करता? अहंकार को न बनाता, तो वर्णाश्रमों के धर्मों का पालन कौन करता? इन पाँचों से विना जगत् का व्यवहार नहीं चल सकता है। इस वास्ते इनका बनाना भी जरूरी है। अतएव ये भी बुरे नहीं हो सकते हैं; परंतु लोगों ने उलटे ख़राब ख़्याल करके इनको ख़राब बना डाला है। काम को तो

विषय भोगों के वास्ते बना लिया है, क्रोध को ग़रीबों के सताने के लिये, लोभ को ठगने के लिये या कृपणता के लिये, मोह को पर-स्त्री आदि में करने के लिये, अहंकार को मिथ्या जातियों में अध्यास के लिये बना लिया है। इस तरह के ख़राब ख़्याल ही बुरे हैं। कामादि बुरे नहीं हैं। धन को परमेश्वर ने दान और भोग तथा उपकार के लिये बनाया है न कि कृपणता से जमा करने के लिये। बल को ग़रीबों की रक्षा के लिये बनाया है न कि सताने के लिये। इसलिये ये सब भी बुरे नहीं हो सकते हैं। जितने मादक द्रव्य हैं इनको ओषधिरूप करके रोगों की निवृत्ति के लिये बनाया है। लोगों ने उलटा समझ कर शरीरों के नाश का हेतु नशेरूप करके मादक द्रव्यों को बना लिया है। यह ख़्याल ही उनका बुरा है। बुद्धि भी किसी की बुरी नहीं है। ईश्वर ने कर्मानुसार सबको बुद्धि दी है। जितनी बुद्धि की जिसको ज़रूरत है उसको उतनी ही बुद्धि दी है। बच्चे पालन की जरूरत मनुष्य और पशु पक्षी आदि सबको बराबर है, इसलिये सबके दिल में मोह उत्पन्न कर दिया है; क्योंकि इसके बिना किसी का भी बच्चा नहीं पल सकता है। परंतु इतना मनुष्य और पशु आदिकों में फ़रक़ है कि पशु पक्षी का बच्चे में मोह तब तक रहता है जब तक वह पलता नहीं है। जब पल जाता है फिर नहीं रहता है; क्योंकि उसको फिर कुछ सेवा वग़ैरह की ज़रूरत नहीं है। मनुष्य का मोह बच्चों में आयु भर रहता है; क्योंकि इनको सेवा कराने की और अपना माल असबाब सौंपने की जरूरत है। मनुष्यों में भी विलक्षण विलक्षण बुद्धि रहती है; क्योंकि मनुष्यों का व्यवहार विलक्षण बुद्धि से बिना चलता नहीं। यदि सबकी बुद्धि अच्छी उत्तम हो, तो नौकरी कौन करे? अगर सब निकृष्ट बुद्धि के हों, तो दिवानी कौन करे? एक २ कम बुद्धि से धर्माऽधर्म भी नहीं हो सकते हैं। इस वास्ते ईश्वर ने सबको विलक्षण बुद्धि दी है। किसी की बुद्धि बुरी नहीं है। जैसे जीना बुरा नहीं है वैसे मरना भी बुरा नहीं है। ये दोनों भी कर्मों के अनुसार ही होते हैं। यदि मरना बुरा होता, तो

बड़े २ क्षत्रिय रण में जीने से मरने को क्यों उत्तम जानते ? उपकार के लिये और धर्म के लिये हजारों ने रण में मरने को ही उत्तम समझा है। फिर यदि मरना न होता, तो पृथिवी में जीवों को खड़े होने की जगह भी न मिलती। तब अन्नादि कहाँ पैदा होते ? और कर्मों का फल कैसे भोगा जाता ? इस वास्ते मरना भी बुरा नहीं है; क्योंकि इसको भी ईश्वर ने जरूरत से बनाया है। रोग भी बुरे नहीं हैं; क्योंकि ये भी पाप-कर्मों का फल भोगने के लिये बने हैं। यदि रोग न बनते तो ओषधियाँ किस काम आतीं ? पापों की निवृत्ति कैसे होती ? इसलिये ये भी जरूरत से बने हैं। तात्पर्य यह है, ईश्वररचित जितनी सृष्टि है वह किसी प्रकार से भी बुरी नहीं हो सकती है। जो दूसरे को बुरा समझना है ऐसा जो ख़्याल है वही बुरा है। सबको अच्छा समझना ही अच्छा है। जो परमेश्वर का पूर्ण भक्त है वह किसी को भी बुरा नहीं समझता। इसवास्ते उसका किसी से राग-द्वेष भी नहीं होता। जो राग-द्वेष से रहित है और भक्त है, वही सुखी है। गुरुजी का तात्पर्य यह है कि जब वायु, अग्नि और जलादि भूत किसी प्रकार भी बुरे साबित नहीं हो सकते हैं, तो उनके कार्य जो स्थूल-शरीर हैं यह कैसे बुरे हो सकते हैं ? अतः सब पुरुष आपस में मेल से रहें।

मू०—तिसु विचि धरती थापि रखी धर्मसाल।

टी०—गुरुजी कहते हैं, जीवों के भोग के लिये परमेश्वर ने वायु, तेज और जल इन तीनों के आश्रित आकाश में बिना ही आधार से अपनी सत्ता करके इस पृथिवी को स्थिर कर रक्खा है। पृथिवी कैसी है ? धर्मशाला की तरह है। अर्थात् जैसे धर्मशाला में इधर-उधर से मुसाफिर आकर रात्रि को इकट्ठे रह कर सबेरे जुदा-जुदा होकर चल देते हैं, वैसे ही धर्मशालारूपी पृथिवी पर जीवरूपी मुसाफिर आकर आयुरूपी रात्रि भर रह कर आयु की समाप्तिरूपी सबेरे जहाँ-तहाँ याने जन्मांतरों में चले जाते हैं।.

मू०—तिसु विचि जीअ जुगति के रंग।

टी०—उस पृथिवी पर परमेश्वर ने अपनी शक्तिरूपी युक्ति से अनेक प्रकार के जीवों के आकार और नानाप्रकार के उनके रंग बनाए हैं।

मू०—तिनके नाम अनेक अनंत।

टी०—उन जीवों के अनेक प्रकार के विलक्षण-विलक्षण नाम और अनेक प्रकार के उनके रंग याने रूप भी परमेश्वर ने बनाए हैं।

मू०—कर्मी कर्मी होय विचारु।

टी०—कर्मी नाम कर्म करनेवाले जीव का है। अर्थात् जीव के कर्मों का विचार करनेवाला परमेश्वर आप ही है।

मू०—सचा आपि सचा दरबारु।

टी०—जीवों के कर्मों का विचार करनेवाला वह परमेश्वर सचा है अर्थात् सत्यवादी है। उसका जो दर्बार है, वह भी सचा है। अर्थात् उसका जो जीवों के कर्मों के अनुसार न्याय करना है वह भी सचा है। तात्पर्य यह कि वह परमेश्वर पूरा न्यायकारी है, अन्यायी नहीं है। जो अन्यायी होता है वह किसी का मुलाहजा, किसी का लिहाज करके न्याय पूरा नहीं करता है। परमेश्वर ऐसा नहीं है; किंतु न्यायकारी है।

प्र०—यदि ईश्वर को न्यायकारी ही माना जायगा, तो वह साबित नहीं होगा; क्योंकि जो राजा न्यायकारी होता है, वह दयालु नहीं होता। यदि वह चोरों पर दया करे, तो न्यायकारिता नहीं रहती। इसी तरह ईश्वर को यदि दयालु माना जाय तो न्याय नहीं रहेगा; क्योंकि पापियों को भी बिना दंड के वह छोड़ दे और दयालुता उसकी देखने में भी नहीं आती है; क्योंकि संसार में हजारों जीव अति दुःखी हैं। कोई रोग से और कोई दरिद्रता से दुःखी है। रात-दिन वह ईश्वर २ पुकारते हैं। और पुकारते २ मर भी जाते हैं। न तो रोगियों के रोग दूर होते हैं और न दरिद्रियों की

दरिद्रता दूर होती है। पूर्वजन्मों के पाप कर्मों के फल को ही वे भोगते हैं। ईश्वर उन पर दया नहीं करता। इसी तरह बहुत से जीव एक दूसरे को बिना किसी अपराध के खा जाते हैं। जैसे कि सिंह वन में नित्य मृगादि जीवों को खाता है और वे चिल्लाते हैं। ईश्वर उन पर दया करके उन्हें सिंह से नहीं बचाता है। शिकारी नित्य ही निर्दोष जीवों को वनों में मारते हैं, ईश्वर उनको नहीं छुटाता है। क्योंकि उनके पूर्वले जन्मों के कर्मों का फल ही ऐसा है। तब भी वह न्यायी साबित होता है, दयालु नहीं। फिर लोग ईश्वर को दयालु क्यों कहते हैं ?

उ०—जो किसी प्रयोजन बिना किसी का काम करे, वही दयालु कहा जाता है। ईश्वर को वेद और शास्त्र में आप्तकाम याने पूर्ण काम लिखा है। कर्म स्वतः जड़ हैं, आप फल देने को समर्थ नहीं हैं। जीव भी अल्पज्ञ और असमर्थ हैं। वह भी स्वतः अपने कर्मों के फल भोगने में समर्थ नहीं है। ईश्वर असंग आप्तकाम होकर बिना प्रयोजन के यथायोग्य जीवों को कर्मों का फल देता है, यही उसकी दयालुता है। यद्वा दयालुता शब्द उपासना करने के लिये बना है। जैसे राम, कृष्णादि उसके नाम हैं और इनके जपने से पुण्य होता है, वैसे ही दयालु भी ईश्वर का नाम है। हे दयालो ! हे कृपालो ! ऐसा उच्चारण करने से भी जीवों को पुण्य होता है। यह भी एक भक्ति है, जो रोगी आदि ऐसा पुकारते हैं उनको जन्मांतर में, कालांतर में, इसका फल जरूर मिलेगा। अतएव वह दयालु भी सिद्ध होता है।

मू०—तिथै सोहनि पंच परवाणु।

टी०—गुरुजी कहते हैं उस न्यायकारी और दयालु परमेश्वर के दरबार में पंच जो संतजन हैं, वेही सोहन याने शोभा को पाते हैं। वेही प्रधान हैं याने प्रतिष्ठित हैं।

मू०—नदरी करमिपवैनीसाणु।

टी०—जो संतजन परमेश्वर [illegible] नज़र में याने निगाह में पड़ गए

हैं उन पर कर्मपवैनीसाण अर्थात् परमेश्वर की कृपा क चिह्न पड़ जाते हैं। तात्पर्य यह है जिन महात्माओं पर उसकी कृपा दृष्टि हो जाती है उनके चित्त शांत होजाते हैं और उनकी वाणी में सिद्धि आजाती है।

मू०—कचपकाई उथै पाय।

टी०—जीवों के अर्थात् कर्मी और भक्तों के कर्मों की कचाई और पकाई भी उसी के दरबार में पाई-जाती है याने मालूम हो जाती है। ये सचे कर्मी हैं और ये पाखंडी हैं।

मू०—नानकगइया जापैजाय।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं जब परमेश्वर के समीप प्राप्त होगा तब जापै जाय अर्थात् कर्मों का हिसाब आप से आप हो जायगा। याने सचाई-झुठाई प्रतीत हो जायगी।

मू०—धर्मखंड का एहो धर्मु। ज्ञानखंडका आखहु कर्मु॥

केते पवरा पाणी वैसंतर केते कान महेश।
केते वरमे घाडति घडी अहिरूप रंग के वेस॥
केतीयां कर्म भूमी मेर केते केते धू उपदेश।
केते इन्द चन्द सूर केते केते मंडल देश॥
केते सिद्ध बुधनाथ केते केते देवी वेस।
केते देव दानव मुनी केते केते रतन समुंद॥
केतीया खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद।
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अन्तु न अन्तु॥

फल—रविवार को अमृतवेला के वक्त से इक्कीस सौ बार जपे एक दिन में तो भगंदर रोग दूर हो।

अब गुरुजी ईश्वर सृष्टि की अनंतता को दिखलाते हैं।

मू०—धर्मखंड का एहो धर्मु।

टी०—जिस लोक में धर्म किया जाता उस लोक का नाम धर्म-

खंड है। इस मृत्युलोक में ही धर्म किया जाता है। ऊपर के लोकों में धर्म नहीं किया जाता; किंतु इस लोक में किए हुए धर्म का फल ऊपरवाले लोकों में भोगा जाता है। इस वास्ते उनका नाम भोग भूमियाँ हैं और इसी मर्त्यलोक का नाम धर्मखंड है। इस लोक का एही धर्म है अर्थात् यही धर्म है, जैसा कर्मरूपी बीज इस धर्मखंड में बोया जाता है वैसा ही उसका फल भोगना पड़ता है। अति पुण्य का फल तो चंद्रलोकादि की प्राप्ति है और अति पाप का फल इस लोक में कृमि आदि क्षुद्र योनियों की प्राप्ति है। पुण्य पाप मिश्रित याने संख्या करके दोनों बराबर ही पुण्य पाप जब फल देने को उदय होते हैं तब मनुष्य योनि में जन्म होता है। तात्पर्य यह है कि यह मर्त्यलोक ही धर्माधर्म करने का लोक है। इसी वास्ते गुरुजी ने इसको धर्मखंड कहा है।

मू०—ज्ञानखंड का आखहु कमु।

टी०—ज्ञानपद से वृत्तिज्ञान का इस जगह में ग्रहण करना उस वृत्ति का कर्म जो उपासना है उसको अब गुरुजी कहते हैं।

मू०—केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेश।

टी०—जितना वृत्तिज्ञान का विषय है वह सब मूर्तिमान है। जो मूर्तिमान् नहीं है; किंतु मूर्ति से रहित है, वही ब्रह्म निर्गुण है। प्रथम सगुण उपासना जब तक परिपक्व न हो तब तक निर्गुण की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है। इसी से प्रथम गुरुजी सगुण उपासकों को दिखलाते हैं। गुरुजी कहते हैं, कितने पुरुष तो संसार में पवन जो वायु है उसकी उपासना करने को कहते हैं अर्थात् अनेक पुरुष वायु देवता के उपासक हैं और पाणी नाम जल का है अर्थात् कितने पुरुष संसार में जल की याने वरुण देवता की उपासना करते हैं। सारे सिंध देश में वरुण देवता की उपासना की जाती है जिंद, पीर, दरया का नाम उस देश में प्रसिद्ध है। सब वर्णों के लोग जिंदपीर को ईश्वर करके पूजते हैं। म्लेच्छ लोग ख़्वाजा खिज़र करके पूजते हैं। उस देश में एक ठाकुर जाति के वैश्य जिंदपीर के पुजारी बने हुए हैं। वे अपने मकान में एक मिट्टी

का चौतरा बना कर उस पर लाल कपड़े को बिछा दिया जला कर धर देते हैं। लोग उस घड़े को जिंदपीर का स्थान मान कर उस पर पूजा-भेंट चढ़ाते हैं। संसार में अनेक पुरुष वैसंतर नाम अग्नि की उपासना करते हैं। अग्निहोत्री ब्राह्मण अग्नि को देवता मानकर पूजते हैं। इस प्रसिद्ध अग्नि का अभिमानी देवता इससे जुदा मानते हैं और आर्यसमाजी जुदा देवता नहीं मानते हैं, किंतु जड़ अग्नि को ही देवता मानते हैं और वेदों के मंत्रों के अर्थ अपने मन माने करके जड़ अग्नि के आगे प्रार्थना करते हैं। सामवेद के प्रथम अध्याय के प्रथम मंत्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं। हे प्रकाशमान् अग्ने! हवि खाने के लिये तू इस कुंड में प्राप्त हो, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम यज्ञ में हवि लेने के वास्ते विराजमान हो और वायु आदि देवतों में उस हवि को तू फैला दे। इस तरह जड़ अग्नि को देवता मानकर उसकी उपासना को ये करते हैं। कितने ही आतशपरस्त जातिवाले अग्नि के बड़े भारी उपासक हैं उनके घरों में अग्नि के कुंड बने रहते हैं। उन कुंडों में सदैव ही अग्नि विराजमान रहती है। किसी काल में भी बुताने नहीं पाती। यदि बुत जाय, तो वह उसका प्रायश्चित्त करके फिर स्थापना करते हैं। इसी तरह संसार में अग्नि के उपासक भी अनंत हैं।

कान नाम कृष्णजी का है। संसार में कितने कृष्ण के उपासक हैं। अर्थात् कितने तो गोकुलिये गुसांई कृष्ण की बाल्यावस्थावाली मूर्ति की उपासना करते हैं, कितने राधाकृष्ण की करते हैं, वह राधावल्लभ कहलाते हैं और कितने गोपीकृष्ण की उपासना करते हैं, वह गोपीवल्लभ कहलाते हैं, कितने केवल कृष्ण की ही उपासना करते हैं, कोई द्वारकाधीश मान कर, कोई वृंदावनवासी जान कर, कोई गोकुलनिवासी, अनेक प्रकार से अनेक पुरुष कृष्णजी की उपासना करते हैं।

महेश नाम महादेव का है। संसार में अनंत ही पुरुष महादेव की उपासना करते हैं। महादेव की अनेक मूर्तियाँ हैं। कोई सदाशिव

मूर्ति की विश्वनाथ पंचमुखी मूर्ति की, कोई एकादश रुद्र की, कोई पशुपति मूर्ति की, कोई सांबमूर्ति की उपासना करते हैं।

मू०—केते घर मेघा हाति घडी अहिरूपरंग के वेस।

टी०—कितने प्रकार के उपासकों को ब्रह्माजी ने बनाया है। अनेक प्रकार के रूप और रंग श्वेत श्यामादि हैं जिनके और अनेक प्रकार के वेस याने वेष बनाए हुए हैं। जिन्होंने अथवा इस संसार में कितने ही परमेश्वर अंतर्यामी द्वारा गढ़े हुए याने बनाए हुए रूप और रंगों से युक्त ब्रह्मा की ही उपासना करते हैं।

मू०—केतीयां कर्म भूमी मेर केते केते धू उपदेस।

टी०—एक ही पृथिवी के नवखंड (विभाग) होने से कितनी ही कर्मभूमियाँ कही जाती हैं। उन कर्मभूमियों में कितने ही पुरुष भूमि की ही उपासना करते हैं। मेर केते अर्थात् कितने सुमेरुपर्वतादि की उपासना करते हैं; केते धू अर्थात् कितने ही पुरुष ध्रुव तारा की उपासना करते हैं और केते उपदेश याने कितने ही पुरुष उपदेश करनेवाले आचार्य की उपासना करते हैं।

मू०—केते इइन्द चन्द सूर केते केते मंडलदेस।

टी०—कितने ही इंद्र की उपासना करते हैं। प्रथम व्रज में लोग बड़े प्रेम से इंद्र की उपासना करते थे। जब श्री कृष्णजी अवतरित हुए तब उन्होंने इंद्र की पूजा को हटा कर अपनी पूजा लोगों से कराई। तब इंद्र ने कोप करके खूब मूसलधार पानी बराबर बरसाया। तब भगवान् ने गोवर्द्धन पर्वत को एक अँगुली पर उठाया और सब गोपों को बचाया। यह कथा भागवत के दशमस्कंध में लिखी है। वेद में भी जहाँ-तहाँ इंद्र की उपासना बहुत मंत्रों में लिखी है। इससे भी साबित होता है कि इंद्र की उपासना करनेवाले भी बहुत हैं। चंद्रमा की उपासना करनेवाले तथा सूर्य की उपासना करनेवाले भी जगत् में बहुत हैं। योगसूत्रों में चंद्रमा और सूर्य की उपासना का बड़ा फल भी लिखा है। जो चंद्रमा की उपासना करता है उसको सम्पूर्ण तारों के

आकार का ज्ञान हो जाता है कि फलाना तारा इतने योजन परिमाण-वाला है और फलाना इतने योजन परिमाणवाला है। ये फल चंद्रमा की उपासनावाले को होता है। जो सूर्य की उपासना करता है उसको संपूर्ण भुवनों का याने लोकों का ज्ञान हो जाता है। तदंतर्वर्ती पदार्थों का भी ज्ञान हो जाता है। इससे भी साबित होता है चंद्र-सूर्य की उपासना करनेवाले भी संसार में अनेक हैं। कितने ही मंडल अभिमानी देवतों की उपासना करनेवाले हैं। देश अभिमानी नगर अभिमानी देवतों की उपासना करनेवाले भी हैं।

मू०—केते सिद्ध बुद्धनाथ केते केते देवीवेस।

टी०—कितने एक पुरुष संसार सिद्धों की उपासना करनेवाले हैं और कितने एक बुद्ध याने बुद्ध भगवान् को माननेवाले हैं। अथवा बुद्ध नाम बुद्धिमान् का है अर्थात् कितने ही बुद्धिमान् विद्वानों की उपासना करनेवाले हैं, कितने ही गोरखनाथ से आदि लेकर और जो नाथ हुए हैं उनकी उपासना करनेवाले हैं कितने एक पुरुष देवियों के जो वेष हैं अर्थात् महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती आदि देवियों की मूर्तियों की उपासना करनेवाले हैं।

मू०—केते देव दानव मुनि केते केते रतनसमुंद।

टी०—कितने देवता हैं, कितने असुर हैं, कितने मुनि हैं, कितने रत्न हैं और कितने समुद्र हैं ? यानी अनगिनती हैं।

मू०—केतीयां खाणीयां केतीयांबाणीकेते पातनरिंद।

टी०—इस संसार में जीवों की खाणीयाँ याने योनियाँ अनेक हैं और उनकी वाणियाँ भी अनेक हैं याने बोलियाँ हैं। वे सब जीव अपनी २ बोली में भिन्न-भिन्न उपासना को करते हैं। केते कितने ही पुरुष पातनरिंद अर्थात् प्रजा के पालन करनेवाले राजों की उपासना करते हैं।

मू०—केतीयां सुरतीसेवक केतेनानकअन्तुअन्तु।

टी०—कितने वेदों की श्रुतियों के सेवक हैं अर्थात् उनकी उपा-

सना करनेवाले हैं। गुरु नानकजी कहते हैं, संसार में उपास्य-उपासक-भाव का याने उपासना करनेवालों का तथा उपासकों का कुछ भी अंत नहीं है।

मू०—ज्ञानखण्ड महि ज्ञानु प्रचंडु।
तिथेनाद विनोदकोड अनंदु॥
सरमखंडकी वाणीरूपु।
तिथे घाडति घडीअै बहुतु अपुनू॥
ताकीयॉ गलां कथीआ ना जाहि।
जेको कहै पिछै पछुताय॥
तिथै घडीअै सुरति मति मनिबुधि।
तिथै घडीअै सुरासिद्धा की सुधि॥

फल—वीर के दिन अमृतवेला में १७०० वार जपे, ज्ञान प्राप्त हो

मू०—ज्ञानखंडमपि ज्ञानप्रचंडु।

टी०—खंड नाम देश का है और ज्ञान करके ईश्वर के स्वरूप के ज्ञान का ग्रहण है भक्तों के हृदयरूपी देश में ईश्वर के स्वरूप का प्रचंड ज्ञान सदैव स्थित रहता है। उसी प्रचंड ज्ञान से उनके हृदय भी सदा प्रकाशमान रहते हैं।

मू०—तिथै नाद विनोद कोड आनंदु।

टी०—नाद का अर्थ शब्द विनोद का अर्थ प्रसन्नता, कोड का अर्थ बड़ा है। अर्थात् उन प्रेमी भक्तों के हृदय में ईश्वर के स्वरूप का प्रकाश होने से ईश्वर का वाचक जो ॐकार है उसकी ध्वनि सदैव बनी रहती है और प्रसन्न मन तथा बड़े आनंद से वह युक्त रहते हैं।

मू०—सरम खंड की वाणीरूपु।

टी०—सरम नाम सुख का है। जिस भक्त के हृदय में परमेश्वर के प्रकाश से सुख हुआ है उस सुख विशिष्ट उसके हृदय देश से जो

आनंद करके भरी हुई उसकी वाणी मुखद्वारा निकलती हैं वह भी मानों दूसरों को सुखरूप कर रही हैं।

मू०—तिथैघाड तिघडिऐ बहुत अनूप।

टी०—उस भक्त के हृदय में जो संकल्परूपी घाडित घडी जाती है अर्थात् भक्त के मन में जो संकल्प उठते हैं वह भी बहुत ही अनूप यानि ईश्वरसंबंधी प्रेम के ही उठते हैं।

मू०—ताकीयागलां कथीयांनाजाहि।

टी०—उन प्रेमवाले भक्तों की बातें कुछ कही नहीं जाती हैं; क्योंकि वे भक्तजन परमेश्वर संबंधी बातें ही करते हैं। व्यावहारिक बातों को वे कदापि नहीं करते हैं।

मू०—जेकोकहैपिछैपछुताय।

टी०—यदि कोई लौकिक पुरुष उन भक्तों के अभिप्राय को न जान उनके अभिप्राय की बातें करता है फिर जब वह उनका सत्संग करके उनके गूढ अभिप्राय को जान लेता है तब अपनी पूर्ववाली बातों का पछतावा करता है।

मू०—तिथैघडीऐसुरतिमतिमनिबुधि।

टी०—उन भक्तों के हृदय में घड़ीये सुरत अर्थात् श्रुति का ही विचार घड़ी-घड़ी में होता रहता है और उनका मन तथा बुद्धि भी श्रुति के अर्थ में ही लीन रहती हैं।

मू०—तिथै घडीऐ सुरासिद्धाकीसुधि।

टी०—उन भक्तों के हृदय में घड़ी-घड़ी में सुर देवता और सिद्धों की तरह भूत भविष्यत् की सुध याने खबर हो जाती है।

मू०—कर्मखंड की वाणी जोरु। तिथै होरु न कोई होरु॥
तिथै जोध महाबल सूर। तिन महिरामु रहिआ भरपूर॥
तिथै सीतोसीता महिमामाहि। ताकेरूप न कथनेजाहि॥
नाओहि मरहि न ठागे जाहि। जिनके रामुवसै मनमाहि॥

तिथै भक्त वसैहि लोअ। करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥
सचि खंड वसै निरंकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल ॥
तिथै खंड मंडल वरभंड। जे को कथै त अंत न अंत ॥
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव २ हुकमु तिवै तिवकार ॥
वेखै विगसै करि वीचारु। नानक कथना करडा सारु ॥

फल—मंगल को अमृतवेला के वक्त १३०० जपे तक़दीर अच्छी हो जावे और पूर्व जन्म के पाप दूर हों।

मू०—कर्मखंडकीवाणीजोरु।

टी०—कर्मखंड नाम कर्मकांड वेदभाग का है। उस कर्मकांड वेदभाग की जो वाणी है अर्थात् कर्मों के प्रतिपादन करनेवाले जो वेदवाक्य हैं।

अहरहस्सन्ध्यामुपासीत्।

प्रतिदिन संध्योपासन करें।

अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनःसुकृतं भवति।

चातुर्मास संज्ञक यज्ञ करनेवाले को अक्षय पुण्य होता है।

अपामसोमममृताऽभूम।

देवता कहते हैं हम यज्ञ में सोमरस को पान करके अमर हुए और इस तरह के भारी २ फलों को दिखानेवाली वह कर्मकांड वेदभाग की वाणी बड़े ज़ोरवली है; क्योंकि कर्मों के फलों को सुनाकर लोगों के चित्तों को हर लेती है।

मू०—तिथैहोरुनकोइहे रु।

टी०—उस वाणी में होरना अर्थात् और भक्ति की वार्ता भी नहीं है और न कोई होर याने उपासना तथा ज्ञान की ही और कोई वार्ता है। केवल अर्थवादरूपी रोचक वाक्य ही उसमें भरे हैं। अथवा कर्मखंड का अर्थ कर्मभूमि यह मनुष्य लोक है। इस मनुष्य लोक में जिस भक्त पर परमेश्वर की कृपादृष्टि हो जाती है, उसकी वाणी में भक्ति करने का बड़ा जोर हो जाता है। फिर उस भक्त के हृदय होरन कोई होर

अर्थात् ईश्वर के नाम से विना होर किसी का नाम नहीं आता। और कोई होर याने कोई दूसरा भी उनको भक्तिमार्ग से नहीं हटा सकता है; क्योंकि।

मू०—तिथै जोध महाबल सूर।

उस भक्त के पास बड़े २ महावली विवेक वैराग्यादि योद्धा हरवक्त तैयार रहते हैं। इसलिये कोई भी उनको भक्ति से नहीं हटा सकता।

मू०—तिन महि रामरहिआभरपूर।

टी०—क्योंकि उनके रोम रोम में रामजी पूर्ण व्याप्त हो रहे हैं।

मू०—तिथैसीतोसीतामाहिमामाहि।

टी०—सीता नाम शांति का है अर्थात् उन भक्तों के हृदय में शांति रहती है और उस शांति में ही उनको आनंद मिलता है।

मू०—ताकेरूपनकथनेजाहि।

टी०—उनके रूप याने लक्षण वर्णन नहीं किए जा सकते हैं।

मू०—नओहमरेहिनठागेजाहि।

टी०—न वह मरते हैं और न वह यमदूतों के साथ जाते हैं।

मू०—जिनकेरामवसैमनमाहि।

टी०—जिन भक्तों के हृदय में राम वस रहा है उन्हीं को परमानन्द की प्राप्ति होती है।

मू०—तिथैभक्तवसैहिकेलोअ।

टी०—लोहि नाम प्रकाश का है। उन भक्तों के हृदय में परमात्मा प्रकाश-स्वरूप सदैव ही विराजमान रहता है।

मू०—करहि अनंद सचामन सोइ।

टी०—जिन भक्तों के हृदय में प्रकाशमान परमात्मा सदा विराजमान रहते हैं, वे सदैव ही आनंद करते हैं; क्योंकि वह सचे मनवाले हैं। अर्थात् सचे परमेश्वर में ही उनका मन लगा है।

मू०—सचि खंड वसै निरंकारु।

टी०—सचखंड नाम है । भक्तजनों का ही हृदय शुद्ध है । उसी में निरंकार का निवास रहता है ।

मू०—करिकरि वेखै नदरि निहाल ।

टी०—वह निरंकार कर कर वेखै याने वार वार अपने भक्तों के हृदय की सचाई को देखता है और अपनी नदर से याने कृपादृष्टि से उनको निहाल याने कृतार्थ कर रहा है ।

मू०—तिथैखंड मंडल वरभंड ।

टी०—उन भक्तों के हृदय में खंड मंडल जो ब्रह्मांड है वह सब मृगतृष्णा के जल की तरह मिथ्या दिखाई दे रहा है, क्योंकि वरभंड याने श्रेष्ठ परमात्मा के प्रकाश से उनका हृदय व्याप्त हो रहा है ।

मू०—जेको कथैत अंत न अंत ।

टी०—यदि कोई पुरुष उन भक्तों की महिमा को कहना चाहे तो किसी प्रकार भी भक्तों की महिमा का अंत नहीं मिलता है ।

मू०—तिथै लोअ लोअ आकारु ।

टी०—उन भक्तों के हृदय में ऊपर और नीचे के लोगों के आकार अपनी सत्ता से रहित और झूठे प्रतीत होते हैं ।

मू०—जिवजिवहुकमुतिवैतिवकार ।

टी०—जैसी उस परमेश्वर की आज्ञा होती है वैसे ही वह भक्तजन काम करते ह ।

मू०—वेखै विगसै कर वीचारु ।

टी०—वह परमेश्वर अपनी आज्ञा के अनुसार भक्तों को काम करते देखकर विगसै है याने हँसता है और विचार करके भक्तों को उत्तम फल देता है ।

मू०—नानक कथना करडा सारु ।

टी०—गुरु नानकजी कहते हैं, ईश्वर में प्रेम किए विना जो केवल कथन करने से याने वातों से अपने को भक्त वनाना है यह करडी याने

कठिन वार्ता है; क्योंकि विषय वासना जो है सो लोहे की तरह टूटने में कठिन है। बड़े २ महात्माओं के भी अंतर में सूक्ष्म वासना बनी रहती है। बिना परमेश्वर की कृपा के इनका नाश नहीं होता है।

मू०—जतु पहारा धीरजु सुनिआर।
अहरणि मति वेदु हथीआरु॥
भउखला अगिन तपताउ।
भांडा भाउ अमृत तितु ढालि॥
घडीऐ सबदूसची टकसाल।
जिनको नदरि करमु तिनकार॥
नानक नदरी नदरि निहाल॥

फल—सोमवार से एक हजार रोज पाँच दिन तक जपै तो काम को जीतै और परम सुख पावै।

मू०—जतु पहारा धीरजु सुनिआर।

टी०—पहारा नाम भट्ठी का है। जत का अर्थ जीतना है। अर्थात् इंद्रियों को जीतकर शम दमादि की भट्ठी बनावै और धैर्यता को सुनिआर याने भट्ठी का झोंकनेवाला बनावै।

मू०—अहरणि मति वेदु हथिआरु।

टी०—और मति जो बुद्धि है उसको अहरण बनावै। अहरण नाम उसका है जिस पर लोहे को तपाकर कूटते हैं। बुद्धि को अहरण बनावै। वेद नाम ज्ञान का है। ईश्वर के स्वरूप का जो ज्ञान है उसी को अपना हथियार बनावै।

मू०—भउ खलां अगिन तपताउ।

टी०—ईश्वर के भय की खाल याने धौंकनी बनावै और तपस्यारूपी अग्नि से उसको तपावै।

मू०—भांडा भउ अमृत तितु ढालि।

टी०—भाउ नाम भावना का है। अर्थात् भावना की भांडा याने कुठाली बनावै। उसमें महात्मा के उपदेशरूपी अमृत को ढालें। फिर क्या करै?

मू०—घडीऐ सच दुसची टकसाल।

टी०—सत्संगरूपी जो सची टकसाल है उसमें महात्मा के शब्दों को गढ़े याने पुनः विचार करे; क्योंकि विचार विना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है। वशिष्ठजी ने भी कहा है—

न विचारं विना कश्चिदुपायोऽस्ति विपश्चिताम्।
विचारादशुभं त्यक्त्वा शुभमायाति धीमताम्॥

विचार के सिवाय विद्वानों के लिये और कोई भी कल्याण का उपाय नहीं है, विचार से ही अशुभ को त्याग के श्रेष्ठ पुरुषों की बुद्धि शुभ मार्ग को प्राप्त हो जाती है।

बलं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिःक्रियाफलम्।
फलन्त्येतानि सर्वाणि विचारेणैव धीमताम्॥

बल, बुद्धि, तेज, शास्त्र का बोध और क्रिया का फल ये सब बुद्धिमानों को विचार से ही फलीभूत होते हैं। विना विचार के नहीं होते।

मू०—जिनकोनदरिकर्मुतिनकार।

टी०—जिन पर नदर कर्म याने कृपादृष्टि परमेश्वर की होती है उनका यही काम है कि आप तो परमेश्वर का स्मरण करते ही हैं परंतु औरों को भी उपदेश करके स्मरण कराते हैं; क्योंकि विना ईश्वर के स्मरण जीव को, यमराज के धाम को ही जाना पड़ता है।

सवैया।

तीरथ कोटि किये असनान दिये बहुदान महाव्रत धारे।
देश फिर्यो कर भेष तपोधन केश धरे न मिले हरि प्यारे॥
आसन कोटि किये अष्टांग धरे बहु न्यास करे मुख कारे।
दीनदयाल अकाल भजे बिन अन्त के अन्तक धाम सिधारे॥

अंतकाल में धन संपत्ति कुछ भी सहायता नहीं करती है। ये सब चार दिन के ही हैं। जब मर जाता है तब संबंधी उठाकर इसको श्मशान में ले जाकर फेंककर चले आते हैं। सो कहा भी है।

कवित्त।

पाय प्रभुताई कछु कीजिये भलाई यहाँ,
नाहीं थिरताई बैन मानिये कविन के।
यश अपयश रह जात बीच पुहुमी,
मुलक खजाने बेनी गयो साथ किनके॥
और महिपालन की गिनती बखानै कौन,
रावण से ह्वै गये त्रिलोकी वश्य जिनके।
चोबदार, चाकर, चमूपति, चमरदार,
मंदिर, मतङ्ग ये तमाशे चार दिनके॥
घोड़े हाथी पालकी खवास खिदमतगार,
सेना के समूह जो जितैया बड़ी रार के।
जेवर, जवाहिर, खजाने, तहखानेखाने,
ऐसे छाँड़ि चले जैसे बचुका बिगार के॥
बेनी कवि कहै परमारथ न कीन्हे मूढ़,
जन्म गँवाये हेतु सुत, वित, नारके।
काल शर साधे देख माया मद आँधे,
कछु गाँठ में न बाँधे चढ़े काँधे जात चार के॥

ईश्वर के नाम के सिवाय अंतकाल में कुछ भी साथ नहीं जायगा। इस वास्ते सदैव ईश्वर का स्मरण और महात्मा का संग करना चाहिए।

प्र०—सदैव महात्मा के संग करने से क्या फल होगा?

उ० । मू०—नानकनदरीनदरिनिहाल ।

टी०—महात्मा के संग करने का यह फल होता है, गुरु नानकजी कहते हैं वह महात्मा किसी काल में अपनी नजर से दूसरे को निहाल याने कृतार्थ कर देते हैं। इस वास्ते सदैव ही सत्संग करना अच्छा है। इसी में दृष्टांत को कहते हैं।

एक नगर में एक राजा की बड़ी सुंदर और युवती वेश्या रहती थी। वेश्या का मकान राजा के मकान से थोड़ी ही दूर पर बाजार के बीच में था। सरदी के महीने में एक दिन बड़े जोर से पानी बरसता था। बड़े जोर से सरदी पड़ रही थी। जब थोड़ा सा दिन बाकी रहा तब महात्मा नग्न सरदी से काँपते हुए कीच में लिबड़े हुए उस वेश्या के मकान के छज्जे के नीचे दरवाजे में आकर खड़े हो गए। इतने में भीतर से एक लौंडी निकली। उसने उस महात्मा को सरदी से काँपते हुए देखकर फिर भीतर जाकर बीबी से उनका हाल कहा। तब बीबी ने कहा उनको भीतर बुला लाओ। लौंडी ने कहा वह बोलते नहीं हैं। तब बीबी ने कहा उनका हाथ पकड़कर भीतर ले आओ। लौंडी हाथ पकड़कर उनको भीतर ले गई। बीबी ने देखते ही उठकर उनको गरम पानी से स्नान कराकर उनका बदन पोंछ-कर पलँग पर लिटा दिया और उनके ऊपर रजाई डाल दी और चाह पिलाई। फिर रात्रि को भोजन कराया। आप भोजन करके उनके पाँव दाबने लगी। थोड़ी देर पीछे उन्होंने एक निगाह से उस वेश्या की तरफ देखा और फिर अपनी आँख मूँद ली। वह उनकी निगाह के साथ निगाह मिलाने में ही कृतार्थ हो गई। वह तो सो गए और वह रात्रि भर उनके पाँव दाबती रही। जब प्रातःकाल हुआ तब वह पाँव की तरफ गिरकर सो गई। जब महात्मा की नींद खुली तब वह रजाई को उसी जगह फेंककर आप नग्न ही वन को चले गए। जब कुछ दिन चढ़ा तब बीबी की आँख खुली। उसने लौंडी से पूछा महात्मा कहाँ गए। उसने कहा वह जंगल को चले गए। यह सुन-कर वह भी नग्न ही मकान से निकल नगर के बाहर एक वृक्ष के

नीचे जाकर नीचा सिर करके बैठ रही। राजा से लौंडी ने जाकर सब हाल कहा। राजा हाथी पर सवार होकर वहाँ गए और उसके पास बैठकर उसको बुलाने लगे, पर वह नहीं बोली। जब उसका हाथ पकड़ कर हिलाने लगे, तब उसने कहा, जा राजन, अब मैं तुम्हारी पहलेवाली भंगिन नहीं रही हूँ जो मैं पहले तुम्हारा मैला उठाती थी। यह वाक्य सुनकर राजा ने हुक्म दिया कि अब इसके पास कोई आदमी न आने पावे। जहाँ इसकी मरजी हो वहाँ चली जाय; क्योंकि इस पर महात्मा की कृपादृष्टि हो गई है। राजा इतना कह कर अपने मकान चले आए और वह भी कहीं अवधूतिनी होकर चली गई। इसी पर गुरुजी ने भी कहा है, महात्मा अपनी निगाह से ही निहाल अर्थात् कृतार्थ कर देते हैं।

इति श्रीमदुदासीनपरमहंसस्वामिहंसदासशिष्येण स्वामिपरमानंद नमाख्यधरेण पिशावरनगरनिवासिना विरचिता बृहत्परमानन्दिनीनाम्नीजप्यजी-टीका वेदांतपक्षे समाप्ता।

मू०—पउण गुरु पाणी पिता, माता धर्ती महतु।
दिवस रात दुइ दाई दाया, खेलै सकल जगतु॥
चंग आइयाँ बुराइयाँ, वाचै धर्म हदूर।
कर्मी आपो आपणी, के नेरे के दूर॥
जिन नाम धाइयाँ, गये मशक्कत घाल।
नानक ते मुख ऊजले, केती छुटी नाल॥

फल—इतवार से हर रोज ५०० जपे ४० दिन तक तो गुरुद्रोही का पाप कट जाय।

टी०—पवन गुरु अर्थात् वायु गुरु है, पानी याने जल बाप है और माता धर्ती कहे पृथिवी है। रात और दिन दाई दाया हैं। जिनमें सारा संसार खेल रहा है। नेकियाँ और बुराइयाँ धर्मराज लिख रहे हैं, क्या नजदीक और क्या दूर कुछ भी उनके लिखने से नहीं छूटता। कर्मों के अनुसार योनियों में जनमते और मरते हैं। गुरु नानकजी महाराज फर्माते हैं कि जिन्होंने उसके नाम का अभ्यास किया है उन्हीं के मुख उजले होते हैं यानी वे निरंकार में लय हो जाते हैं।

पाँच पोड़ियों के फल जो छूट गये थे नीचे लिखे जाते हैं:—

पृष्ठ १७१ पंक्ति ११ फल—रविवार से अमृत वेला में ढाई हजार जप करे, तो आँखों का दर्द दूर हो।

पृष्ठ १८५ पंक्ति १८ फल—शनिवार से एक हजार रोज इक्कीस दिन तक जपे तो कुल रंज दूर हों।

पृष्ठ १९७ पंक्ति १२ फल—गुरुवार से चालीस दिन तक पाँच सौ रोज जपे, तो शांति आ जावे।

पृष्ठ २०१ पंक्ति २७ फल—शनिवार से पाँच सौ रोज दश दिन तक जपे, तो गुदा व इंद्रिय-दग्ध दूर हो।

पृष्ठ २१५ पंक्ति ४ फल—शुक्रवार से नौ हजार ग्यारह दिन में जपे, तो वैकुंठ प्राप्त हो।

पृष्ठ २२१ पंक्ति २४ फल—बुधवार से अमृत वेला में सात दफा एक मर्तबा और स्त्री को सात कुँओं के पानी से नहलावे और पिलावे भी सात दिन तक तो गर्भ रहे।

सिक्ख-धर्म की अनूठी और अपूर्व पुस्तक

पारसभाग

धर्म का विषय बड़ा गहन और गंभीर है। सब पहलुओं से इस पर विचार करना और वह भी सरल और सुबोध भाषा में एक बड़ा कठिन कार्य है। किसी मत और संप्रदाय-विशेष के सब सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए धर्म की व्याख्या और उसके सिद्धांतों की पुष्टि करना केवल विशेष-विशेषज्ञों का ही काम है। फिर यह विषय ऐसा है कि इस पर पोथे-के-पोथे रंगे जा सकते हैं और रंगे गए हैं; पर सर्वसाधारण उनसे उतना लाभ न उठाते ही हैं और न उठा सकते ही हैं। कारण, न उनके पास इतना धन ही है और न समय ही कि बड़े-बड़े ग्रंथों को खरीद के पढ़ें। अतः हमने यह पुस्तक प्रकाशित की है। लेखक ने इसमें गागर में सागर भर दिया है।

इसमें वेदांतमतानुसार काम, क्रोध, मद, मोह और अहंकार दूर करने के उपाय, व्रत और दान के लाभ, और प्रीति, दया, सत्य, असत्य, चोरी, ईर्ष्यादि अनेक देह-संबंधी कर्मों के निर्णय इतिहास और कथा द्वारा सुंदर, सरल और सुबोध भाषा में समझाया है। वेदांत के गूढ़ विषयों को जो नहीं समझ सकते, उनके लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। थोड़ा भी पढ़ा-लिखा मनुष्य इसे आसानी से पढ़ और समझ सकता है। सर्वसाधारण ने इसे इतना पसंद किया है कि इसकी कई हज़ार प्रतियाँ निकल गईं और हमें इसका नया संस्करण निकालना पड़ा। इस संस्करण की छपाई-सफ़ाई, काग़ज़ आदि बहुत अच्छे हैं। रंगीन चित्र भी हैं। फिर भी मूल्य केवल ४) रक्खा है।

केवल सिक्ख-धर्मानुयायी ही नहीं अन्य धर्मावलंबी भी इससे अपने ज्ञान की काफ़ी अभिवृद्धि कर सकता है।

विचार-सागर (गुरुमुखी-भाषा में) पृष्ठ-संख्या ४४४, मू० १)

पंज-ग्रंथी (गुरुमुखी-भाषा में) सफ़ेद काग़ज़ः पृष्ठ-संख्या ४३६; मूल्य १)

रामायण बालकांड सटीक (गुरुमुखी-भाषा में) पृष्ठ-संख्या ४७४; मूल्य १॥)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—मैनेजर, नवलकिशोर-प्रेस-बुकडिपो, लखनऊ